प्रकाशक
वैदिक पुस्तकालय
नाचीबाग, बनारस ।

द्वितीय संस्करण, मार्च १९५६

मुद्रक—
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय,
लहरतारा, बनारस—४

जातिनिर्णय की विषय सूची ।

* इति *

भूमिका

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् । (यजुर्वेद)
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते । (अथर्ववेद)

विवेकि पुरुषो ! परमात्मा ने हम लोगों को इस दुर्लभ मानव देह देके परम अनुग्रह प्रकाशित किया है क्योंकि इसमें कैसा उत्तम, कैसा प्रशंसनीय, कैसा अनर्घ, कैसा अद्भुत, कैसा उज्ज्वल, कैसा प्रकाशक, कैसा शुद्ध-विशुद्ध, विवेक रूप एक महादीपक दिया है। इस विवेक रूप दीपक से हम क्या नहीं देख सकते ? क्या नहीं जान सकते ? क्या नहीं कर सकते ? परन्तु दीपक जलाने को सुचतुर सयान एक गुरु चाहिए। वह गुरु वेद है। बहुत दिनों से लोग वेद गुरु को त्याग कुग्रन्थों को अपना धर्म्म गुरु बना "अन्धा अन्धे का रहनुमा, दोनों गए कुयें में समा" इस कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं। परन्तु "सुबह का भूला शाम घर आवे तो उसे भूला न कहिए" अब भी अगर हम सब चेत जाँय तो आशा प्रत्याशा हैं। वेद गुरु पुनरपि हमको मिल जाँयेंगे। ये कहीं दूर नहीं चले गए हैं। परन्तु अविद्या-रूप कोयले की बड़ी विशाल खानों से अज्ञान रूप धुँआँ निकल कर इस दीपक को चारों तरफ से दबा रहा है। यदि इसमें वेद-गुरु सूर्य्य की उपदेश रूप तीक्ष्ण गरमी पहुँच जाय तो वे कोयले फट जल के भस्म हो जायँ और दीपक चारों ओर प्रकाश देने लगे। इस हेतु

बेद गुरु के समीप आप लोग आवें और सबको त्यागें। चाहें आप शास्त्रों पुराणों और भाषा के ग्रन्थों से पूछ देखें सब ही वेद-वेद पुकारते हैं। तब क्यों नहीं सब छोड़ वेद गुरु के निकट जायँ। "सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः" परन्तु अविवेक के मारे "आँख के अन्धे गाँठ के पूरे" ऐसे मनुष्य ही "साँच कहे सो मारा जाय, झूठ कहे सो लड्डू खाय" इस कहावत को सत्य बना रहे हैं। अन्यथा वेद गुरु को छोड़ कौन अज्ञानी कुग्रन्थ गुरु के निकट पहुँच "अन्धे के आगे रोवे, अपना दीदा खोवे" की भाँति इधर-उधर भटकता फिरता है। थोड़ी देर तक सब पक्षपात त्याग विवेक पर भार दे आप सोचें तो। इस समय आपका देश पृथिवी पर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सब देशों के पुरुषों से भरा हुआ है। बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरों में निवास करते हुए अग्नि देवोपासक पारसी लोग आपके साक्षात् एक भुजा हैं। मुहम्मद महोदय के उपदेश पर चलने वाले मुसलमान तो छोटे से छोटा भी ग्राम नहीं जहाँ वे आपके पड़ोसी न हों। उनके साथ कौन-सा व्यवहार बाकी है। वे आपके उपनयन विवाह आदि शुभ कर्म्म में और आप उनके शुभ कर्म्म में मिलते-जुलते रहते ही हैं। एक-ग्राम-निवासी हिन्दू, मुसलमान आपस में बाबू, भाई, काका, बाबा, माँ, बहिन, मामी, मौसी आदि शब्द से परस्पर पुकारते हैं। इन मुसलमानों से कैसा हमारा घनिष्ठ और अटूट सम्बन्ध है, आप लोग सब कोई जानते ही हैं। यह भी आपको स्मरण रहे कि ये एक दिन आपके समान ही द्विज थे। बादशाही आने पर ये किसी कारणवश मुसलमान हुए, इस कारण इनको द्विज बनाने का सबसे पहला हक़ है। योरोप-निवासी ईसामसीह के शिष्य आपके शासक ही हैं। इनके अतिरिक्त चीनो, जापानी, मिस्री आदि अनेक द्वीप-द्वीपान्तर के मनुष्य आज व्यापार के लिए आपके देश को शोभित कर रहे हैं। आप इन सबों पर एक दृष्टि दौड़ावें और यह भी ध्यान में रक्खें कि ये अपने-अपने देश में

करोड़ों की संख्या में बसते हैं। अब मैं पूछता हूँ कि भगवान् ने इनमें चारों वर्णों को उत्पन्न किया है वा नहीं। इनके देशों में आपके समान ही पशु-पक्षी आदि पदार्थ दे रहे हैं तो क्या चारों वर्ण नहीं देंगे? पुनः इनमें से क्या कोई महात्मा पुरुष नहीं निकलते? आप किन्हीं-किन्हीं महात्मा मुसलमानी फकीरों को देख क्या उन्हें आदर नहीं करते? उन्हें ईश्वर-भक्त नहीं मानते? इसमें सन्देह नहीं कि आपका आत्मा तो उनसे सम्बन्ध जोड़ लेता है परन्तु आप स्वयं लोक से डर के उनसे विमुख रहते हैं। मैं कहता हूँ कि आप ईश्वर से डरें मनुष्य से नहीं। क्या आज योरोप निवासिनी श्रीमती अनुवसन्ती (एनीबेसेण्ट) देवी की पूजा सहस्रों विद्वान् द्विज नहीं कर रहे हैं। पारसी होने पर भो श्रीमान् दादा भाई नौरोजी को क्या आज लक्षों द्विज शिर पर नहीं धरते हैं। उनकी देदीप्यमान जीती-जागती मूर्त्ति को देख भक्ति उत्पन्न नहीं होतीं? क्या अँगरेज होने पर श्रीमान् महोदय काटन साहब को आप लोगों ने जातीय सभा में सिरताज नहीं बनाया? क्यों! ऐसा क्यों!! निःसन्देह गुण की पूजा होती है। गुण ही मनुष्य को बड़ा करता है। हीरा भी पत्थर ही है परन्तु वह मुकुट में खचित होता है। क्या आप मनुष्य सन्तान को पशु-पक्षी से भी नीच निकृष्ट मानेंगे? गाय, भैंस, बकरे, हरिण, शुक, पिक से घृणा नहीं रखते। फिर मनुष्य तो शिक्षा पा उच्च शुद्ध पवित्र आत्मदर्शी तक हो सकता है। यदि विदेशी वा स्वदेशी मुसलमान, अङ्गरेज़, जापानी, चीनी, आदियों में कोई त्रुटि देखते हैं तो उसको दूर कीजिए। वह त्रुटि कैसे जा सकती है? निःसन्देह घृणा से नहीं, वैर भाव से नहीं, पृथक् रहने से नहीं; किन्तु अपने में मिलाने से। यही एक उपाय है। संग से सब सुधरता है। आप अपने सङ्ग से उन्हें सुधारिए, यदि शुद्धि की आवश्यकता हो तो "गायत्री" मन्त्र दे शुद्ध कीजिए। आप गङ्गा से पञ्चगव्य से सूर्य्य चन्द्रादि देवता से सबसे बड़े हैं। देखिये आप किनकी सन्तान

हैं। सब देवी देव जिनके निकट हाथ जोड़ खड़े रहते हैं। इस हेतु आप सबसे बड़े हैं परन्तु आप अपने को भूले हुए हैं। किसी ने कहा है कि "देवाधीनं जगत्सर्वं, मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणा-धीनास्तस्माद्ब्राह्मणदेवताः।" ठीक है कि पृथिवी, अग्नि, वायु मेघ विद्युत् सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि देवों के अधीन जगत् है। पृथिवी अन्नों से, अग्नि गरमी से, वायु प्राण से, सूर्य्य प्रकाश से, इस प्रकार सब ही देव इस पृथिवी पर के स्थावर जङ्गम जीवों की सेवा कर रहे हैं। परन्तु वे पृथिवी सूर्य्यादि देव किसके अधीन हैं। निःसन्देह वे मन्त्र अर्थात् वेद के अधीन हैं। क्योंकि बेदों के अध्ययन अध्यापन से इन सूर्य्यादि देवों के तत्त्व जान किससे किस प्रकार और कौन काम लेना चाहिए यह सब भेद वेदवित् पुरुषों को मालूम होने लगता है। तब उस-उस देव से वह-वह कार्य्य लेना आरम्भ करते हैं। आज योरोप निवासी अग्नि से वायु से बिजली से सूर्य्य से समुद्रादि-देवों से काम-काज ले रहे हैं। गमार से गमार भी पृथिवी देवी से कुछ न कुछ काम ले ही लेता है। परन्तु जितना ही वेद के द्वारा इनका तत्त्व जानेगा उतना ही अधिक काम ले सकता है। इस कारण कहा है कि ये सब वेद मन्त्र अर्थात् वेदों के अधीन हैं और वे वेद ब्राह्मणों के अधीन हैं। इस कारण ब्राह्मण देवता हैं। इसी कारण ब्राह्मण को भूदेव भूसुर कहते हैं। अब आप आँख खोल देखें यदि आप देव हैं तो देवता के समान कार्य्य भी आपको करना चाहिए। क्या सूर्य्य अपने प्रकाश को चाण्डाल पर से हटा लेता है? क्या गङ्गा म्लेच्छ को अपने में नहाने नहीं देती? क्या पृथिवी माता म्लेच्छ के खेतों में अन्न नहीं उपजाती? इसी प्रकार ब्राह्मण को तो किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए। जिसने घृणा की वह ब्राह्मण देवता नहीं। अग्नि सूर्य्यादिवत् ब्राह्मण को उचित है कि सबको बराबर समझें। सबसे पूजा लें सबका प्रसाद ग्रहण करें। अपने

आगमन और सत् उपदेश से सबको शुद्ध पवित्र करते रहें। यदि आप अपने को सामान्य मनुष्य ही मानते हैं तो मनुष्य-मनुष्य सब समान हैं। यदि अपने को ब्राह्मण समझते हैं तो आप देवता हैं फिर देवता के समान ही कार्य्य भी कीजिये, यदि पण्डित समझते हैं तो "विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः"। "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः"। आप कैसे ही समझें आपको सबसे समान बर्ताव करना पड़ेगा। तब ही आप का बड़प्पन है तब ही श्रेष्ठता है।

पुनरपि आप देखें आप किससे घृणा करते हैं क्या इस शरीर से ? यह तो जड़ है। नहाने धोने से इसकी शुद्धि हो जाती है, फिर सबका देह पञ्चभूतों से बना हुआ है। आधि, व्याधि, मरना, जीना, बाल्य, यौवन, वार्धक्य सबका तुल्य है। तब क्या जीवात्मा से घृणा करते हैं ? यह तो अनेक देहों में घूमता ही रहता है। आपका का आत्मा किसी अन्य देह को छोड़ यहाँ आया है। आत्मा सदा शुद्ध बुद्ध है। तब क्या कुत्सित कर्म्म से घृणा करते हैं ? यह आपके हाथ में है। शिक्षा उपदेश से कुत्सित कर्म्मों को शुद्ध कर सकते हैं। विवेक को जागृत और शुद्ध करें। उसी दीपक की सहायता से आपको सब कुछ सूझने लगेगा इसी हेतु पाँच प्रकरणों से सुभूषित 'जाति-निर्णय' नामक ग्रन्थ लिख सुना आप विद्वानों को ही समर्पित किया है। अब मैंने आपलोगों को क्या सुनाया यदि इसको अति संक्षेप से सुना जाँय तो मुझे विश्वास होगा कि आप लोगों ने दत्त चित्त हो मेरे कथन को श्रवण किया। यह सुन उन सब विद्वानों की सम्मति से तर्क पञ्चानन शास्त्री कहकर सुनाने लगे—आप ने हम लोगों पर कृपा कर इसमें ३२६ ऋचायें और मन्त्र कह इनके पृथक् पृथक् पद, पदार्थ, व्याख्यान, भाष्य और गूढ़ाशय सुनाए हैं और महाभारत, रामायण मनुस्मृति, भागवतादि पुराण और बृहद्देवता प्रभृति अनेक ग्रन्थों के ४०८ श्लोकों के प्रमाण दिए हैं इसके अतिरिक्त

शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के लाट्यायन आदि श्रौतसूत्रों के, आपस्तम्बादि गृह्यसूत्रों के, छान्दोग्यादि उपनिषदों के, वेदान्त प्रभृति षट्शास्त्रों के, पाणिनि व्याकरणादि अङ्गों के इत्यादि-इत्यादि अनेकानेक मान्य ग्रन्थों के प्रमाणों से भूषित कर अमृतपान करवाया है। वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में जितने गूढ़ से गूढ़ प्रश्न हो सकते हैं इसमें किए गए हैं और उनके समाधान भी सप्रमाण संयुक्ति सुनाए हैं।

प्रथम प्रकरण पृष्ठ १ से १०० तक यह आर्य्य, दस्यु, दासादि निर्णय प्रकरण है। १ प्रथम पृष्ठ से १० वें पृष्ठ तक ७ प्रश्न कर सामान्य प्रार्थना सुना आर्य्यादि शब्दों का व्याख्यान आरम्भ किया है। १—वेदों के पढ़ने वालों को सबसे प्रथम आर्य्य दस्यु और दास इन तीनों शब्दों पर बड़ी शङ्का होती है इस कारण प्रथम सामान्य रीति से ऋग्वेद की २७ ऋचाओं के व्याख्यान कर उत्तर कह पुनः इन तीनों शब्दों पर बहुत से वेद शास्त्रों के प्रमाण दे सिद्ध किया है कि व्रती आस्तिक सज्जन आदि श्रेष्ठ गुणधारी पुरुष को आर्य्य और इसके विपरीत पुरुष को दस्यु वा दास कहते हैं। इसी प्रसंग से राक्षस आदि शब्दों पर भी विचार किया गया है। २—इस अवस्था में इस समाधान के अभ्यन्तर एक दूसरी ही शङ्का उपस्थित होती है कि तब आजकल शूद्र को 'दास' क्यों कहते हैं क्योंकि 'शूद्र' तो नास्तिक नहीं होता और यह समाज का एक मुख्य अङ्ग है। इस पर 'दास' शब्द के अर्थ की क्रमोन्नति और 'शूद्र' शब्द के अर्थ की धीरे-धीरे अवनति पृष्ठ ५४ से आरम्भ कर सिद्ध किया है। ३—पुनः जैसे पशुओं, पक्षियों, जलचरों, वृक्षों में इत्यादि इत्यादि सब वस्तुओं में भिन्न-भिन्न जातिएँ पाई जाती हैं वैसे ही मनुष्य में भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार जातिएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं ऐसी शङ्का जगत् के देखने से उपस्थित होती है। इस पर सांख्य शास्त्र, रामायण, महाभारत, भागवत आदि के अनेक प्रमाणों और बड़ी-बड़ी युक्तियों से मनुष्य

में "एक ही जाति पाई जाती है" यह ७४ पृष्ठ से आरम्भ कर सिद्ध किया गया है। ४—पुनः इसी के अन्तर्गत वैदिकों को यह सन्देह उपस्थित हो सक्ता है कि "पञ्च जन" "पञ्चमानव" आदि शब्दों से आशय क्या लिया जायगा इसका उत्तर दूर चल के २७५ पृष्ठ से दिया है। ५—पुनः इसी के अभ्यन्तर "यदि मनुष्य में एक ही जाति है तब पाणिनि मन्त्रादि महर्षियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये पृथक्-पृथक् जाति शब्द के प्रयोग क्यों किए हैं ऐसी शङ्का होती है। इसका समाधान ७४ पृष्ठ से आरम्भ कर कहा है। इसी के प्रसंग से 'जाति' 'वर्ण' शब्दों के प्रयोग और इतिहास कहते हुए भिन्न-भिन्न व्यवसायियों (*Professional*) के १७२ नाम गिना के प्रथम प्रकरण को समाप्त किया है।

द्वितीय प्रकरण। १०० से १७५ तक। यह व्यवसाय (*Profession*) सम्बन्धी है। इसमें ६४ ऋचाओं के प्रमाण अर्थ सहित कहे गये हैं। ६—प्रथम प्रकरणस्थ व्यवसायियों (*Professional men*) के नाम सुन स्वभावतः यह सन्देह उत्पन्न होता है कि वेदों में किन-किन व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, कला कौशल आदिकों की और किन-किन पोष्य पशुओं की चर्चा है। वे व्यवसायी आजकल के समान ही क्या नीच, निकृष्ट, सभ्यसमाज से पृथक् माने जाते हैं या इनका कुछ विशेष सत्कार कहा है। इस सन्देह के निवारणार्थ बढ़ई, लोहार, सुनार, चमार, नाई, धोबी, जुलाहे इत्यादि व्यवसायियों की और गौ से लेकर गदहे तक पशुओं की चर्चा वेदों से दिखलाई गई है और नदियों से लेकर समुद्र तक की यात्रा, कृषिकर्म्म, प्रस्तर और लोहनिर्मित नगर, राजकीय प्रसाद (*Palace*) सभा भवन आदि अनेक कला कौशल की वार्ताओं को कहते हुए सिद्ध किया गया है कि व्यवसाय के कारण किसी को ऊँच वा नीच वेद नहीं मानता। प्रत्युत वेद कहता है कि इन सब व्यवसायों को विद्वान्, मनीषी, ज्ञानीजन करें ऋषि और राजा

को भी खेती करने कपड़े बुनने आदि व्यवसाय के लिये आज्ञा है एवं बड़े-बड़े कुलीन गृह की देवियों को भी सूत कातने, कपड़ा बुनने बेल बूटा लगाने याने जुलाहे और दर्जी के काम करने के लिये आज्ञा है। इस प्रकार एक-एक गृह में अनेक-अनेक व्यवसायियों के होने के प्रमाण देते हुए आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे व्यवसाय और व्यवसायियों की समुन्नति दिखलाते हुए अन्त में मानवाऽऽर्य्य सभा की चर्चा करते हुए इस प्रकरण को समाप्त किया है।

तृतीय प्रकरण पृ० १७६ से ३१० तक। यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् व्याख्या प्रकरण है"। ७—अब यदि मनुष्य में एक ही जाति है तो इनके व्यवसाय और कर्म्म भिन्न-भिन्न कैसे हुए और "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" का क्या अर्थ होगा? धर्म्मशास्त्र और पुराणादि के सब ही ग्रन्थ कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय की, ऊरु से वैश्य की और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है इसकी क्या गति होगी। इस महती आशङ्का की निवृत्ति के हेतु १०० से अधिक पृष्ठ लिखे गए है प्रथम अनेक प्रमाणों और युक्तियों से वेद का यथार्थ अर्थ करके मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की संगति लगाते हुए सिद्ध किया गया है कि मनुस्मृति, महाभारत, रामायण, भागवत विष्णुपुराण आदिक कोई भी ग्रन्थ ब्रह्मा के मुखादिक अङ्ग से ब्राह्मणादिक की उत्पत्ति नहीं मानता इसकी सिद्धि के हेतु उपर्युक्त सब ग्रन्थों से सृष्टि-प्रकरण दिखलाया गया है। और उसकी समीक्षा की गई है। ८—**मनु और प्रजापति**—इसी सृष्टिप्रसङ्ग से मनु और प्रजापतियों के विषय में भिन्न-भिन्न रोचक मत प्रदर्शित हुए है। मनुस्मृति पृ० १९१ के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र विराट् और विराट् के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या १० है। पृ० २०० से महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप कश्यप के पुत्र आदित्य और आदित्य के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या कहीं ६ कहीं ७ और कहीं

२७ है। पृ० २०८ रामायण के अनुसार एक स्थल में मनुजी महाभारत के समान हैं; परन्तु दूसरी जगह बड़ा विचित्र वर्णन है। रामायण कहता है कि मनु एक स्त्री का नाम है वह कश्यप की धर्म्मपत्नी थी इससे सकल मनुष्य हुए। पृ० २१३ से भागवत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मनु हैं। प्रजापतियों की संख्या कुछ निश्चित नहीं। कहीं कहीं प्रथम चार पुत्रों का, कहीं-कहीं १० का कहीं इससे अधिक का वर्णन है। ऐसा ही विष्णुपुराण को जानिये। ९—इस प्रकार समीक्षा करने से सबको विदित होगा कि मनुजी को लोगों ने क्या-क्या बनाया है। मनुस्मृति पृ० १९१ में कहती है कि मरीचि के पिता मनु हैं; परन्तु इसके विपरीत महाभारत कहता है कि मनुजी के प्रपितामह मरीचि हैं। रामायण मनु को स्त्री बनाता है। पुनः भागवत, विष्णुपुराण आदि मनु और मरीचि दोनों को सहोदर भ्राता मानता है। इत्यादि अनेक विषयों के वर्णन इस सृष्टि प्रकरण में विद्यमान हैं। बड़े ध्यान से इन्हें विचारना चाहिये। १०—परन्तु यथार्थ में मनु कौन है? वेदों में इसकी वार्ता कुछ है या नहीं इस पर पृ० २३७ से २५३ तक वेद की २५ ऋचाएँ कही गई हैं और सिद्ध किया गया है 'मनु' यह नाम मनुष्यमात्र का और श्रेष्ठ पदवी का है। ११—पुनः शतपथादिक ग्रन्थों के अनुसार २५३ से २७५ तक मनु के विषय में बहुत कुछ निरूपण किया गया है। और पृ० २३५ से २३७ तक मनु और शतरूपा क्या वस्तु है? यह अच्छे प्रकार कहा है। पुनः "पञ्चजन" शब्द पर २७५ से २९२ तक बृहद् व्याख्यान कहा है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक शङ्का समाधानों को वर्णन करते हुए और द्वितीय प्रश्न के उत्तर के साथ यह प्रकरण समाप्त किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण पृ० ३३१ से ३७६ तक। यह एक तरह से संकीर्ण है। इसमें अनेक विषय प्रतिपादित हैं। १२—सन्देह होता है कि ब्राह्मण शूद्रादिकों को जब वेद समान मानता है तो मन्वादि धर्मशास्त्रों

में शूद्रों को यज्ञोपवीत निषेध क्यों ? पुनः जब वेद के अनुसार एक-एक गृह में चारों वर्णों के मनुष्य थे तो पीछे विभाग कैसे हुए ? इत्यादि सन्देह उत्थित होते हैं। इसके लिये मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की वर्णव्यवस्था की रीति विस्तार पूर्वक दर्शाई गई है और उनकी संगति लगाई गई है। जब वंशानुगत वर्णव्यवस्था चली है तब भी वर्ण-परिवर्तनन और उनके अनेक उदाहरण ऐतरेय, कवष, सत्य काम, पृषध्र, करूष, नाभाग, धृष्ट, अग्निवेश्य, रथीतर, हारीत शौनक, गृत्समद, वीतहव्य आदि के दिये गए हैं। १४—एवं वेदों में जिसको दास वा दस्यु कहा है उन्हीं को मन्वादि ग्रन्थों में व्रात्य वा शूद्र कहा है यह घटना कैसे घटी। इसका क्या इतिहास है। इत्यादि सन्देह निवारणार्थ व्रात्य और शूद्र, शूद्र वाचक अन्यान्य शब्दों पर बहुत कुछ निर्णय किया गया है। वास्तव में इस तत्त्व को बिना जाने हुए वर्ण व्यवस्था की क्रमोन्नति अवनति को कोई जान ही नहीं सकता है १४—इस पतितावस्था में भी शूद्रों को कौन-कौन अधिकार थे इस विषय का वर्णन रामायण पुराणादिकों से विस्तार पूर्वक कहा गया है। पुनः वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यन्त शूद्रों के विषय में क्या-क्या कहते हैं। वेदों में शूद्र शब्द के पाठ कितने बार और कहाँ-कहाँ हैं। वेदों में शूद्र शब्द के यथार्थ अर्थ क्या हैं ? इत्यादि भूरि-भूरि अर्थों का प्रतिपादन आपलोगों को हमने सुनाया है। व्रात्य संस्कार, व्रात्य पुत्रोपनयन सत्यकाम जाबाल, पौत्रायण जानश्रुति इत्यादि विषय सुनाये हैं। १५—पुनः जब यह शरीर ही चारों वर्णों से बना हुआ है तब प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण है और प्रत्येक को चारों वर्ण होना चाहिये भी, इसको दिखलाते हुए ब्राह्मण और शूद्र के यथार्थ लक्षण सुनाए हैं। १६—प्रजाओं से वृत (चुना हुआ) ही राजा हो सकता अन्य नहीं, एवं क्षत्रिय, राजा, सम्राट् आदि शब्दों के अर्थ कहते हुए क्षत्रिय का वर्णन किया है। पुनः वैश्यों का वाणिज्य, गण (Company) के साथ होता था

इसके प्रमाण सुनाए गए हैं। इसके पश्चात् अनुलोम, विवाह विस्तार से उदाहरण इतिहास प्रमाणों सहित वर्णन करते हुए परस्पर स्पर्शा-स्पर्श (छूआ छूत) और सहभोजिता का वर्णन कह सुनाया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस निर्णय के ऊपर हम लोगों को बहुत ध्यान देना चाहिए। यह भूरि-भूरि प्रमाणों और युक्तियों से अलंकृत है सप्तम प्रश्न के समाधान के साथ यह यह समाप्त होता है।

पञ्चम परिशिष्ट प्रकरण पृष्ठ ३६७ से अन्त तक है। यह कैसा रोचक है सो हम सब स्वयं अनुभव करते हैं। इसके श्रवण से निखिल सन्देह दूर हो गए। आपने बृहदारण्यक वज्रसूची आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण दे हम लोगों को गुण-कर्म्मानुसार वर्णव्यवस्था के मानने में सुदृढ़ और पूर्ण विश्वासी कर दिया है। अबसे हम सब इसी के अनुसार वर्ण मानेंगे और इसके प्रचार के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करेंगे। हम लोगोंने दत्तचित्त से श्रवण किया और प्रत्येक अर्थ जिह्वा के अग्र पर विद्यमान है इसके प्रमाण के लिये आपकी आज्ञा पा किञ्चन् मात्र निवेदन किया है। एवमस्तु। अन्त में एक यह शङ्का होती है उसे भी कृपा कर दूर कीजिए। पृष्ठ ८८ में "क्षेत्रस्य पतिना वयम्" इस मन्त्र पर आपने कहा है कि वामदेव ऋषि कहते हैं सो कैसे? क्योंकि यह वेदमन्त्र है। वामदेव कैसे कहेंगे?। समाधान सुनिए "अग्निमीडे पुरोहितम्" मैं अग्नि (ईश्वर) की स्तुति करता हूँ। यह इसका अर्थ है। मैं कौन? यह प्रश्न होता है। जो प्रार्थना करे वही यहाँ "मैं" है। अब यदि यह कहा जाय कि मैं शिवशङ्कर ईश्वर की स्तुति करता हूँ तो क्या कोई क्षति होगी? नहीं। पुनः "सङ्गच्छध्वं सम्बदध्वम्" सब कोई साथ मिल सब परस्पर सम्बाद करो, यह इसका कहने वाला ईश्वर है। इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इस मन्त्र के तत्त्व जानने वाले ऋषि अब मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि मनुष्यो! साथ मिलो साथ साथ सम्बाद करो। यहाँ पर यदि यह कहा जाय कि वामदेव ऋषि

कहते हैं कि ऐ मनुष्यों ! मिलो सम्वाद करो तो क्या कोई क्षति होगी नहीं। जैसे विवाह आदि में कोई मन्त्र कन्या और कोई वर पढ़ता है इसी प्रकार सर्वत्र जानें। वेद ईश्वर प्रदत्त है। समय-समय के मानवीय प्रयोजनों का वर्णन है इसी हेतु प्रथम मध्यम उत्तम तीनों पुरुषों के साथ वर्णन आता है। इति। इसके अन्त में आप लोग यह स्मरण रक्खें।

सहृदयं सामनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्य मभि हर्यत जातं वत्स मिवाघ्न्याः। अथर्व०।

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः॥ महाभारत॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इति जाति-निर्णयस्य भूमिका समाप्ता।

जालन्धर नगर
ता० ११-१०-१९०७ ई०

जगन्मङ्गलाभिलाषी—
कश्चित् शिवशङ्करः।

ओ३म्

जाति-निर्णय

वेद-तत्त्व-प्रकाश

१ शङ्का—वेदों के अध्ययन से हम लोगों को प्रतीत हुआ है कि पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पति प्रभृतिवत् मनुष्यों में भी अनेकविध जातियाँ हैं। वेदों में *आर्य्य* और दस्यु जाति की चर्चा बहुत आई है। वे दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होती हैं। अनेक स्थलों में प्रार्थना आती है कि दस्यु वा दास को विनष्ट करो। इनका धन छीनकर हम आर्य्यों को दो। वे बड़े धनाढ्य हैं। उन्हें मारो इत्यादि यथाः—

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुप शाकेभिरिन्द्र (१)॥
ऋ० १। ३३। ४॥

हे इन्द्र! अकेला ही आप वज्र से धनी दस्यु का हनन करें। पुनः—

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे॥ ऋ० ४। ३०। २०॥

अश्वापयद्भीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया॥ ऋ० ४। ३०। २१॥

(१ इन ऋचाओं के प्रत्येक पद का अर्थ आगे किया जायगा।

इन्द्र देव ने दिवोदास महाराज के ऊपर प्रसन्न हो शम्बर नामक दस्यु के पाषाण निर्म्मित सैकड़ों नगरों का विध्वंस कर दिया। दभीति राजा से प्रसन्न हो इन्द्र देव ने कपट से ३०००० तीस सहस्र दस्यु विविध हननास्त्र से मार गिराये। इससे यह भी प्रतीत होता है कि दुर्ग, किला, सेना आदि सब राज्य सामग्री इन दासों वा दस्युओं के निकट थी। इस हेतु वे भी शिष्ट और सभ्य थे। परन्तु इनके ऊपर आर्य्यों का इतना क्रोध था कि एक स्थल में प्रार्थना करते हैं कि इनकी स्त्री को भी मारो। यथाः—

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियम्। मायया शाशदानाम्॥ ऋ० ७। १०४। २४॥

इन्द्र! पुरुष वा स्त्री दोनों मायावी का संघात करो। पुनः एक स्थल में कहते हैं कि इनकी गायें छीन लोः—

किं ते कृणवन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्। आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः॥ निरुक्त नैगमकांड ३२॥

हे इन्द्र मघवन्! कीकट अर्थात् अनार्य्य देशों में तेरी गायें क्या करती हैं न आपके लिये दूध देतीं न यज्ञोपयोगी होतीं और उस देश के राजा प्रमगन्द के नीच शाखा सम्बन्धी पुत्र पौत्रादियों के धन भी हमारे लिये ले दीजिये इससे सिद्ध होता है कि दस्यु और आर्य्य दो जातियाँ बड़ी प्रबल और परस्पर युद्ध करने वाली थीं।

२ शङ्का—पुनः आगे चलकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण देखते हैं इनमें ब्राह्मण की श्रेष्ठता और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की नीचता पाई जाती है।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्र-मस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳराजा ।

यजु० ९ । ४० ॥

अर्थः—हे इन्द्रादि देव ! इस राजा को शत्रु रहित करके कर्म्म में प्रेरणा कीजिये । महती क्षेत्र-पदवी के हेतु, महाती श्रेष्ठता के हेतु, महान् मनुष्य राज्य के हेतु, अमुक राजा के पुत्र, अमुक राज्ञी के पुत्र इसकी (जो सिंहासन पर बैठने वाला है) रक्षा आप लोग करें, ऐ प्रजाओ ! ये आप लोगों के राजा हैं । इनकी आज्ञा को मानो । परन्तु हम ब्राह्मणों का राजा सोम अर्थात् चन्द्रमा है ये नहीं । इस मन्त्र से विस्पष्ट सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का राजा क्षत्रिय नहीं हो सकता । इससे ब्राह्मण की श्रेष्ठता सूचित होती है । और भी जहाँ चारों वर्णों के नाम आते हैं वहाँ प्रथम ब्राह्मण शब्द आता है इससे भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता और भिन्न जाति प्रतीत होती है पुनः एक स्थल में उपदिष्ट है किः—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

यजु० २० । २५ ॥

मैं उस लोक को पुण्य पवित्र जानता हूँ जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जातिएँ मिलकर कार्य्य करती हैं । यहाँ वैश्य शूद्र के नाम नहीं आये । क्योंकि राज्याधिकारी क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय ही होते थे । पुनः ब्राह्मण की श्रेष्ठता अथर्ववेद में बहुत गाई गई है । यथाः—

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।

सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ।

अ० ५ । १८ । ६ ॥

ब्राह्मण अहन्तव्य हैं क्योंकि अग्नि के समान हैं इनके दायाद चन्द्रमा हैं और इनकी कीर्ति के रक्षक इन्द्रदेव हैं । पुनः—

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥

अ० ५।१९। ९॥

हे नारद ! उस मनुष्य को वृक्ष भी छाया नहीं देते हैं जो ब्राह्मण का अपमान करते हैं इत्यादि । हम क्या कहें आप स्वयं जानते हैं कि अथर्ववेद में ब्राह्मण की कहाँ तक प्रशंसा है इससे विस्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मण एक भिन्न सर्वोच्च श्रेष्ठ जाति है । पुनः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत ॥

यजु० ३१ । ११ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

अथर्व० १९ । ६ । ६ ॥

इत्यादि मंत्र भी जाति-भिन्नता के प्रतिपादक हैं ।

३ शङ्का—अब वेद को छोड़ नीचे आइए । शतपथ, गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदानुकूल ही हैं । यथाः—

ब्रह्मैव वसन्तः । क्षत्रं ग्रीष्मः । विडेव वर्षाः । तस्माद्-ब्राह्मणो वसन्त आदधीत । ब्रह्म हि वसन्तः । तस्माद् क्षत्रियो

ग्रीष्म आदधीत । क्षत्रं हि ग्रीष्मः । तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत । विड्डीवर्षाः ।। शतपथ कां० २ । ८ ।।

ब्राह्मणो वैव राजन्यो वा वैश्यो वा ते हि यज्ञियाः । शतपथ ब्रा० कां० ३ । १ ।।

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं । जिनसे सिद्ध होता है कि शूद्र यज्ञ का भी अधिकारी नहीं । उपनयनसंस्कार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों का ही उक्त है । इससे भी सिद्ध होता है कि पहिले भी जाति-भेद माना जाता था ।

४ शङ्का—छवों शास्त्रों में सर्व-श्रेष्ठशास्त्र वेदान्त माना गया है इसमें शूद्रों के लिये वेदों के अध्ययन, श्रवण दोनों ही निषिद्ध हैं । यथाः—

श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च । सू० १ । ३ । ३८ ।।

इसके भाष्य में श्रीशङ्कराचार्य्य लिखते हैं किः—

श्रवणप्रतिषेधस्तावद्--अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम् । पद्यु ह वा एतद् श्मशानं यच्छूद्रः । तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यश्च ।

शूद्र यदि वेद सुने तो इस कानों को रांग और लाख से भर देवें । शूद्र श्मशान के समान है । इस हेतु इसके निकट वेद नहीं पढ़ना चाहिए । मनुजी कहते हैं :—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्नच संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्म्मोऽस्ति न धर्म्मात् प्रतिषेधनम् ।। १२६ ।।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसञ्चयः । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ।। १२८ ।। मनु० १२ ।।

न शूद्र को कोई पातक लगता है न उसके लिए कोई संस्कार है। न उसको धर्म्म में अधिकार है। और धर्म से प्रतिषेध भी नहीं है ॥ १२६ ॥ शूद्र समर्थ होने पर भी धन सञ्चय न करे क्योंकि धनको पाके ब्राह्मण की ही बाधा किया करता है इत्यादि।

५ *शङ्का*—वैयाकरण शिरोमणि वेदविद् महर्षि पाणिनि के व्याकरण देखने से भी प्रतीत होता है कि जातिभेद अनादिकाल से चला आता है पाणिनि कहते हैं :—

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ ८ । २ । ८३ ॥

अशूद्रविषये प्रत्यभिवादे यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः स्यात्। सचोदात्तः। अभिवादयेदे वदत्तोऽहम्। भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३। इत्यादि।

अभिवाद=नमस्कार। प्रति+अभिवाद=आशीर्वाद। सूत्र कहता है कि अशूद्र विषयक प्रत्यभिवाद में जो वाक्य है उसका 'टि' प्लुत हो जायगा। परन्तु शूद्र के प्रत्यभिवाद में टि का प्लुतत्व नहीं होगा। इससे सिद्ध होता है कि चारों वर्णों में अभिवादन और प्रत्यभिवादन की रीति भी भिन्न-भिन्न थी। पुनः—

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ २ । ४ । १० ॥

अबहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत्। तक्षायस्कारम्। पात्राद्बहिष्कृतानान्तु चाण्डालमृतपाः।

इससे विदित होता है कि शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक अबहिष्कृत और दूसरे बहिष्कृत। जो आर्य्यों में मिल गये जैसे तक्षा अयस्कार आदि ये अनिरवसित (अबहिष्कृत) और जो आर्य्यों में नहीं मिलाये गये हैं जैसे चाण्डाल मृतप आदि। ये निरवसित कहलाते हैं। व्याकरण के अनुसार द्वन्द्व समास में इनका प्रयोग भी भिन्न-भिन्न होता है।

६ शङ्का—आप लोग 'जाति' शब्द से बहुत डरते हैं परन्तु हम लोग चकित हो जाते हैं कि जो मनुष्य पाणिनि को महर्षि और प्रमाणिक मानता है वह कैसे कह सकता है कि पाणिनि जाति नहीं मानते थे। अथवा इनके समय में जाति विभाग नहीं था महर्षि पाणिनि जाति की चर्चा बहुधा करते हैं। यथाः—

ब्राह्मोऽजातौ ॥ ६ । ४ । १७१ ॥

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः । ब्राह्म इति निपात्यते । अनपत्येऽणि । ब्राह्मं हविः । ततो जातौ । अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात् । ब्राह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणम् ॥

क्षत्राद् घः ॥ ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव क्षत्रिरन्यः । शूद्राचामहत्पूर्वा-जातिः । इत्यादि ।

मनुजी भी जाति शब्द का प्रयोग करते हैं। यथा :—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्ति तु पञ्चमः ॥ म० १० । ४ ॥
क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवतिजातितः ॥ म० १० । ११ ॥
शुचिरुत्कृष्ट शुश्रूषुर्मृदु वागनहङ्कृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ मनु० ९ । ३३५॥

मनुस्मृति और अन्यान्य धर्मशास्त्रों में जाति और वर्ण ये दोनों शब्द एकार्थ में प्रयुक्त हुए हैं। पुनः आप मनुष्यों में भिन्न-जाति मानने में क्यों सन्देह करते हैं।

यहाँ तक मैंने वेद शास्त्रानुसार आप से निवेदन किया अब आप दो चार युक्तियाँ भी सुनिये।

७ शङ्का—(क) कर्मानुसार सृष्टि आप, हम दोनों मानते हैं। इस अवस्था में स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टि की आदि में भी अपने-अपने कर्म के अनुसार पशु, पक्षी आदि के समान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी उत्पन्न हुए होंगे। इसमें आस्तिकों को सन्देह ही क्या हो सकता है। (ख) जब कर्म के अनुसार कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र हुए तो इस अवस्था में ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण नहीं हो सकता। जैसे त्रिकाल में भी घोड़ा हाथी नहीं होता और हाथी घोड़ा नहीं। अतः ब्राह्मण को शूद्र बनाना और शूद्र को ब्राह्मण बनाना यह भी साहसमात्र ही है। (ग) पुनः हम देखते हैं पशुओं में, पक्षियों में, जलचर मत्स्यादिकों में तथा इन वृक्षादि जड़ वस्तुओं में भी भिन्न-भिन्न जातियाँ ईश्वर ने बनाई हैं। तो क्या मनुष्यों में ही एक जाति बनावेंगे ? इस मनुष्य-जाति को अन्यान्य जाति के समान अनेक करने में क्या ईश्वर को किसी ने रोक लिया ! जब संसार में एक-जाति किसी वस्तु को नहीं देखते हैं तो मनुष्य में ही केवल एक-जाति मानकर कैसे सन्तोष कर लें। कोई उदाहरण इसमें आप देवें। यदि उदाहरणाभाव है तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यों में भी भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं। (घ) पुनः एक-एक जाति में भी भिन्नता साक्षात् देखते हैं। यद्यपि सर्प एक-जाति है, बानर एक जाति है तथापि इनमें सैकड़ों जातिएँ पाई जाती हैं इसी प्रकार जड़ पदार्थ में भी। यद्यपि आम्र एक जाति है परन्तु इसमें पचासों भेद विद्यमान हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण एक-जाति है परन्तु इनमें अनेक भेद विद्यमान हैं इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में भी जानिये। जब आप एक-जाति वाले सर्पादिकों के भेद का अपलाप नहीं कर सकते। हजारों लाखों मनुष्य मिल कर भी जब बानरों और अन्यान्य सर्पादिकों की एक जाति नहीं बना सकते तो आप मनुष्य को एक-जाति

बनाने का साहस कैसे कर सकते हैं ? (ङ) पुनः यदि मनुष्य एक जाति हो तो एक प्रकार की प्रवृत्ति होनी चाहिए। मनुष्यों में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियें क्यों हैं। जैसे सकल ऊँट को कण्टक के, शूकर को अभक्ष्य के, शुकादि पक्षी को फल के, गृध्र को मांस के भक्षण में सबकी एक-सी प्रवृत्ति है। वैसे ही सब मनुष्य की एक-सी प्रवृत्ति होनी चाहिए। परन्तु मनुष्य में, सो नहीं देखते। किसी की तपस्या में, किसी की युद्ध में, किसी की व्यापार में, किसी की जूता बनाने केश काटने, खेत करने आदि में ही प्रवृत्ति है। इस कारण से भी मनुष्य जाति भिन्न-भिन्न है। (च) षष्ठ युक्ति कहकर समाप्त करते हैं कि भगवान् के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य, और पैर से शूद्र की उत्पत्ति वेद शास्त्र सब मानते हैं इस हेतु ये चारों भिन्न-भिन्न जातियें हैं इसमें सन्देह नहीं इसका समाधान प्रथम आप करके हमलोगों को समझा देवें। तब अन्यान्य शङ्कायें यदि रहेंगी तो करेंगे।

इस प्रकार सत्संग के हेतु एक समय तर्कपञ्चाननशास्त्री, विद्यासागर दामोदरजी, घनश्यामाचारी, मीमांसारत्न बलभद्रजी, श्री रङ्गाचारी, अप्पैदीक्षित न्यायरत्न, व्याकरणतीर्थ हरिहराचार्य, सुब्रह्मण्य शास्त्री प्रभृति अनेक विद्वान् एकत्रित हुए। क्योंकि जब तक विद्वान् किसी विषय का निर्णय नहीं करते हैं तब तक सन्देह ही रहता है। और जब तक सन्देह रहता है तब तक अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती है। श्रीकृष्णजी ने कहा है कि 'संशयात्माविनश्यति' इस हेतु आज मैं आप सबों से जाति का ही निर्णय कथन करूँगा। इस समय भारत में इसका बड़ा आन्दोलन है। शास्त्र में कहा गया है कि जब तक अज्ञानता रहती है। तब तक अनेक क्षति होती रहती हैं. इस हेतु सहस्रों प्रयत्नों से अज्ञान का नाश और ज्ञान का उपचय अवश्य करना चाहिये। जगत में अविद्या

ही दुःख का मुख्य कारण है। परन्तु इसके पहले हम सब मिल के उस प्रभु के यश को गा लेवें तो महान कल्याण हो और अन्तः-करण की शुद्धि हो ताकि इस विषय की शान्तिपूर्वक हम सब अच्छे प्रकार मीमांसा कर सके ॥

"प्रार्थना स्तुति"

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥

अथर्व० ७ । ८७ ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु० १८ । ४८ ॥

जो न्यायकारी देव, अग्नि में, जल के अभ्यन्तर, ओषधियों में और वीरुधों में व्यापक है। जिसने सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम कल्पित किये हैं। उस प्रकाशरूप न्यायकारी देव को सहस्रशः नमस्कार हो। हे भगवन्! हमारे ब्राह्मणों में, राजाओं में, वैश्यों में तथा शूद्रों में ज्योति दीजिये। हे जगदीश! मैं भी उस ज्योति का भिक्षुक हूँ कृपा करो अजस्र ज्योति प्रदान करो कि हम आपकी विभूति देख सकें और सत्यासत्य समझ सकें।

"सब वर्णों के लिये समान प्रार्थना"

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु० १८ । ४८ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! (नः) हमारे (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में (रुचम्) प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये (नः) हमारे (राजसु) राजाओं में (रुचम्+कृधि) प्रकाश स्थापित कीजिये (विश्येषु+शूद्रेषु) हमारे वैश्यों और शूद्रों में (रुचम्) तेज स्थापित कीजिये और (मयि) मुझमें (रुचा) प्रकाश के साथ (रुचम्) प्रकाश अर्थात् अविच्छिन्न प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये। स्वामीजी (श्रीमद्दयानन्द सरस्वती) रुचम्=प्रेम, प्रीति अर्थ करते हैं। महीधर रुचम्=दीप्तिम्। धेहि=आरोपय। विश्येषु=वैश्येषु।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि ॥

यजु० २०। १७॥

अर्थः—(यद्+एनः) जो अपराध (वयम्) हमने (ग्रामे) ग्राम में (यत्) जो अपराध (अरण्ये) अरण्य में (सभायाम्) सभा में (यत्) जो पक्षपातादि (इन्द्रिये) इन्द्रिय विषय में (यत्) जो परापवादादि अपराध (शूद्रे) शूद्र के विषय में और (अर्य्ये) वैश्य के विषय में (यत्+यत्) जो-जो अपराध वा पाप (चकृम) किया है और (एकस्य+अधि) सबसे बढ़कर (धर्म्मणि) धर्म्म विषय में धर्म्मलोपादि रूप (यद्) जो पाप किया है। हे भगवन् ! (तस्य) उस सबका (अवयजनमसि) आप नाश करने वाले हैं। स्वामीजी का भाव यह है कि हे विद्वन् ! ग्रामादिकों में जो हम अपराध करते हैं वा करनेवाले हैं उस सब के आप छुड़ाने के साधन हैं। इससे महाशय हैं। अर्य्य=स्वामी वा वैश्य। अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः॥ पाणिनिसू० ३। १। १०३॥

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराज-

न्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यता मुप मादो नमतु ॥ यजु० २६। २॥

अर्थः—ईश्वर मनुष्यमात्र से कहता है कि (यथा) जैसे दया के वश होकर लोगों के उपकारार्थ (इमाम्) इस (कल्याणी) कल्याणी (वाचम्) चारों वेदरूपवाणी का इस संसार में (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये मैं (आ+वदानि) उपदेश देता हूँ, इसी प्रकार आप सब भी इस कल्याणी वेद वाणी का उपदेश किया कीजिये। किस-किस को मैं उपदेश देता हूँ सो आगे नाम गिन कर कहते हैं (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और राजाओं के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्यों के लिये अर्थात् मनुष्यमात्र के लिये और (स्वाय+च+अरणाय) जो मेरे प्यारे हैं और अरण=दस्यु दासादि चोर डाकू हैं उनको भी मैं उपदेश देता हूँ। वे पापी दुराचारी भी सुधरें। ऐ मनुष्यों ! मुझको तुम मत त्यागो इसी से तुम्हारा कल्याण है परन्तु तुम मुझे त्याग कर कल्याण चाहते हो सो नहीं होगा। इस प्रकार पिता पुत्र के समान भक्तवत्सल ईश्वर समझाता है। ऐ मनुष्यो ! (देवानाम्) तुममें जो बड़े विद्वान हैं उनका (प्रियः+भूयासम्) मैं प्रिय होऊँ तथा (दक्षिणायै+दातुः) दक्षिणा देने वाले धनाढ्य जो हैं उनका भी मैं प्रिय होऊँ (इह) इस मर्त्यलोक में (अयम्+मे+कामः) यह मेरी इच्छा (समृध्यताम्) पूर्ण होवे (अदः) यह मेरा वाक्य=वचन (मा+उप+नमतु) व्यर्थ न जाय। देखा जाता है कि कुविद्वान् और धनाढ्य पुरुष प्रायः ईश्वर की आज्ञा प्रतिपालन नहीं करते हैं। वे समझते हैं कि हम निज पुरुषार्थ से विद्या वा धन उपार्जन करते हैं। इसमें ईश्वर का क्या है।

दान भी अश्रद्धा से वे देते हैं परन्तु ऐसा करने से उनकी पीछे बड़ी हानि होती है अतः ईश्वर मनुष्य पर दया करके कहता है कि मैं उनका भी प्रिय बनूँ। ताकि भविष्यत् में उन्हें हानि न पहुँचे। ईश्वर ने जीव को स्वतन्त्र किया है अतः कहता है कि यह कामना मेरी पूर्ण हो, मेरा वचन भग्न न होवे अन्यथा ईश्वर जो चाहता सो करता ॥

प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च। यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥ अथर्व० १९। ३२। ८॥

अर्थः—(दर्भ) हे दुष्टों के विदारक शिष्टों के संरक्षक देव! (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्य के लिये अर्थात् सबके लिये (मा+प्रियम्) मुझको प्रिय (कृणु) करो (यस्मै+च) हे भगवन्! जिसके लिये (कामयामहे) कामना करते हैं अर्थात् (सर्वस्मै+च+विपश्यते) सब ही द्रष्टा पुरुष का प्रिय मुझे बनाओ। पुनः—

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्य्ये॥ अथर्व १९। ६२। १॥

अर्थः—हे भगवन्! (देवेषु) देव अर्थात् ब्राह्मणों में (मा+प्रियं+कृणु) मुझको प्रिय बनावें। (राजसु+प्रियं+मां+कृणु) राजाओं में मुझको प्रिय बनावें। (सर्वस्य+पश्यतः) सब देखने वालों में मुझे प्रिय बनावें। (उत+शूद्रे+उत+अर्य्ये) शूद्र और वैश्य में मुझे प्रिय बनावें।

विवेकी पुरुषो! मैंने यहाँ वेदों से पाँच मंत्र उद्धृत किये हैं। इस वैदिक आज्ञा पर आप लोग ध्यान देवें। सबों के लिये एक सी प्रार्थना है। क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र इन चारों में प्रकाश स्थापित करो। यदि शूद्र निकृष्ट अधम धर्म-

विहीन माना जाय तो इसके लिये ऐसी प्रार्थना क्यों! तब तो ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये थी कि शूद्रों को मेरा दास बनाओ। पुनः "यद्ग्रामे" इस मन्त्र में कहा गया है कि शूद्र और वैश्य के निकट मैंने जो अपराध किया उसे भी आप क्षमा कीजिये। आज कल तो धर्म्मशास्त्र के अनुसार शूद्रों के घात करने करवाने में भी कोई अपराध नहीं माना जाता। परन्तु वेद कहता है कि सब अपराध बराबर ही है। पुनः "यथेमांवाचम्" इस मन्त्र के द्वारा सम भाव से वेदरूप कल्याणी वाणी का उपदेश सबको देता है। आज कल शूद्रों को वेद पढ़ना सुनना सब ही मना है। परन्तु यहाँ विपरीत देखते हैं। स्वयं भगवान् कहता है कि मेरी वाणी सबमें पहुँचाओ। हे विद्वानो! इस प्रकार आप देखते हैं वेदों में शूद्रों का दरजा नीच नहीं है। क्या आप इतने बुद्धिमान् और तार्किक शिरोमणि होकर भी इसमें सन्देह मानते हैं। क्या यथार्थ आप मनुष्यों में पशुवत् जातिभेद मानते हैं। इनमें जातिभेदक लक्षण क्या पाते हैं? जैसे पशुओं में हाथी से घोड़ा एक भिन्न वस्तु है यह प्रत्यक्षतया भासता है कि हाथी को शुण्ड (सूंढ़) है घोड़े को नहीं। हाथी का शरीर, गर्जन, चलन, भोजन आदि सब ही घोड़े से भिन्न है। आप इसी प्रकार कोई उदाहरण ले लेवें। आप विषम उदाहरण लेते हैं इस हेतु शङ्का में पड़े हुए हैं। आप कहते हैं कि जैसे गदही गाय नहीं होती वैसे ही शूद्र ब्राह्मण नहीं हो सकता है। आप सोचें आपका यह उदाहरण विषम है क्योंकि प्रत्यक्ष में गाय के जैसे रूप रङ्ग चलन कर्म स्वभाव प्रकृति हैं वैसे गदही के नहीं एक बालक भी गाय और गदही को देखकर कह सकता है कि ये दोनों दो जाति के हैं। क्या ऐसा ही भेद आपको ब्राह्मण और क्षत्रिय में प्रतीत होता है। हे विद्वानो! आप लोग स्वयं विचार करें मैं आगे इसको पुनः निरूपण करूँगा। आप

लोग कहेंगे कि आर्य्य दस्यु का निर्णय छोड़ अन्य विषय में चले गये। आप यह भी कदाचित् कहेंगे कि आपने जो वेदों के पाँच उदाहरण दिये हैं। उसमें तो चारों वर्ण प्रायः बराबर ही माने गये हैं। परन्तु वेदों के पचासों स्थलों में यह जो आता है कि दास वा दस्यु को मारो निकालो ये काले हैं। आर्य्य की रक्षा करो दस्यु को सूर्य्य-ज्योति भी प्राप्त न होवे। आर्य्यों को पूर्ण ज्योति दो। इससे विस्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्य्यों की अपेक्षा दस्यु वा दास निकृष्ट जाति हैं। उसी को आज शूद्र कहते हैं। वेदों में जैसी आज्ञा है वैसी हम आज बरतते हैं इत्यादि। इसमें सन्देह नहीं की दस्यु और आर्य्य शब्द के ऊपर प्रथम विचारना है। हम यहाँ प्रथम आर्य और दास सम्बन्धी अनेक ऋचाओं का अर्थ सहित उल्लेख करते हैं। आप लोग ध्यान से इन ऋचाओं को विचारें आपको मालूम हो जायगा कि आर्य्य वा दस्यु दास किसको कहते हैं। शूद्र को दास वा दस्यु नहीं कहते।

'आर्य्य, दस्यु और दास शब्द'

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥
ऋ० १। ३३। ४॥

अर्थः—(इन्द्र) हे शूरवीर नरेद्र! (उपशाकेभिः) विविध-शक्तियों से संयुक्त आप (एकः+चरन्) एकाकी विचरण करते हुए (घनेन) वज्र समान अस्त्र से (हि) निश्चय ही (धनिनम्) धनिक (दस्युं) चोर डाकू आदि दुष्ट प्राणी का (वधीः) वध कीजिये और (सनकाः) अधर्म्म से औरों के पदार्थ छीनने वाले मनुष्य (ते) आपके (धनोः+अधि) धनुष के ऊपर (व्यायन्) आते हुए (विषुणक्) सब प्रकार से (प्रेतिम्) मरण को (ईयुः)

प्राप्त होवें। वे कैसे सनक हैं (अयज्वनाः) यज्ञादि शुभ कर्म्म विरहित। स्वामिजी—दस्यु=बल और अन्याय से दूसरों के धन को हरने वाले दुष्ट। धनुष। आज कल 'धनोः' रूप नहीं होगा। किन्तु 'धनुषः' होगा। प्रेति=प्रेत=मरण॥

यहाँ देखते हैं कि 'अयज्वा' विशेषण आया है। जो यज्ञ करने वाले नहीं। यज्ञ नाम समस्त शुभ कर्म्म का है। जो शुभ कर्म्म नहीं करेगा वह अवश्य चोर डाकू नास्तिक व्यभिचारी कितव धूर्त्त होगा। ऐसे पुरुषों का शासन करना राजा का परम धर्म्म है। सायण 'दस्यु' शब्द का 'चोर' अर्थ करते हैं। उपक्षया-र्थक 'दस' धातु से बनता है जो प्रजाओं में क्षय अर्थात् विनाश पहुँचाया करे। ऐसे को यदि दण्ड न दिया जाय तो प्रजा में कैसे शान्ति हो सकती है। इससे 'दस्यु' कोई भिन्न जाति सिद्ध नहीं होता। एवमस्तु॥

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रा यज्वनो यज्वभिः स्पर्ध-मानाः। प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः॥

ऋ० १।३३।५॥

परा। चित्। शीर्षा। ववृजः। ते। इन्द्र। अयज्वानः। यज्वभिः। स्पर्धमानाः। प्र। यद्। दिवः। हरिवः। स्थातः। उग्र। निः। अव्रतान्। अधमः। रोदस्योः॥

अर्थः—जो दस्यु=दुष्ट जन स्वयं (अयज्वान) वैदिक यज्ञों के विरोधी हैं अथवा शुभ कर्म्म रहित हैं। परन्तु (यज्वभिः+स्पर्धमानाः) यज्वा=शुभ कर्म्म करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले हैं। (इन्द्र) हे राजेन्द्र! नराधिपते आपकी रक्षा के प्रताप से (ते) वे दस्यु अयज्वा पुरुष (शीर्षा) अपने शिरों को (परा+चित्) पराङ्मुख करके ही (ववृजः) भाग जाते हैं (हरिवः)

हे प्रशस्त घोटक-युक्त (प्र+स्थातः) हे युद्ध स्थल में सदा प्रस्थान करने वाले हे (उग्र) प्रचंड राजेन्द्र! आपने (यत्) जो द्युलोक से अर्थात् बहुत दूर स्थान से और (रोदस्योः) पृथिवी और अन्तरिक्ष से अर्थात् सर्वत्र से (अव्रतान्) शुभ कर्म्म रहित चोर डाकू आदि विघ्नकारी पुरुषों को (नि+अधमः) निःशेषतया निकाल बाहर किया है इस हेतु आप प्रशंसनीय हैं (१)॥

यहाँ 'दस्यु' के विशेषण में 'अयज्वा' और 'अव्रत' दो शब्द आए हैं और कहा जाता है कि ये दस्यु यज्ञ करने वाले के साथ स्पर्धा अर्थात् ईर्षा करते हैं। इससे सिद्ध है कि एक तो यज्वा व्रती आस्तिक हैं। और दूसरा अयज्वा, अव्रती और नास्तिक हैं। व्रत नाम नियम का है। क्या सामाजिक क्या धार्म्मिक क्या राजकीय क्या ईश्वरीय इनमें से किसी नियम को जो नहीं पालता है वह अवश्य प्रजा में उपद्रवी होगा। इस हेतु वह नीच है। इसी को आज कल 'असुर' कहते और आर्य्य को देव कहते हैं। ऐसे नीच पुरुष निज समाज में से ही उत्पन्न होते हैं क्या आज कल हम में ऐसे नहीं हैं॥

त्व मेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहा दिव आ दस्यु मुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥

ऋ० १।३३।७॥

त्वम्। एतान्। रुदतः। जक्षतः। च। अयोधयः। राजसः। इन्द्र। पारे। अव। अदहः। दिवः। आ। दस्युम्। उच्चा। प्र। सुन्वतः। स्तुवतः। शंसम्। आवः।

अर्थः—(इन्द्र) राजेन्द्र! आप (रुदतः) रोते हुए। (जक्षतः+

---

(१) वृजो, वर्जने। हरिवः=हरिवान् का सम्बोधन में हरिव। अधमः=ध्म शब्दाग्निसंयोगयोः।

च) और खाते हुए वा हँसते हुए (एतान्) इन दुष्टों को (रजसः+पारे) लोक के पार अर्थात् बस्ती के पार (अयोधयः) युद्ध करके भगा देवें और (दस्युम्) चौराधिपति दस्यु को (दिवः +आ) द्युलोक से लाकर अर्थात् बहुत दूर स्थान से भी लाकर (उच्चा) बड़े उत्कर्ष के साथ (अव+अदहः) दग्ध कीजिये। और इस प्रकार उपद्रवों को शान्त कर (प्र+सुन्वतः) यज्ञ करने और (स्तुवतः) ईश्वर के गुण गाने वाले मनुष्यों की (शंसम्) स्तुति की (आवः) रक्षा कीजिये। जक्ष="जक्ष भक्ष हसनयो" जक्ष धातु का हँसना और खाना अर्थ है। रजस=लोक, पृथिवी अन्तरिक्षादि। षुञ् अभिषवे। अभिषवः स्वपनं पीडनं स्नानं सुरासंधानम्। षुञ् धातु का अभिषव अर्थ होता है। स्नान करना, निचोड़ना, नहाना, और मद्य बनाना इतना अर्थ अभिषव का होता है। इसी से सोम, सुरा, सुत, अभिसुत, प्रसुत, अभिषेक, सुन्वत् आदि शब्द बनते हैं। शंस=शंसु स्तुतौ प्रशंसा शस्त्र आदि शब्द बनते हैं। वैदिक भाषा में 'शस्त्र' नाम स्तोत्र का भी बहुधा आया है। 'अव' धातु अनेकार्थक है। प्रायः रक्षार्थ में इसका प्रयोग बहुत होता है।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्ता वजुह्वत। त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ऋ० १। ५१। ५॥

त्वम्। मायाभिः। अप। मायिनः। अधमः। स्वधाभिः। ये। अधि। शुप्तो। अजुह्वत। त्वम्। पिप्रोः। नृ+मनः। प्र। अरुजः। पुरः। प्र। ऋजिश्वानम्। दस्यु+हत्येषु। आविथ॥

अर्थः—हे राजेन्द्र! (त्वम्) आपने (मायाभिः) प्रकृष्ट बुद्धियों से (मायिनः) छल कपटादि युक्त अयज्वा अव्रती दस्युवों को

(अप+अधमः) कम्पायमान करें (ये) जो (स्वधाभिः) विविध अन्नों से (अधि+शुप्तौ) मुख में ही (अजुह्वत) हवन करते हैं अर्थात् जो यज्ञ न करके केवल अपने उदर को पूर्ण करने में ही लगे रहते हैं उन दुष्टों को दूर करें (नृमणा+नृ+मनः) मनुष्यों की रक्षा में सदा मन रखने वाले राजन्! (त्वम्) आप (पिप्रोः) पिप्रु=उपद्रव अशान्ति अज्ञानता नास्तिकता फैलाने वाले जनों के (पुरः) नगर को (प्र+अरुजः) भग्न करें और (दस्यु हत्येषु) जिन संग्रामों में दुष्टों का हनन होता है उन दस्युहत्य संग्रामों में (ऋजिश्वानम्) ऋजु=सरल प्रकृति पुरुषों की (आविथ) रक्षा कीजिये। *माया*=प्रज्ञा, बुद्धि कपट आदि। धमति गति कर्मेति यास्कः *धम*=जाना। *स्वधा*=अन्न। शुप्ति=मुख। पिप्रुः=पृ पालन पूर्णयोः। जो दुःख से जगत को पूरित करे। नृमणाः। नृषु-मनो यस्य स नृमणाः। अरुजः रुजोभंगे। ऋजिश्वानम्। ऋजु-अश्नते प्राप्नोति ऋजिश्वा। दस्युहत्येषु=हन्हिंसागत्योः। दस्यूनां-हत्यायेषु संग्रामेषु। आविथ=अवरक्षणे॥

इस ऋचा में विस्पष्ट कहा गया है कि जो अपने मुख में ही हवन करते हैं अर्थात् जो दान, यज्ञ, परोपकार आदि शुभ कर्म्मों से विरहित हैं। ऐसे आदमी अवश्य असुर होते हैं। कौषीतकी ब्राह्मण में उक्त है 'असुरा वा आत्मन्यजुहवु रुद्रातेग्नौ ते पराभवन्'। असुरगण शरीर में ही हवन करते थे। अतः वे परास्त हुए। पुनः वाजसनेयियों ने कहा है 'देवाश्चहवा असुराश्चास्पर्धन्त। ततो हासुराअभिमानेन कस्मै च न जुहुम इति स्वेष्वेव आस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते पराबभूवुः इति'। देव और असुर परस्पर ईर्षा करने लगे। असुर गण अभिमान से किसी की पूजा स्तुति हम नहीं करेंगे यह मन में ठान अपने ही मुख में हवन करते हुए विचरण करने लगे। इस हेतु अन्त में ये परास्त हुए। सायण ने अपने

भाष्य में इन वाक्यों को उद्धृत किया है। वैदिक और ब्राह्मण दोनों वाक्य एक प्रकार के हैं। इससे सिद्ध होता है कि वेद के दस्यु वा दास ब्राह्मण ग्रन्थों के असुर हैं। परन्तु असुर कोई जाति विशेष नहीं जो दानादि न करे वे असुर हैं अतः दास वा दस्यु की भी कोई भिन्न जाति नहीं। इसी सूक्त की नवम ९ ऋचा में अनुव्रत और अपव्रत दो शब्द आये हैं जिसको आज कल क्रम से आस्तिक और नास्तिक कहते हैं। नवम मन्त्र का अर्थ आगे देखिये।

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्। महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे॥ १। ५१। ६॥

त्वम्। कुत्सम्। शुष्ण+हत्येषु। आविथ। अरन्धयः। अतिथि+ग्वाय। शम्बरम्। महान्तम्। चिद्। अर्बुदम्। निः। क्रमीः। पदा। सनात्। एव। दस्यु-हत्याय। जज्ञिषे।

अर्थः—हे राजेन्द्र! (शुष्ण+हत्येषु) प्रजाओं के शोषण करने वालों की हत्या हो जिन संग्रामों में उनमें (त्वम्) आप (कुत्सम्) ब्रह्मज्ञानी ऋषि की (आविथ) रक्षा करते हैं और (अतिथिग्वाय) अतिथि के सेवक लोगों के कल्याणार्थ (शम्बरम्) शम्=कल्याण के रोकने वाले दुष्टों को (अरन्धयः) नष्ट कर देते हैं। और (महान्तम्+चित्) महान् से महान् (अर्बुदम्) दुष्ट को (पदा+नि+क्रमीः) पैर से चूर्ण कर देते हैं। हे राजेन्द्र! (सनाद्+एव) सदा से ही (दस्यु+हत्याय) दस्यु-हनन-संग्राम के लिये ही आप (जज्ञिषे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रजा के विघ्नों की शान्ति करने के लिये ही राजा बनाए जाते हैं। शुष्ण= शोषयिता-शोषण अर्थात् दुःख देने वाला। अतिथिगु अतिथि

गन्तव्य। जिसके निकट अतिथि जाँय। अरन्धयः रध हिंसासराध्योः शुष्णहत्य और दस्युहत्य ये शब्द सूचित करते हैं कि राजा को उचित है कि दुष्टों के संहार के लिये पृथक् सेना और पृथक् न्यायालय बनावे। और उसका नाम 'दस्युहत्य' रक्खे। जिसमें दस्युओं का न्याय हुआ करे।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो वर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ७ ॥

वि। जानीहि। आर्य्यान्। ये। च। दस्यवः। वर्हिष्मते। रन्धय। शासत्। अव्रतान्। शाकी। भव। यजमानस्य। चोदिता। विश्वा। इत। ता। ते। सधमादेषु। चाकन।

अर्थः—हे परमैश्वर्य्य शालिन्! भगवन्! आप (आर्य्यान्) आर्य्य अर्थात् यज्ञानुष्ठानकर्त्ता, धर्म्मात्मा, शिष्ट, विद्वान् पुरुषों को (बिजानीहि) अच्छे प्रकार जानते हैं (च) और (ये+दस्यवः) जो दस्यु अर्थात् यज्ञादि व्रतरहित अनाचारी और निरपराध मनुष्यों के हिंसक हैं उनको भी आप जानते हैं। हे भगवन्! (वर्हिष्मते) यज्ञादि शुभ कर्म्म के अनुष्ठान करने वाले के लिये आप (अव्रतान्) उन कर्म्म विरोधी अव्रती दस्युवों को (रन्धय) नष्ट करो अथवा अजमान के वश में करो। और (शासत्) उनका शासन अच्छे प्रकार करो। हे भगवन् आप (शाकी) सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं इस हेतु (यजमानस्य) यज्ञानुष्ठानकर्त्ता के (चोदिता+भव) प्रेरक होओ। हे व्रतपते! (ते) आपके (ता) उन (विश्वा+इत्) सब ही व्रतरूप नियमों के (सधमादेषु) यज्ञ-स्थानों में प्रतिपालन के हेतु सदा (चाकन) चाहता हूँ। सायण=दस्यु+अनुष्ठाताओं का उपक्षयिता शत्रु। वर्हि-

ष्मान्=यज्ञानुष्ठाता। शासत्=शासु, अनुशिष्टौ। रन्धय=रध हिंसासंराध्योः। सधमादः=सहमाद्यन्तेषु। इति सधमादायज्ञाः। चाकन=कनी दीप्ति कान्ति गतिषु और गति इन तीन अर्थों में कन् धातु आता है।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रताना भूभिरिन्द्रःश्नथयन्ननाभुवः। १। ५। ६॥

अर्थः—(इन्द्रः) नरेन्द्र राजा आप (अनुव्रताय) शुभ कर्म्म करने वाले आस्तिक के कल्याण के हेतु (अपव्रतान्) व्रत रहित पुरुषों का (रन्धयन्) हनन करते हुए और (आभूभिः) आभू अर्थात् स्तुति करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले (अनाभुवः) अनाचारी ईश्वर-गुण-गान रहित अनाभुओं को (श्नथयन्) शासन करते हुए वर्तमान हैं। आभू=आभि मुख्येन भवन्तीति आभुवः स्तोतारः सायण कहते हैं कि आभू और अनाभू ये परस्पर विपरीत शब्द आये हैं।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं वकुरेणा धमन्तोरु ज्योति श्चक्रथुरार्य्याय॥ १। ११७। २१॥

अर्थः—(दस्रा) दुष्टों के संहार करने वाले (अश्विनौ) हे राजन्! तथा हे महारानी! (वृकेण) भूमि के विदारने वाले लाङ्गल से भूमि को चीरकर उसमें (यवम्) जो अर्थात् सब प्रकार के धान्य को (वपन्ता) बोते हुए और (मनुषाय) मनन करने वाले विद्वानों को (इषम्) अन्न (दुहन्ता) देते हुए और (दस्युं) चोर, डाकू, दुष्ट, व्यभिचारी, कितव आदि और प्रजा में अशान्ति डालने वाले पुरुष को (वकुरेण) अग्निवद् भासमान अस्त्र-शस्त्र से (अभि धमन्ता) वध करते हुए इस प्रकार तीन

प्रकार के कार्य्य करते हुए आप दोनों सदा (आर्य्याय) आर्य्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रयुः) किया करते हैं। यास्क="वृकोलाङ्गलं भवति" (नि० ६ । २५) लाङ्गल का नाम वृक है "वकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीति"। वकुर एक अस्त्र का नाम है जिसमें आग्नेय पदार्थ अधिक हों और जो भयङ्कर हो और जो अग्नि से जलता हुआ दौड़े। तत्कावश्विनौ द्यावा पृथिव्यौ इत्येके। अहोरात्रावित्येके। सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतौ इति ऐतिहासिकाः। (नि० १२-१) द्यावा-पृथिवी, अहोरात्र, सूर्य्य, चन्द्र और पुण्यवान् राजा रानी इन चारों जोड़ों को 'अश्विनौ' अश्वी कहते हैं। स्वामीजी 'आर्य्य' शब्दार्थ ईश्वर पुत्र करते हैं, अर्थात् ईश्वर के पुत्रवत् वर्तमान मनुष्य, सायण धमतिवधकर्म्मा। धम=वध करना।

इन्द्रः समत्सु यजमान मार्य्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूति-राजिषुस्वर्मीढ़ेष्वाजिषु। मनवे शासदव्रतान् त्वचंकृष्णाम-रन्धयत्। धक्षन्नविश्वं ततृषाण मोषति न्यर्शसानमोषति॥ १। १३०। ८॥

अर्थः—(शतमूतिः) अनेक प्रकार से रक्षक (इन्द्रः) महाराज नरेन्द्र। (विश्वेषु) सब (समत्सु) साधारण संग्राम (आजिषु) स्पर्धा निमित्तक संग्राम और (स्वर्मीढ़ेषु) सुख प्राप्ति हेतुक (आजिषु) महासंग्राम इन तीनों प्रकार के संग्रामों में (यज-मानम्+आर्य्यम्) यज्ञ करने वाले आर्य्य को (प्र+अवत्) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (मनवे) सकल मनुष्यों के लिये अर्थात् प्रजा मात्र के कल्याणार्थ (अव्रतान्) नियम के न पालने वाले मनुष्यों को (शासत्) दण्डादिकों से शासन करें (कृष्णाम्+त्वचं) काले चर्म्म अर्थात् दुष्ट कर्म्म से जिनका अन्तःकरण और

बाहर दोनों काले हो गये हैं ऐसे पुरुषों को (अरन्धयत्) बध करें और (न) मानों (विश्वम्) सब दुष्टों को (धक्षत्) दग्ध करें और (ततृषाणाम्) हिंसा करने के इच्छुक पुरुष को (ओषति) भस्म करें तथा (अर्शसानम्) हिंसा करते हुए दुष्ट को (नि+ओषति) जड़ मूल से भस्म करें। यहाँ *समत्* और *आजि* ये दोनों संग्राम के नाम हैं। स्वर्मीढ स्वः=सुख, मीढ=मिह सेचने। सेचन। जिसमें सुख का सेचन हो। बिना दुष्टों के संहार से जगत में सुख नहीं होता। इस हेतु संग्राम के विशेषण में 'स्वर्मीढ' आया है। ततृषाणाम्=हिंसकम्। अर्शसानम्=हिंसारुचिम्। सा०। वेद में 'न' शब्द वथा इव अर्थ में भी आता है। इस ऋचाका अर्थ स्वामीजी का प्रायः ऐसा ही है यहाँ 'कृष्णत्वक्' शब्द आया है। जिसका अर्थ 'काला' 'चमरा' होता है। यहाँ अलङ्कार से इस शब्द का प्रयोग है। यहाँ शरीर के चर्म्म से प्रयोजन नहीं है। आन्तरिक दुष्ट भाव को सूचित करता है। आज कल भी जो बड़ा दुष्ट होता है। उसको लोग कहते हैं कि इसका हृदय काला, इसका मन काला इत्यादि।

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्य्यं वर्णमावत्॥

ऋ० ३। ३४। ९॥

ससान। अत्यान्। उत। सूर्य्यम्। ससान। इन्द्रः। ससान। पुरुभोजसम्। गाम्। हिरण्ययम्। उत। भोगम्। ससान। हत्वी। दस्यून्। प्र। आर्य्यम्। वर्णम्। आवत्।

अर्थः—मनुष्यों के हित के हेतु (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य सम्पन्न जगदीश (अत्यान्) विविध पदार्थ (ससान) देता है क्या-क्या देता है सो आगे कहते हैं (उत) और (सूर्य्यम्) पृथिवी का धर्ता पोषक प्रकाशक सूर्य्य को (ससान) देता है (उत) और

(हिरण्ययम् + भोगम्) सुवर्ण युक्त विविध भोग को (ससान) देता है इस प्रकार (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू आदिकों को (हत्वी) मारकर (आर्य्यम् + वर्णम्) श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् उत्तम मनुष्यों को (प्र + आवत्) अच्छे प्रकार रक्षा करता है। ससान=षणु दाने। लिट् का रूप है। हिरण्ययम् हिरण्य शब्द से विकारार्थ में 'मयट् प्रत्यय होकर हिरण्यय बनता है हत्वी वेद में 'हत्वा' के स्थान में 'हत्वी' भी बनता है। आर्य्यम् उत्तमम्। वर्णम् "त्रैवर्णिकम्"। आर्य्य का उत्तम और वर्ण का त्रैवर्णिक अर्थ सायण करते हैं। परन्तु सायण का यह अर्थ अशुद्ध है। 'कृष्णत्वक्' के विरुद्ध 'आर्य्य वर्ण' शब्द आया है। जैसे मालिनात्मक पुरुष को कृष्ण कहते हैं वैसे शुद्धाचारी शुद्धात्मा साधु सज्जन को शुक्लवर्ण कहते हैं इसी हेतु आज कल भी यश, प्रताप आदि का वर्ण श्वेत और पाप का कृष्ण वर्ण माना गया है। श्रीस्वामीजी वर्ण का अर्थ 'स्वीकर्त्तव्यः' करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'वर्ण' का अर्थ आज लोग भूल गये। वृञ् वरणे धातु से वर्ण शब्द बनेगा जिसको सब कोई स्वीकार करें। सभ्य साधु सज्जन को सब कोई स्वीकार करते हैं अतः आर्य्य और वर्ण दोनों ही शब्द विशेषण हैं आर्य्य= उत्तम-कर्म्म-स्वाभावयुक्त धार्मिक। वर्ण स्वीकार करने योग्य पुरुष।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय। अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥४।२६।२॥

अर्थः—ईश्वर कहता है (अहम्) मैं (आर्य्याय) आर्य्य को (भूमिम्) भूमि (अददाम्) देता हूँ (दाशु + मर्त्याय) दान शील मनुष्यों को (अहम्) मैं (वृष्टिम्) वृष्टि देता हूँ (अहम्) मैं (वावशानाः + अपः) सुखकारी जल (अनयम्) लाता हूँ। हे मनुष्यों ! (मम + केतम् अनु) मेरे संकल्प के अनुसार

(देवासः) सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र वायु पृथिवी आदि देव (आयन्) चलते हैं ॥

उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथा वधीः ॥ ४ । ३० । १८ ॥

अर्थः—(इन्द्र) राजन् ! (उत) और आप (त्या = त्यौ) उन (आर्य्या = आर्य्यौ) श्रेष्ठ कन्या और बालक को (सरयोः) सरयु नदी के (पारतः) पार में (सद्यः) शीघ्र (अवधीः) शिक्षा दिलावें । कैसे कन्या पुरुष (अर्णा + चित्ररथौ) जिनके शील स्वभाव बुद्धि अच्छी हों । सायण इसका अर्थ यह करते हैं कि सरयु नदी के पार में बसते हुए आर्याभिमानी अर्ण और चित्र-रथ नाम के दो राजाओं का हनन आपने किया है । परन्तु यह अर्थ उचित नहीं । हन् हिंसागत्योः । हिंसा और गति दोनों अर्थ 'हन्' धातु के होते हैं । गति नाम गमन प्रापण ज्ञान अर्थात् गति नाम ज्ञान का है 'आर्या' यह द्विवचन है । आर्यश्च आर्य्या च आर्यौ । वेद में 'आर्य्यौ' का 'आर्य्या हो जाता है । सरयु = सरति सर्वदैव गच्छति इति सरयुः । जो सर्वदा चले उसे सरयु करते हैं ! अर्णा + चित्र रथ । कोमल प्रकृति को 'अर्णा' कहते हैं अथवा अर्ण नाम जल का है । जैसे जल सबका प्रिय है वैसा सर्व प्रिय बालक । चित्ररथ रथ-रमण, क्रीड़ा । चित्र विचित्र क्रीड़ा शील बालक । अर्थात् राजा को उचित है सर्वथा बहनेवाली नदी के तट पर कन्या और बालक की पाठशाला बनाकर शिक्षा के द्वारा विज्ञान फैलाया करे ।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः । इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य्य ॥ ५ । ३४ । ६ ॥

अर्थ :—(समृतौ) संग्राम में (वि+त्वक्षणः) शत्रुओं को चूर्ण करनेवाला (चक्रम्+आसजः) चक्रास्त्रसज्जयिता (असुन्वतः+विषुणः) अयज्वाओं से पराङ्मुख (सुन्वतः) और यज्वाओं का (वृधः) वर्धयिता (विश्वस्य+) विश्व=सब का (दमिता) शिक्षक (विभीषणः) भयङ्कर (आर्य्यः) आर्य्य (इन्द्र) राजेन्द्र अर्थात् आर्य्य राजा (दासम्) दुष्टों का (यथा+वशम्) धीरे-धीरे अपने वश में (नयति) लाता है। लावें॥ त्वक्षु=तनूकरणे। त्वक्ष तनूकरना। समृति=सम्=ऋति। जिनमें सम्यक् प्रकार से अर्थात् बड़े समारोह से ऋति गमन हो उसे 'समृति' कहते हैं। षुञ्=अभिषवे। इससे 'सुन्वन्' बनता है। सुन्वन्=यजमान। यहाँ विस्पष्ट है कि आर्य्य राजा अयज्वा को अपने वश में लावे।

त्वं ह नु त्यद् दमायो दस्यूँ रेकः कृष्टी रवनोरार्य्याय। अस्ति स्विन्नु वीर्य्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥

६। १८। ३॥

अर्थ :—ज्ञानी जन राजा को उपदेश देते हैं हे नरेन्द्र! (ह) निश्चय (नु) शीघ्र ही (त्यत्=त्वम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध होकर आपने (दस्यून्+अदमायः) दुष्टों का दमन किया और (एकः) अकेले आपने (आर्य्याय) शिष्टजन को (कृष्टीः) बहुत से नव भूमि (अवनोः) दिये हैं। इस प्रकार से आप सदा दुष्ट निग्रह शिष्ट परिग्रह करते ही रहते हैं परन्तु (ते) आपके (वार्य्यम्) मंत्री, सेना, कोश, हस्ती, गज, अश्व, शस्त्र, आदि बल (अस्ति+स्वित्+नु) हैं? अथवा (न+स्वित्+अस्ति) नहीं हैं। (तत+तत्) उस उस विषय की खबर (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (विवोचः) कहा करें अर्थात्=ऋतुथा प्रत्येक ऋतु में राजा को

अपनी सभा में खबर देनी चाहिए कि अब कोश सेना आदि की यह दशा है।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्य्याय बृहतीममृध्राम्। यया दासान्यार्य्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥ ६ । २२ । १० ॥

अर्थ:—राजा के लिए उपदेश है (इन्द्र) हे राजेन्द्र! (नः) हम प्रजाओं के (शत्रुतूर्य्याय) शत्रुओं के नाशार्थ आप (बृहतीम्) बहुत (अमृध्राम्) अक्षय अहिंसनीय (संयतम्) संगत इकट्ठी होने वाली (स्वस्तिम्) सेनादिधन सम्पत्ति को (आ) चारों तरफ से इकट्ठा कीजिये (यया) जिस सेनादि सम्पत्ति से आप (दासानि) दुष्टों को (आर्य्याणि) शिष्ट (करः) कर सकें (वज्रिन्) और हे वज्रधारी राजन्! (नाहुषाणि + वृत्रा) मनुष्य सम्बन्धी बिघ्नों को (सुतुकानि) थोड़े कर सकें। यहाँ पर भी शिक्षा है कि दास को आर्य्य बनावो। नहुष नाम मनुष्य का है निघण्टु देखो ॥

आभिः स्पृधो मिथती ररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र। आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्य्याय विशोऽवतारीर्दासीः ॥ ६ । २५ । २ ॥

अर्थ:—(इन्द्र) हे राजेन्द्र सम्राट्! (आभिः) इन सामग्रियों से (मिथती) संग्राम करनेवाली (स्पृधः) सेनाओं को (अरिषण्यन्) बचाते हुए आप (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (व्यथय) नष्ट कीजिये और (आर्य्याय) शिष्ट जन के लिए (अभियुजः) चारों तरफ उपद्रव मचाने वाली (विषूचीः) और चारों ओर फैलने वाली (दासीः) परम दुष्ट (विशः) प्रजाओं को (अवतारीः) अच्छे प्रकार ताड़न कीजिये।

इस मन्त्र में विस्पष्ट पद है 'दासी विश' हिंसक प्रजाएँ जितनी हैं उन सबों का संहार करो। 'दासी' यह पद 'विश' का विशेषण है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्य्या च शूर। वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरापृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥६।३३।३॥

त्वम्। तान्। इन्द्र। उभयान्। अमित्रान्। दासा। वृत्राणि। आर्य्या। च। शूर। वधीः। वना+इव। सुधितेभिः। अत्कैः। आ। पृत्सु। दर्षि। नृणाम्। नृतम ॥

अर्थ :—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य शालिन् राजन्! (त्वम्) आप (तान्+उभयान्) उन दोनों प्रकार के (अमित्रान्) शत्रुओं को (वधीः) नष्ट करें। वे दो प्रकार के शत्रु कौन हैं? जो (दासों) प्रजाओं में उपद्रव मचाने वाले वाह्य शत्रु और (आर्य्या) आर्य्य-कृत (वृत्राणि) आन्तरिक अज्ञान इन दोनों का नाश करें (नृणाम्+नृतम) मनुष्यों के उत्तम नायक (शूर) शूर राजन्! आप (वना+इव) जैसे वन में कुठारादिकों से वृक्षों को काटते हैं तद्वत् आप (पृत्सु) संग्रामों में (सुधितेभिः) अच्छे बनाए हुए (अत्कैः) निज आयुधों से (दर्षि) अन्यान्य उपद्रवों का भी नाश करें। विविध सेना और रक्षणादि उपायों से वाह्य उपद्रवों की और विद्यादि शुभ कर्म्म के प्रचार से आन्तरिक अथवा आर्य्यकृत उपद्रवों की शान्ति किया कीजिये। दास—उपक्षयिता। कर्म्म विरोधी। ज्ञान के क्षय करने वाले। अथवा प्रजा के धन के क्षय करने वाले अज्ञानी। अथवा हिंसक। वृत्र—आवरक आवरण करने वाले अज्ञान यहाँ 'वृत्र' शब्द नपुंसक बहु वचन है। अतः अज्ञानार्थ है। आर्य्य—यह यहाँ वृत्र का विशेषण भी हो सकता है। क्योंकि अज्ञान भी बहुत बड़ा है। शीघ्र इसका नाश

नहीं होता। अथवा आर्य्यों में जो वृत्र अज्ञान उसे आर्य्य वृत्र कहते हैं॥

हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अपद्विषः॥ ६। ६०। ६॥

हतः। वृत्राणि। आर्य्या। हतः। दासानि। सत्पती। हतः। विश्वा। अप। द्विषः॥

अर्थ:—राजा और आमात्य मिल कर (आर्या) आर्य्यकृत (वृत्राणि) उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं। (सत्पती) सज्जन पुरुषों के पालन करने वाले वे राजा और मन्त्री (दासानि) दासकृत उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं। इस प्रकार (विश्वा+द्विषः) सब शत्रुओं को (अप+हतः) नष्ट करते हैं। हन् हिंसा गत्योः। हन्ति, हतः। यहाँ हतः द्विवचन है॥

यद्यपि आर्य्य नाम श्रेष्ठ और दास नाम दुष्ट का है। कभी-कभी विद्वान् धार्मिक पुरुष से भी अन्यान्य हो जाता है। आज कल भी यही रीति देखते हैं अतः ईश्वर आज्ञा देता है कि यदि विद्वान् श्रेष्ठ पुरुष से भी भूल हो जाय तो राजा मन्त्री और राजसभा को उचित है कि इनको भी दण्ड देवे। तब ही प्रजा में शान्ति रह सकती है।

त्वे असुर्य्यं वसवो न्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहा जुषन्त। त्वं दस्यूँ रोकसोऽग्न आज उरुज्योतिर्जनयन्नार्य्याय॥७।५।७॥

अर्थ:—(मित्रमहः) हे मित्रों के पूजयिता (अग्ने) अग्ने मन्त्रिन्! (त्वे) आपकी सहायता के निमित्त (वसवः) वसु नाम के कार्य्य सम्पादक राज्याधिकारी गण (असुर्य्यम्) विविध उपायों की (नि+ऋण्वन्) आयोजना करते हुए (हि) निश्चय, नियमपूर्वक वे (ते) आपके (क्रतुम्) कार्य्य को अथवा आपकी

आज्ञा को (जुषन्त) सेवन करते हैं। इस हेतु निर्भय होकर (त्वम्) आप (ओकसः) प्रत्येक स्थान से (दस्यून्) दुष्ट=कर्म्म रहित पुरुषों को (आजः) दूर फेंक दीजिये और इस प्रकार (आर्य्याय) शिष्ट जन के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (जनयन्) उत्पन्न करते हुए आप सदा अपने कार्य्य में निर्भर रहें। असुर्य्यम्=असुर=वीर तत्सम्बन्धी असुर्य्य॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः। आ योऽनयत् सधमा आर्य्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन्॥ ७। १८। ७॥

अर्थः—(पक्थासः) पक्थ (भलानसः) भलाना (अलिनासः) अलिन (विषाणिनः) विषाणी (शिवासः) शिव ये सर्व प्रकार के मनुष्य (आभनन्त) अच्छे राजा की कीर्त्ति को गावें (यः) जो राजा (सधमाः) सभा की आज्ञा को मानते हुए (तृत्सुभ्यः) हिंसक दुष्ट पुरुषों से रक्षा करके (आर्य्यस्य) शिष्ट पुरुष के (गव्या) पदार्थों को (आ+अनयत्) सर्वदा लाया करता है और (नॄन्) दुष्ट मनुष्यों को (युधा) युद्ध के द्वारा (अजगन्=अजगत्) शासन किया करते हैं॥ पक्थ=पाचक यज्ञादि कर्म्म में पाक करके लोगों को सत्कार करने वाले। भलाना=वाग्मी, भद्रमुख प्रिय भाषण करने वाले सदा सुप्रसन्न। अलिन=तपस्यादि से रहित विलासी पुरुष। विषाणी=विषाण=शृंग=सींगधारी अर्थात् मलिन। शिव=मंगल मूर्ति। सधमा=सध+मा, सध=साथी। मा मानना। साथियों का मानने वाला अर्थात् सभा की आज्ञा मानने वाला। भनन्त। भनतिः शब्दकर्म्मा।

य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्य्यात्सप्त सिन्धुषु। वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ ८। २४। २७॥

अर्थः—(यः) जो परमात्मा (ऋत्तात्+अंहसः) भालू स्वरूप पाप से (मुचत्) छुड़ाता है (वा) और (यः) जो (सप्तसिन्धुषु) सर्पण शील नदियों के तट पर अन्नादि करने वालों को (आर्य्यात्) आनन्द पहुँचाता है। हे (तुविनृम्ण) आनन्दस्वरूप धनसम्पन्न परमेश्वर! आप (दासस्य) जगत के क्षय करने वाले मनुष्यों के (वधः) वध साधन अस्त्रादिकों को (नीनमः) नमाओ अर्थात् दूर करो। सायणः—ऋन् मनुष्यान् क्षणोतीति ऋत्तः। मनुष्य के हिंसक राक्षस को ऋक्ष करते हैं। आर्य्यात् = सायण कहते हैं कि आर्य्यात् क्रिया पद है। ऋ गति-प्रापणयोः = गत्यर्थक और प्रापणार्थक 'ऋ' धातु से आशीर् लिङ् में बनता है। सप्त = सर्पणशीलासु। बहने वाली। यहाँ सायण भी 'सप्त' शब्द का अथ पक्षान्तर में सर्पण शील ही करते हैं। तुविनृम्ण। बहुधनेन्द्र। दास = उपक्षयिता। नीगमः = नमय।

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः। उपो सु जात-मार्य्यस्य वर्धनमग्निं नक्षत नो गिरः॥ ८। १०३। १॥

अर्थः—(गातुवित्तमः) गायकों के भाव का परमज्ञाता वह परमात्मा साधकों के हृदय में (अदर्शि) दृष्टिगोचर होता है। (यस्मिन्) जिसके निमित्त (व्रतानि+आदधुः) व्रत धारण करते हैं। ऐसे (अग्निम्) प्रकाशक और (उपो) हृदय के समीप (सु+जातम्) सुप्राप्त (आर्य्यस्थ+वर्धनम्) आर्य्य को बढ़ाने वाले परमात्मा को (नः+गिरः) हमारी स्तुतिएँ (नक्षंत) प्राप्त हों। नक्ष गतौ।

या नो दास आर्य्यो वा पुरुष्टुताऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति। अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे॥ १०। ३८। ३॥

अर्थः—(पुरु+स्तुत) हे बहुस्तुत (इन्द्र) परमेश्वर ! (यः) जो (दासः) दुष्ट (वा) अथवा (आर्य्यः) शिष्ट पुरुष (अदेवः) देव रहित=यज्ञादि शुभ कर्म्मरहित अथवा आपकी स्तुति प्रार्थनादि से पराङ्मुख नास्तिक हैं और ऐसे पुरुष यदि (नः) हम लोगों से) युधये+चिकेतति) युद्ध करने की इच्छा करें तो हे भगवन् (ते+शत्रवः) वे देवरहित शत्रु (अस्माभिः) हमारे साथ (सुसहाः+सन्तु) अभिभव को प्राप्त होवें । और (त्वया) आपके द्वारा (वयम्) हम (संगमे) संग्राम में (तान्+वनुयामः) उनको नष्ट करें ।

वयो न वृक्षम्...विदद् स्वर्मनवे ज्योतिरार्य्यम् ॥१०।४३।४॥

ईश्वर आर्य्य ज्योति अर्थात् उत्तम ज्योति मनुष्य को देवें। यहाँ सायण 'आर्य्यम् प्रेर्यम्' आर्य्य शब्द का अर्थ प्रेर्य्य करते हैं।

अहमत्कम्...न यो रर आर्य्यं नाम दस्यवे ॥१०।४०।३॥

(यः) जो मैं (दस्यवे) दस्यु को (आर्य्यं) आर्य्य नाम वा श्रेष्ठ नाम (न+ररे) नहीं देता हूँ ॥

समज्र्या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्य्या जिगेथ॥१०।६९।६॥

अर्थः—(अज्र्या) मनुष्य हितकारी (पर्वत्या) पर्वतोद्भव (वसूनि) विविधरत्नादि धनको (सम्+जिगेथ) आपने जीता है और (दासा) दासकृत और (आर्य्या) आर्य्यकृत उपद्रवों को आपने शान्त किया है ।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् । सह्याम दासमार्य्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १० । ८३ १ ॥

अर्थः—(मन्यो) हे क्रोध ! (यः) जो पुरुष (ते) तुम्हारा

(अविधत्) सेवन करता है । (वज्र+सायक) हे वज्रवत् कठोर और बाणवत् तीक्ष्ण वध करने वाले मन्यु ! वह पुरुष (सहः) बाह्यबल और (ओजः) शारीरिक बल (विश्वम्+आनुषक्) सब बल को सर्वदा (पुष्यति) पुष्ट करता है और (युजा) सहायक (सहस्कृतेन) बलोत्पादित (सहस्वता) बलवान् (त्वया) आपके सहायक होने से (दासम्+आर्य्यम्) दासकृत और आर्य्य कृत उभयविध शत्रु को (सह्याम्) अभिभव करते हैं ।

प्रश्न—इन ऋचाओं के श्रवण से हम लोगों को एक और भी सन्देह उत्पन्न होता है आप कहते हैं कि आर्य्य और दस्यु अथवा दास दो वर्णों के नाम नहीं है । किन्तु शिष्ट और दुष्ट का नाम क्रम से आर्य्य और दास है अब हम पूछते हैं अनेक मंत्रों में कहा गया है कि दस्यु अव्रती अयज्वा है अतः ये दण्डनीय है । और आर्य्य व्रती यज्वा है अतः ये रक्षणीय हैं । इससे सिद्ध हुआ कि धार्म्मिक को आर्य्य और पापी को दस्यु कहते हैं । तब इस अवस्था में इसः—

"यो नो दास आर्य्यो वा पूरुष्टुताऽदेवः"

ऋचा में आर्य्य को अदेव कैसे कहा गया है क्योंकि जो 'अदेव' होगा वह तो दास ही होगा । पुनः आर्य्य को कभी 'अदेव' नहीं कहना चाहिये । पुनः—

'हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पती'

'त्वं ताँ इन्द्रोभयो अमित्रान् दासा वृत्रार्य्या च शूर'

इन ऋचाओं में कहा जाता है कि आर्य्य कृत और दास कृत दोनों उपद्रवों का शासन राजा वा मन्त्री करता है आर्य्यकृत उपद्रव कैसे ? जो उपद्रव करेगा वह आर्य्य ही नहीं वह तो दास या दस्यु है । पुनः "यया दासा न्यार्य्याणिवृत्राकरः" उसमें कहा

गया है कि दास को आर्य्य बनाओ। जो दुष्ट हो गया है उसको शिष्ट बनाना कैसे। ये ऋचाएँ सिद्ध करती हैं कि आर्य्य और दस्यु दो वर्ण पृथक्-पृथक् थे। दस्यु को वश करने के हेतु सदा यत्न किया करते थे। आर्य्य लोग में कोई-कोई 'अदेव' नास्तिक हो जाते होंगे। राजसभा उसको भी दबाने के लिए कोशिश करती होगी। इसी प्रकार जैसे आज कल भी ब्राह्मण लोग नास्तिक वा उपद्रविक हो जाते हैं। तद्वत् आर्य्य भी कभी-कभी उपद्रव करना आरम्भ करते थे। जैसे वसिष्ठ विश्वामित्र परशुराम और सहस्त्र-बाहु राजादि आर्य्य होने पर भी परस्पर युद्ध किया करते थे।

समाधान :—ऐ विद्वानों! आप अच्छी तरह विचारें "अदेव" पद देख कर आप को सन्देह उत्पन्न हुआ। आप लोगों ने अपने सन्देह का आप ही कुछ समाधान भी किया है। "आर्य्य" शिष्ट को कहते हैं इसमें सन्देह नहीं। जैसे जो अध्ययन करके एक बार पण्डित बन गया क्या वह पुनः दुराचार नहीं कर सकता। यदि पण्डित दुराचारी हो तो उसके लिये भी यह कहा जायगा कि जो पण्डित "अदेव" हो उसे दण्ड दो। पण्डित होने पर भी उसके साथ "अदेव" विशेषण लग सकता है। इसी प्रकार आर्य्य के साथ भी समझें और यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि अच्छा बुरा दोनों हुवा करता है। जैसे गुरु आचार्य आदि भी अपराध कर बैठते हैं वैसे आर्य्य बनने पर भी पश्चात् दुराचारी बनने की सम्भावना है। यहाँ ईश्वर तुल्य भाव से उपदेश देता है कि क्या आर्य क्या दास दुष्ट होने से दण्डनीय हैं।

दुष्ट तो दुष्ट ही है। अच्छा भी कभी-कभी कुकर्मी बन जाता है इसमें सन्देह की कौन बात? जब "स्वधाभिर्ये अधिशुप्तावजुह्वत" 'वे मायावी अपने ही मुख में हवन करते हैं' ऐसा वर्णन मंत्र स्वयम् करता है और इसी के अनुकूल कौषीतकी और वाजसनेयी

भी हैं "असुरा वा आत्मन्य जुहवुरुद्वातेऽग्नौ । ते पराभवन् देवाश्च हवा असुराश्चास्पर्धन् । ततो हासुरा अभिमानेन न कस्मैचन जुहुम इति स्वेष्वेवाऽऽस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते पराबभूवुरिति" इत्यादि प्रमाण प्रस्तुत करते हुए। यहाँ आप देखते हैं कि दस्यु के स्थान में असुर शब्द प्रयुक्त हुआ। परन्तु असुर कोई आर्य्य से पृथक् जाति नहीं। जो दुष्ट नास्तिक अकर्म्मण्य हुए वे भी असुर नाम से व्यवहृत होने लगे। अतः दास वा दस्यु भी कोई भिन्न जाति नहीं।

प्रश्न–सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्य्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥

अ० ५ । ११ । ३ ॥

अर्थ :—ईश्वर कहता है कि (सत्यम्) सत्य है इसमें अणु-मात्र भी तुम सन्देह मत करो (काव्येन) स्वाभाविक ज्ञान से (अहम्+गभीरः) मैं गम्भीर हूँ (सत्यम्) यह सत्य है कि (जातेन) सर्व प्राणी के साथ वर्त्तमान मैं (जातवेदाः) सब जात=भूत=प्राणी मात्र को जानने वाला हूँ। हे मनुष्यों ! तुम सत्य जानो (यद्+व्रतम्) जिस नियम को (अहम्+धरिष्ये) मैं स्थापित करूँगा (मे) उस मेरे व्रत को (महित्वा) अपनी महिमा से (न+दासः) न तो दास और (न+आर्य्यः) न आर्य्य (मीमाय) तोड़ सकेगा।

यहाँ पर ईश्वर कहता है कि मेरे नियम को न दास और न आर्य भग्न कर सकता है। यहाँ यदि दास शब्द का केवल दुष्ट अनाचारी चोर आदि अर्थ ह। तो ईश्वर का कथन असत्य हो जायगा क्योंकि दुष्ट चोर तो ईश्वर के नियम को भग्न ही कर रहा है। अतः दास और आर्य्य दो जातियाँ हैं।

समाधान :—ईश्वरीय नियम को कोई भी भङ्ग नहीं कर सकता, क्या चोर भूखा रह सकता है। सोए विना अपना स्वास्थ्य रख सकता है। ज्वरादि से पीड़ित नहीं होता अग्नि उसे नहीं जलाती। श्वास प्रश्वास विना निर्वाह कर सकता है। यदि यह सब नहीं कर सकता है तो वह ईश्वरीय नियम को भङ्ग नहीं कर सकता। अब रह गया चोरी डकैती आदि कुकर्म सेवन, सो ईश्वर का नियम नहीं, किन्तु यह आज्ञा है कि कुकर्म सेवन मत करो। सत्य बोलो धर्म करो अधर्म त्यागो इत्यादि। मनुष्य को ईश्वर ने स्वतन्त्र बनाया है अतः आज्ञा भङ्ग कर सकता है। नियम भङ्ग नहीं। यहाँ ही कहा गया है। यथा :—

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्। त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ सचिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय॥

अथर्व ५। ११। ४॥

हे वरणीय! हे अन्नादिक प्रदान से जगत् पालक ईश! आपसे बढ़ कर कोई कवितर नहीं, मेधा से कोई धीरतर नहीं, समस्त भुवन को जानते हैं। हे भगवन् आपसे मायावी भी डरता है। यहाँ साफ कहा गया है कि मायावी भी ईश्वर से डरता है। परन्तु मनुष्य से न डर कर मनुष्यों में मायावी उपद्रव किया करता है। जिससे प्रजा में बड़ी हानि हुआ करती हैं इसी कारण यहाँ भी यह प्रार्थना है :—

तत् ते विद्वान वरुण प्रब्रवीम्यधो वचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उपसर्पन्तु भूमिम्॥ अथर्व ५। ११। ६॥

हे वरणीय पूज्यदेव! मैं प्रजाओं की सब दशा जानता हुआ आप से निवेदन करता हूँ कि आपकी कृपा से इन दुष्ट व्यवहार

शील पुरुषों का वचन नीच होवे। ये दास नीच भूमि को जांय। प्रजाओं में उद्वेगकारी और दुष्ट जनों का वर्णन है।

आप लोग यहाँ इतना और जानें कि ईश्वर की ऐसी इच्छा है कि ईश्वर-विमुख कोई मनुष्य न होवे। ईश्वर राजा को बराबर आज्ञा देता है कि जो चोर नास्तिक है जो सज्जन पुरुष को अकारण क्षति पहुँचाया करता है जो प्रजाओं में अशान्ति फैलाता है उसका शासन करो। बहुत-सी ऋचाएँ ऐसी हैं जिनमें दास वा दस्यु पद नहीं आया है किन्तु 'ब्रह्मद्विट्' शब्द का प्रयोग है इस ब्रह्मद्विट के लिए भी दासवत् ही आज्ञा है। ईश्वर, वेद, ब्रह्मवित और तपस्या आदि अर्थ में ब्रह्म शब्द आता है। इन सबों का जो द्वेषी हो उसे 'ब्रह्म द्वेषी' वा 'ब्रह्मद्विट्' कहते हैं। इसमें प्रमाण :—

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥

ऋग्वेद ३। ३०। १७॥

अर्थ :—(इन्द्र) हे ऐश्वर्य्य शालिन् राजन्! आप (रक्षः) राक्षस को (उद्वृह) नष्ट करो (सहमूलम्) जड़ मूल से उसे काट डालो। (मध्यम्) उसके मध्यभाग को काट दो (प्रत्यग्रम्) प्रत्येक अग्रगामी को (शृणीहि) हनन करो (सललूकम्) उस पापी को (आकीवतः) बहुत दूर (चकर्थ) कर दो इस प्रकार हे राजन्! (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर, वेद, वेदज्ञ पुरुष तपस्यादि शुभकर्म इन सबों से द्वेष करनेवाले दुष्ट पुरुष के लिए (तपुषिम्) तापक = तपा कर घात करने वाले (हेतिम्) आयुध (अस्य) फेंको। उद् + बृह = बृह वृहू उद्यमने। शृणीहि = शॄ हिंसायाम्। कीवतः = कियतः। सललूकम् = सृ गतौ। तपुषिम् = तप संतापे। हेतिम् = हन हिंसागत्योः। = अस्यअसुक्षेपणे लोटिरूपम्।

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्त मनवायं किमीदिने ॥

ऋ० ७ । १०४ । २ ॥

अर्थ :—(इन्द्रासोमा) हे राजन् तथा सौम्य मन्त्रिन् ! (अघशंसम्) सर्वदा पाप की चर्चा करने वाले (अघम्) पापी को आप दोनों मिलकर (अभि) हर एक प्रकार से नष्ट करें (तपुः) जगत के तपाने वाला वह (ययस्तु) क्षयको प्राप्त हो । अथवा आप दोनों से संतप्यमान होकर क्षय को प्राप्त हो । यहाँ दृष्टान्त देते हैं—(अग्निवान्+चरुः+इव) अग्नि संयुक्त चावल के समान वह गल-पच जाय । हे राजन् तथा मन्त्रिन् ! (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्म द्वेषी (क्रव्यादे) मांसभक्षक (घोरचक्षसे) भयङ्कर रूपवाले (किमीदिने) कुटिल पिशुन मनुष्य के निमित्त आप दोनों (अनवायम्) सर्वदा (द्वेषः+धत्तम्) द्वेष धारण करें । अघ-शंस = अघ = पाप, शंस = कहने वाला पाप की ही प्रशंसा करने वाला । अघ = पाप, पापी । जैसे पाप शब्द का अर्थ पाप और पापी दोनों होता है तद्वत् । क्रव्याद = क्रव्य + आद, क्रव्य = मांस, आद = भक्षक अर्थात् मांसभक्षक । किमीदी = किमिदानीं किमि-दानीम् = आज क्या है आज क्या है इस प्रकार से जो कहता फिरता है उसे 'किमीदी' कहते हैं ।

यहाँ पर आप लोग देखते हैं कि जो दण्ड दस्यु और दास के लिये है वही दण्ड इस राक्षस, क्रव्याद ब्रह्मद्वेषी पिशुन के लिये भी है । परन्तु आप लोग अच्छे प्रकार जानते हैं कि राक्षस वा ब्रह्मद्वेषी वा किमिदी (पिशुन = चुगला) कोई जाति विशेष नहीं । आज हम लोगों में भी बहुत से राक्षस विद्यमान हैं । बहुत से लोग क्रव्याद हैं । बहुत से ब्रह्मद्वेषी हैं । इससे सिद्ध है कि आर्य्य

और दस्यु दो जाति नहीं। वेदों में विस्पष्ट कहा गया है कि अनेक अधार्मिक राजा मिल एक धार्मिक राजा को परास्त नहीं कर सकते।

"धर्म्म की महिमा"

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः। सत्या नृणा मद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु॥

७। ८३। ७॥

अर्थः—(अयज्यवः) अयज्यु अर्थात् यज्ञ विरहित अर्थात् अधार्मिक (दशराजानः) दश राजा (समिताः) सम्मिलित होकर भी (सुदासम्) एक धार्मिक राजा से (इन्द्रावरुणा) हे राजन् तथा हे मन्त्रिन्! (न+युयुधुः) युद्ध नहीं कर सकते अर्थात् परास्त नहीं कर सकते। क्योंकि (अद्मसदाम्+नृणाम्) यज्ञ करने वाले मनुष्यों की (उपस्तुतिः) स्तुति प्रार्थना (सत्या) सत्य होती हैं और (एषाम्) इन यज्वा मनुष्यों के (देवहूतिषु) देव यज्ञों में (देवाः=अभवन्) देव अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् सम्मिलित होते हैं उन विद्वानों की शिक्षा से यज्वाओं का अभि-भव कदापि नहीं होता।

हे विद्वानों! आप देखते हैं कि धर्म का कैसा प्रभाव होता है। ईदृग् वैदिक आज्ञा को देखकर आर्यराजा सदा ब्रह्मद्वेषी को विनष्ट किया करें। यह शिक्षा वेद से लेनी चाहिये। वेदों में सत्यासत्य के विषय में बहुत कुछ कहा गया है सत्य का विजय असत्य का नाश सदा हुआ करता है।

"सत्य की महिमा"

सुविज्ञाने चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तादित्सोमोऽवति हन्त्यसत् ॥

ऋ० ७ । १०४ । १२ ॥

अर्थः—(चिकितुषे+जनाय) विद्वान् चेतन जन के लिये (सुविज्ञानम्) यह सुविज्ञान है अर्थात् जानने योग्य है कि (सत्+च) सत् और (असत्+च) असत् ये दोनों परस्पर (पस्पृधाते) ईर्ष्या रखते हैं। सत् असत् को, असत् सत् को दबाना चाहता है। परन्तु (तयोः) उन दोनों में (यत्+सत्यम्) जो सत्य है और (यतरत्) दोनों में जो (ऋजीयः) ऋजतम अत्यन्त ऋजु अकुटिल है (तत्+इत्) उसी को (सोमः) ईश्वर अथवा राजमन्त्री (अवति) सदा रक्षा करता है और (असत्+हन्ति) असत् का हनन करता है।

"दस्यु शब्द और महाभारत आदि"

अब मैंने अनेक उदाहरण वेदों से लेकर आप लोगों को सुनाये आर्य्य और दस्यु शब्द के ऊपर अधिक विचार करना उचित नहीं। मैं आगे आप लोगों को सुनाऊँगा कि पशु पक्षी प्रभृति के समान मनुष्यों में जाति की अनेक प्रकारता नहीं हैं। मनुष्य की सृष्टि भगवान ने एक ही प्रकार की है। हाँ? इसमें सन्देह नहीं, कि इनके वंश विविध हैं। जिसको 'पंचमानव' शब्द के ऊपर दिखलाऊँगा। अभी आप लोगों ने देखा है कि श्रेष्ठ, यज्वा, व्रती, ब्रह्मविद्, सज्जन, धार्म्मिक-शूरवीर को आर्य्य और नीच अयज्वा, अव्रती, ब्रह्मद्वेषी, असज्जन, अधार्म्मिक-शूरवीर क्रव्याद को दस्यु वा दास कहते हैं। वेदों में ये लक्षण देख श्रेष्ठ पुरुषों ने अपना नाम आर्य और दुष्ट पुरुषों का नाम 'दस्यु' रक्खा। तब से ये दोनों शब्द योग रूढ़ि के समान प्रयुक्त होने लगे। क्रमशः इन शब्दों के प्रयोग में बहुत अन्तर होता गया।

बहुत काल के पश्चात् ये जातिवाचक शब्द बन गये। जो लोग इस 'भारत खण्ड' में आकर निवास करने लगे वे अपने सम्पूर्ण वंश को आर्य्य' और अपने से भिन्न अन्यान्य देश वासी को 'दस्यु' कहने लगे और ये आर्य्य लोग जिनको युद्ध में परास्त करते थे, बहुतों को तो आर्य्य ही बना लेते थे और बहुत से पुरुषों को सेवक के समान रखने लगे। उन सेवकों को 'दास' नाम से पुकारते थे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये ये दास उस समय भी कदापि शूद्र नहीं कहलाते थे। परन्तु यह सब लीला बहुत पीछे होने लगी है। ऋषियों के समय में यह एक साधारण नियम था कि दुष्ट से दुष्ट पुरुष यदि सुधर जाय तो वह 'आर्य्य' कहलाते है क्योंकि कई एक मन्त्रों में आपने देखा है कि ईश्वर आज्ञा देता है कि उनको भी आर्य्य बनाओ। एवमस्तु 'दस्यु' शब्द के प्रयोग के ऊपर अब ध्यान दीजिये। यद्यपि कोश और अनेक प्रयोगों में 'दस्यु' शब्द आज भी प्रायः 'चोर' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है और वैदिकार्थ करीब-करीब यही है। तथापि आर्य्य भिन्न जाँगलिक पुरुषों में भी इसका प्रयोग अधिक होने लगा। जैसा कि आगे के प्रकरण से विदित होगाः—

विजित्य चाहवे शूरान् पार्वतीयान् महारथान्।
जिगाय सेनया राजन् पुरं पौरव रक्षितम्॥ १५॥
पौरवं युधिनिर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः॥ १६॥

....

ततः परमविक्रान्तो वाह्लीकान् पाकशासनिः।
दरदान् सह कम्बोजैरजयत्पाकशा सनिः॥ २३॥

प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ।
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ २४॥
महाभारत सभापर्व । अ० २७ ॥

यहाँ अर्जुन के दिग्विजय का प्रकरण है। अर्जुन ने महारथी पर्वत निवासी पार्वतीय शूरों को जीतकर पौरव रक्षित नगरी को विजय किया ॥ १५ ॥ पौरव और पर्वत निवासी 'दस्युओं' को जीत साल दल इकट्ठे उत्सव संकेतनामक सैन्यों को जीता। तब वाह्लीक और कम्बोजों के साथ दरदों को जीता ॥२३॥ तत्पश्चात् पूर्वोत्तर दिशा के आश्रित जो दस्यु लोग उन्हें भी जीता।

यहाँ उत्सव संकेत, पाण्डु, कम्बोज, वाह्लीक आदि के समान ही 'दस्यु' शब्द का प्रयोग है ॥

मान्धातोवाच ।

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शवर वर्वराः ।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्र मद्रकाः ॥ १३ ॥
पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ १४ ॥
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वेवै दस्युजीविनः ॥ १५ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतु भगवंस्तद्ब्रवीहिमे ।
त्वंबन्धु भूतोह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ॥ १६ ॥
महाभारत शान्तिपर्व अ० ६५ ॥

राजा मान्धाता इन्द्र से पूछते हैं कि यवन, किरात, गान्धार,

चीन, शवर, वर्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, और काम्बोज, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये सव कैसे धर्म्म करेंगे, और दस्यु जीवी पुरुषों की स्थापना हम कैसे कर सकते हैं आप कृपा कर यह विषय मुझे सुनावें।

यहाँ यद्यपि यवनादिकों से दस्यु को पृथक् रक्खा है। परन्तु देखने से प्रतीत होता है कि 'दस्युजीवी' शब्द विशेषण है अर्थात् यवनादि से लेकर शूद्र पर्यन्त सब ही दस्युजीवी अर्थात् नास्तिक हो गये हैं। इनकी रक्षा कैसे हो सकती है। ऐसा भाव प्रतीत होता है।

ब्राह्मणो मध्यदेशीयः कश्चिद्वै ब्रह्मवर्जितम्।
ग्रामं वृद्धियुतं वीक्ष्य प्राविशद्भैक्ष्यकांक्षया॥ ३० ॥
तत्र दस्युर्धनयुतः सर्व वर्णविशेषवित्।
ब्राह्मण्यः सत्यसन्धश्च दाने च निरतोऽभवत्॥ ३१ ॥
प्रादात्तस्मै च विप्राय वस्त्रञ्च सदशं नवम्।
नारीञ्चापि वयोपेतां भर्त्रा विरहितां तथा॥ ३२ ॥
एतत्सम्प्राप्य हृष्टात्मा दस्योः सर्वं द्विजस्तथा।
तस्मिन् गृहबरे राजन् तया रेमे स गौतमः॥६४॥
महाभारत शान्तिपर्व १६८ ॥

मध्यदेशीय कोई ब्राह्मण किसी ग्राम को ब्राह्मण रहित परन्तु धन सम्पति-संयुक्त देख भिक्षार्थ उस ग्राम में पैठा। वहाँ एक 'दस्यु' बड़ा धनाढ्य सर्व वर्णों के धर्मों को अच्छे प्रकार जानने वाला, ब्राह्मण्य, सत्यप्रतिज्ञ और दान में रत था। इस दस्यु ने उस ब्राह्मण को नवीन पौढ़दार वस्त्र और एक विधवा स्त्री दी।

वह ब्राह्मण उसी दस्यु के गृह पर रहने लगा इत्यादि इस ब्राह्मण के बारे में बृहत् कथा है ॥

यहाँ पर देखते हैं कि 'दस्यु' परम धर्मात्मा पुरुष है। इसको 'आर्य्य' न कहकर 'दस्यु' कहा है। इससे सिद्ध है कि जाँगलिक मनुष्यों को पीछे दस्यु कहने लगा ॥

"मनुस्मृति और दस्यु"

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ म० १०।४५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से भिन्न जो वर्ण हैं। क्या वे म्लेच्छ भाषा बोलते हों या आर्य भाषा वे सब दस्यु हैं। इससे सिद्ध है कि चतुर्वर्ण के अतिरिक्त जितने अन्यान्य पृथिवीस्थ मनुष्य हैं वे मनु के अनुसार "दस्यु" हैं इत्यादि कई एक स्थलों में मनुने दस्यु की चर्चा की है। इससे आप लोगों के उस प्रश्न का भी उत्तर हो गया। आप लोगों ने जो यह कहा था कि वैदिक 'दस्यु' को हम लोग 'शूद्र' कहते हैं। सो इससे सिद्ध नहीं होता। शूद्र से 'दस्यु' भिन्न हैं ॥

"ऐतरेय ब्राह्मण और दस्यु"

तद् ये ज्यायांसो न ते कुशलमेनिरे।ताननु व्याजहार अन्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एते अन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दाः मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ॥ ऐतरेय ब्रा० ७। १८ ॥

विश्वामित्र के अनेक पुत्र थे। किसी कारणवश उन्होंने शुनः शेप को भी अपना दत्तकपुत्र बनाया था। उसको दत्तकपुत्र बना-

कर विश्वामित्र ने सब पुत्रों से कहा है कि हे पुत्रो ! इसी को आप सब भाई ज्येष्ठ मानो। परन्तु विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र ने इसको कुशल नहीं माना। इस प्रकार आज्ञा भङ्ग करते हुए उन पुत्रों से विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे सन्तान नीच जाति को प्राप्त होवें। वे ये अन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिन्द, मूतिबा आदि नीच जाति के मनुष्य हुए। विश्वामित्र की सन्तान इस प्रकार दस्युओं में अधिक हैं॥

इससे वैदिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है अर्थात् जो अनाचारी हुए वे आर्य्यों से निकलकर विरुद्ध पक्ष ले अनार्य अन्ध्र प्रभृति नाम से प्रसिद्ध होने लगे। और इसी हेतु यह भी सम्भव है कि इनके पास धनधान्य बहुत हों क्योंकि वे आर्य से 'दस्यु' बने हैं।

ऋग्वेद में आये हुए 'दस्यु' शब्द के प्रयोगों को क्रम से मण्डल, सूक्त और मन्त्र के पता सहित लिखते हैं यथाः—

दस्यवः =	१–२१–८	दस्युतर्हणा =	९–४७–२
दस्यवि =	८–६–१४	दस्युभ्य =	५–२८–१
दस्यवे =	१–३६–१८		१०–४८–२
	१–१०३–३	दस्युम् =	१–३३–४
	८–५१–२		१–३३–७
	८–५६–२		१–३३–९
	९–९२–५		१–५३–४
	१०–४९–३		१–५९–६
	१०–१०५–७		१–११७–२१
	८–५५–१		१–१७५–३
	८–५६–१		२–१५–९
दस्युः =	२–११–१८		५–४–६

४-१६-९
१०-२२-८

दस्युघ्ना = ४-१६-१०

दस्युजूताय = ६-२४-८

दस्युम् = ८-७०-११
९-४१-२
१०-७३-५

दस्युहत्याय = १-५१-६
१-१०३-४
१०-९५-७

दस्युहत्ये = १०-९९-७
१०-१०५-११

दस्युहत्येषु = १-५१-५

दस्युहनम् = १०-४७-४

दस्युहन्तमम् = ६-१६-१५
८-३९-८
१०-१७०-२

दस्युहा = १-१००-१२
६-४५-२४
८-७१-११
८-७७-३
१०-८३-३

दस्यून् = १-६३-४
१-७८-४
१-१००-१८
१-१०१-५
५-३०-९
६-१४-३
७-१९-४
८-५०-८

दस्यून् = ३-३४-९
४-१६-१२
४-२८-३
४-२८-४
५-७-१०
५-१४-४
५-२९-१०
५-३१-५
५-३१-७
५-७०-३
६-१८-३
६-२३-२
६-२९-६
७-५-६
७-६-३
८-१४-१४
१०-५५-८
१०-८३-६
१०-९९-८

दस्योः = १-१०४-५
१-११७-३

२-११-१९	२-१२-१०
२-१३-९	३-४९-२
२-२०-८	६-३१-४
३-२९-९	८-९८-६
३-३४-६	९-८८-४

"दास शब्द पर विचार"

यद्यपि 'दस्यु' शब्द के साथ इसका भी विचार हो चुका है। और उन्हीं प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि दास और दस्यु शब्द प्रायः एकार्थक हैं। तथापि इन पर पृथक् करके इस हेतु मीमांसा करने की आवश्यकता हुई है कि वैदिक अर्थ इसका अब नहीं रहा इसके अर्थ में बहुत उन्नति हुई है। देश में साधु सन्त तुलसीदास सूरदास जैसे विद्वान् भी दास कहलाने लगे और विशेष कर शूद्र शब्द के साथ इसका बड़ा सम्बन्ध हुआ है। यहाँ तक कि शूद्रों के नाम करण में 'दास' शब्द जोड़कर नाम रखने की विधि आधुनिक धर्मशास्त्रों में देखते हैं और ब्राह्मणातिरिक्त क्षत्रियादि वर्णों के लिए भी दासत्व कहा गया है। अर्थात् सेवकार्थ में इसका प्रयोग अब हो गया है। जैसे कि राजा के दास दासी। परन्तु वेदानुसार इसका अर्थ न सेवक और न शूद्र किन्तु चोर, डाकू, नास्तिक आदि निकृष्ट अर्थ हैं। अब हमें परीक्षा करनी चाहिए कि वैदिक समय में यह क्या भाव रखता था। पहले मैं 'दास' इस शब्द के प्रयोग न देकर जिस धातु से यह सिद्ध होता है उसके दो एक प्रयोग देते हैं जिससे विस्पष्टतया प्रतीत हो कि यथार्थ में इसका क्या अर्थ है।

"दास धातु और वेद"

मा वीरो अस्मन्नर्यो विदासीत्। ऋ०।७।१।२१॥

मः = नहीं। वीर = वीर। अस्मत् = हमसे। नर्य = नर-हित-कारी। वि = विशेष। दासीत् = क्षय होवे। (१) सायण—"अपि च अस्मत् पृथग् भूतः अस्माकं वा षष्ठ्यर्थे पञ्चमी। वीरः पुत्रः नर्यो नरहितः माविदासीत् मोपक्षीयेत" (अस्मत्) हमसे पृथक् हो के हमारा (वीरः) वीर पुत्र जो (नर्यः) मनुष्य हितकारी है। (मा+वि+दासीत्) वह क्षय को प्राप्त न होवे।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने। ६।५।४॥

यः = जो। नः = हमको। सनुत्य = अन्तर्हित छिपा हुआ। अभिदासत् = हिंसा करता है, दुःख देता है। अग्नि = प्रकाश स्वरूप देव। सायण आह–"यः शत्रुः सनुत्यः अन्तर्हितदेशे वर्त-मानः सन्। नो अस्मान् अभिदासत् उपक्षयति बाधते"। (यः) जो शत्रु (सनुत्यः) छिप के (नः) हमको (अभि+दासत्) नष्ट करना चाहता है। हे देव! उसे आप नष्ट करें।

यो नः कदाचिदभि दासति द्रुहा। ७। १०४। ७

य = जो। नः = हमको। कदाचित् = कभी। अभिदासति = हिंसा करना चाहता है। द्रुह = द्रोह। सायण आह—द्रुहा द्रोहेण युक्तो नोऽस्मान् कदाचिदपि अभिदासति अभिहन्ति तस्मै इत्यादि। (यः) जो पुरुष (कदाचिदपि) कभी भी। (द्रुहा) द्रोह से

---

(१) अब यहाँ से आगे वैदिक शब्दों के विभक्ति रहित अर्थ पहले ही लिख देवेंगे ताकि जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी पद और पदार्थ मालूम हो। विभक्ति रहित का तात्पर्य यह है कि जैसे आत्मा शब्द के आत्मा, आत्मानौ, आत्मने आदि पद होते जाते हैं। अब यदि हम केवल 'आत्मने' का अर्थ करदें तो जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें यह कौन शब्द है ऐसा प्रतीत नहीं होगा। अतः प्रथम विभक्ति रहित अर्थ करके पुनः विभक्ति सहित अर्थ करेंगे।

युक्त होकर (नः) हमको (अभिदासति) हनन करना चाहता है। उसे कल्याण न हो।

उपस्ति रस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१०।९७।२३॥

उपस्ति = अधःपाती। अभिदासति = हनन करना चाहता है। (अस्माकम्) हमारा (सः) वह शत्रु (उपस्तिः + अस्तु) अधः शायी होवे अर्थात् उसका अधःपतन होवे (यः) जो (अस्मान् + अभिदासति) हमको हनन करना चाहता है।

'अभिदासति' प्रायः अभि पूर्वक 'दास' धातु का प्रयोग हिंसा ही अर्थ में आता है। इस प्रयोग में विदित होता है कि 'दास' धातु का अर्थ अच्छा नहीं है 'दस' धातु से भी 'दास' बन सकता है! अतः उसके भी प्रयोग लिखते हैं।

"दस धातु"

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति। १० । ११७ । २ ॥

उतो = और। रयि = धन। पृणतः = देता हुआ। न = नहीं। उपदस्यति = क्षीण होता है, घटता है। सायण आह—"उतो उत शब्दस्त्वप्यर्थे पृणतः प्रयच्छतः पुरुषस्य रयिः धनं नोपदस्यति न उपक्षीयते दसु उपक्षये दैवादिकः पृणदाने तौदादिकः" (उतो) और (पृणतः) दान देते हुए पुरुष का (रयिः) धन (न + उप + दस्यति) क्षीण नहीं होता है।

नास्यराय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथा ॥ ऋ० ५ । ५४ । ७ ॥

न = नहीं । अस्य = इसका । रै = धन । ऊति = रक्षा । (अस्य) इसको (रायः) पुत्र, पौत्र, पशु, हिरण्यादि धन (न + उपदस्यन्ति) नष्ट वा क्षीण नहीं होते। (नः + ऊतयः) और न

इसकी रक्षा ही नष्ट होती। (यं ऋषिम्) जिस ऋषि (वा+राजानम्) वा राजा को (सुपूदथ) आप प्रेरणा करते हैं।

इत्यादि उदाहरण में 'दस' धातु का अर्थ उपक्षय होता है। अर्थात् क्षीण होना 'दस' धातु से भी दास बनता है। अब साक्षात् 'दास' शब्द के प्रयोग कहते हैं। पहले के साथ भी इसको मिलावें।

"दास शब्द के प्रयोग"

यो दासं वर्णं मधरं गुहाकः। २। १२। ४॥

दास = उपक्षयिता। वर्ण = वर्ण, रङ्ग, रूप। अधर = नीच। गुहा-गह्वर। अकः-किया है। सायण-"यश्च दासं वर्णं दासमुपक्षयितारं अधरं निकृष्टमसुरं गुहा गुहायां अकः अकार्षीः" (यः) जो (दासम्+वर्णम्) उपक्षयकारी = विनाशकारी वर्ण को (अधरम्) नीच करके (गुहा+अकः) अन्धकार स्थान में कर दिया है। अर्थात् जगत् के विघ्न-कारी पुरुष को दण्ड देकर अन्धकार स्थान में राजा रखता है। सायण दास का असुर अर्थ करते हैं।

यथा वशं नयति दास मार्यः। ५। ३४। ६॥

आर्य लोग दास को अपने वश में लाते हैं।

अवगिरेर्दासं शम्बरं हन्। ६। २६। ५।

सायण आह—"तथा त्वं दासं यज्ञादिकर्म्मणा मुपक्षयितारं गिरेः पर्वतान्निर्गतं शम्बरमसुरम् अवहन् अवावधीः"। आपने (शम्बरम्) कल्याण के अवरोधक (दासम्) यज्ञादि कर्म के विरोधी दास को (गिरेः) पर्वत से भी पृथक् कर (अव+हन्) हनन किया है। सायण 'दास' का अर्थ यज्ञादि कर्म्मों का उपक्षयिता

अर्थात् विनाशयिता (विनाश करने वाला) करते हैं। यज्ञ के विनाश करने वाला नास्तिक के सिवाय कौन होता है।

दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धयः । ७।१६।२।

शुष्ण=प्रजाओं के धन का शोषण करने वाला। कुयव-पृथिवी पर उपद्रावक। हे राजन्! आप (यद्) जब (दासम्) दास। (शुष्णम्) शुष्ण और (कुयवम्) कुयव इत्यादि दुष्ट पुरुषों को (नि+अरन्धयः) अतिशय वश में ले आए हैं।

वृत्रेव दास वृत्रहा रुजम् । १० । ४६ । ६ ।

(वृत्रहा) विघ्नों का नाश करने वाला मैं (वृत्रा+इव) विघ्न वा पाप स्वरूप (दासम्) उद्वेगकारी पुरुष को (अरुजम्) सदा भग्न किया करता हूँ। यहाँ साक्षात् पाप स्वरूप में दास शब्द का प्रयोग है।

ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः । १०।१६।७।।

ऋधक्=पृथक्। कृषे करता हूँ। कृत्व्य=हन्तव्य। हथ=हननास्त्र। (कृत्व्यम्) हनन योग्य (दासम्) दास को (हथैः) विविध हननास्त्र से (ऋधक्+कृषे) पृथक् करता हूँ।

इत्यादि अनेक मन्त्र हैं जिनसे सिद्ध होता है कि "दास" कोई ऐसा नीच पुरुष होता है जो सर्व काल में हिंसनीय और दण्डनीय है। अब इसके सम्बन्धी के विषय में सुनिए।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव ।४।३०।१५।

वर्ची=अस्त्रधारी । प्रधि=शंकु=खूँटी ।

आपने (उत) और (दासस्य) दुष्ट पुरुष के सम्बन्धी (वर्चिनः) अस्त्र-शस्त्र धारी (पंच+शता) ५०० सौ और (सह-

स्राणि) सहस्रों पुरुषों का (प्रधीन्+इव) शंकु के समान (अधि+अवधीः) अत्यन्त हनन किया है। जैसे छोटी-छोटी खूटियों को बिना परिश्रम तोड़ डालते हैं। वैसे ही आपने दासों को तोड़-फोड़ किया है।

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः।
दासाना मिन्द्रो मायया। ४।३०।२१।

अस्वापयत्=हनन किया है। दभीति=भय दान। हथ=हननास्त्र। माया=प्रज्ञा, बुद्धि॥

(इन्द्रः) राजा ने (मायया) बुद्धि से (दभीतये) भय दिखलाने के हेतु (त्रिंशतम्+सहस्रा) ३०००० तीस सहस्र (दासानाम्) दासों को (हथैः) विविध हननास्त्रों से (अस्वापयत्) हनन किया है॥

दभीति=भीतिद=भीतिदान। भीतिद होना चाहिये परन्तु वेद में उलटा भी हो जाता है। स्वाप्=हिंसा करना मारना इत्यादि अर्थ यहाँ है। या मारकर सोला दिया है ऐसा भी अर्थ हो सकता है।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नी रधूनतम्।
साक मेकेन कर्म्मणा।३।१२।६।

नवति=९०। पू=नगरी। दासपत्नी=दासों से पालित। अधूनतम्=कम्पायमान किया। साकम्=साथ॥

(इन्द्राग्नी) हे राजन्! तथा हे मन्त्रिन्! आप दोनों ने (एकेन+कर्म्मणा+साकम्) केवल एक ही उद्योग के साथ (दासपत्नीः) दासों से पालित (नवतिम्+पुरः) ९० नगरों को (अधूनतम्) कंपा दिया है सायण दासपत्नी का अर्थ करते हैं

"दासयन्ति उपक्षयन्तीति दासाः उपक्षयितारः शत्रवः। तेपतयः पालका यासां ता दासपत्नीः। दसुउपक्षये। दासयतीतिदासः पचाद्यजन्तः। जो क्षय करे उसे दास कहते हैं। उपक्षयार्थक ण्यन्त 'दस' धातु से 'दास' को सायण सिद्ध करते हैं।

उन उदाहरणों से आप विचारें कि वैदिक समय में दास शब्द के क्या अर्थ थे। जितना ही विचारेंगे उतना ही प्रतीत होगा कि आज कल इस शब्द के अर्थ में वैदिक समय से बहुत अन्तर पड़ गया है। निःसन्देह, 'दास' और 'दस्यु' वैदिक समय में एकार्थक थे।

दास शब्दार्थ की उन्नति।

इसमें सन्देह नहीं कि यह 'दास' शब्द हमें एक गूढ़ इतिहास प्रकाशित कर रहा है। और अच्छे प्रकार बतलाता है कि शूद्र के साथ इसका क्यों प्रयोग होने लगा। आपने अभी देखा है कि दुष्ट, उपद्रवी, उपक्षयिता, अधार्मिक पुरुष का नाम दास है। वेद में ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि ऐसे पुरुषों को निर्मूल करो, अपने वश में लाओ, इन्हें आर्य्य बनाओ इत्यादि। वेदों में लक्षण देख ऐसे दुष्टों को ऋषियों ने 'दास' नाम दिया। जब आर्य्य लोगों की उन्नति हुई उस समय इन दासों को पकड़-पकड़ के अपनी सेवा में रखने लगे। यह स्वाभाविक बात है कि विजयी पुरुष परास्त वा पराजित पुरुषों को अपने काम में लाया करते हैं। सेवक बनाने पर भी इनका नाम दास ही रक्खा। जब भारतवर्ष में ऐसे उपद्रवी आदमी नष्ट होने लगे अथवा आर्यों के आश्रित हो गये, युद्ध करने वाले कोई न रहे। और जो रहे वे आर्यों के सेवक बन गये। इस अवस्था में धीरे-धीरे इस शब्द के प्राचीन अर्थ भी भूलते गये। जिस हेतु वे दास सेवा में पहले से ही

नियोजित किये गये थे अतः इसका अर्थ भी 'सेवक' हो गया❀ उस समय से इस शब्द का प्रधान अर्थ सेवक ही रह गया। सेवा नम्रता के साथ होती है। स्वामी के अधीन रहना पड़ता है। उस की आज्ञा-पालन में तत्परता दिखानी होती है। इस हेतु सेवक के समान आज्ञाकारी सर्वसाधारण पुरुष में भी दास शब्द का प्रयोग होने लगा। जिस हेतु ईश्वर महान् स्वामी है उसकी सेवा में जो रहे वे भी अपना नाम 'दास' रखने लगे। और इस प्रकार जहाँ सेव्य सेवक की अति प्रीति वा अति भक्ति प्रदर्शित हुई है वहाँ-वहाँ 'दास' शब्द का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार चोर डाकू नास्तिक अव्रती, असुर आदि अर्थ रखने वाला 'दास' शब्द अत्युत्तम अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। आहा! इस शब्द के अर्थ में कैसी प्रशंसनीय उन्नति हुई है। यह शब्द तुलसी दासादि महात्मा पुरुष के साथी बन पूज्य हो गया।

'दास शब्द से शूद्र शब्द का सम्बन्ध'

परन्तु इस शब्द के विचार के साथ-साथ मुझे अत्यन्त शोक होता है कि शूद्र के साथ इसका क्यों सम्बन्ध लगाया गया। मैं आगे दिखलाऊँगा कि शूद्र शब्द का अर्थ वेदानुसार निकृष्ट नहीं है। शूद्र शब्द बहुत उत्तम अर्थ रखता था। चारों वेदों में आप ढूँढ आइये एक वाक्य ऐसा नहीं मिलेगा कि जिस में दासवत् कहा गया हो कि शूद्रों को नष्ट करो वा शूद्रों को अपने वश में करो, ये बड़े दुष्ट, पापी, नीच, कर्म्म हीन, अव्रती हैं इत्यादि। किन्तु इसके विरुद्ध हम आप लोगों को दिखला चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिए समान ही प्रार्थना

❀ नोट—भृत्ये दासर, दासेय, दास, गोप्यक, चेटकाः। नियोज्य, किंकर, प्रैष्य, भुजिष्य, परिचारकाः। अमर०। शूद्रवर्ग।

आशीर्वादादि आए हैं। शूद्र आर्य है। परन्तु दास अनार्य। शूद्र वर्ण नहीं। शूद्र व्यवसायी। परन्तु दास चोर डाकू। शूद्र पूज्य, मान्य, यज्ञार्ह। परन्तु दास हन्तव्य। व्यवहार चलाने के लिये शूद्र एक अंग है। परन्तु दास सब अङ्गों को नाश करने वाला। इत्यादि वेद के अध्ययन से इन दोनों शब्दों में महान् भेद प्रतीत होता है।

तथापि मैं नहीं कह सकता कि भेद होने पर भी आज शूद्र शब्द का अर्थ इतना क्यों गिर गया। और एक आश्चर्य यह देखते हैं कि शूद्र शब्द के सुनने से जितनी घृणा उत्पन्न होती है उतनी दास शब्द के सुनने से नहीं। बल्कि दास शब्द के श्रवण से कुछ भी घृणा न उत्पन्न होकर एक अच्छा भाव प्रतीत होता है। जैसे विदुर आदि दासी पुत्र हैं। अब आप लोग विचार सकते हैं कि निस्सन्देह जो अर्थ दास शब्द का प्रथम था आज वही अर्थ प्रायः शूद्र शब्द का है और जगत् में इस प्रकार का परिवर्तन होता रहता है। कारण ये हैं कि बहुत समय के अनन्तर शूद्र शब्द का अर्थ सर्वथा विस्मृत हो गया और जिस कारण से बहुत से आर्य पुरुषों ने स्वयम् शूद्र का कार्य अपने सिर पर उठाया था वे कारण भी लोगों को स्मरण नहीं रहे और एक यह भी महान् परिवर्तन हुआ कि धीरे-धीरे ये पराजित दास गण भी शूद्र के कार्य करने में तत्पर हो गये वा लगाए गए। इस प्रकार ये दोनों मिल कर एक ही शूद्र वर्ण बने रहे। जिस कारण दासापेक्षा प्रथम से शूद्र प्रधान थे अतः शूद्र नाम तो प्रधान और "दास" यह नाम गौण हो गया। जैसे ये दोनों बहुत दिनों के पीछे मिल कर एक हो गए वैसे ही शूद्र और दास शब्द के प्रयोग भी एक हो गए अर्थात् इनके प्रयोग में कुछ भी भेद नहीं रहा शास्त्र के कथनानुसार चार ही वर्ण हैं। शुश्रूषा

करनेवाले सेवक आजकल शूद्र हैं। परन्तु यथार्थ में शुश्रूपु दास ही थे। शूद्र नहीं। जिस शुश्रूषा के कारण दास शब्द का अर्थ सेवक हुआ था। परन्तु वे दास अब पृथक् नहीं रहे। सब शूद्र ही कहाने लगे। इनका विशेष कार्य सेवा थी। सेवा करनेवाले के लिए 'दास' शब्द का प्रयोग खूब प्रचलित हो चुका था। आज भी सेवक को दास दासी कहते हैं इस कारण शूद्र वर्णों के नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग करने लगे। परन्तु यह सब वेद विरुद्ध बात है अतः यह सर्वथा त्याज्य है। शूद्र वर्ण के साथ कदापि भी दास शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। प्रयोग के विषय में मनुस्मृति का प्रमाण।

शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षा समन्वितम्।
वैश्यस्यपुष्टि संयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्य संयुतं। मनु० २। ३२॥

ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, राजा के वर्म्मा, वैश्य के पाल वा भूति और शूद्र के दास शब्द का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा मनुजी कहते हैं इसकी टीका में कुल्लूक भट्ट लिखते हैं यथा :—

तथाच यमः। शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुजः। भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्। विष्णुपुराणेप्युक्तम्। शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्म्मेतिक्षत्र संयुतम्। गुप्त दासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य शूद्रयोः।

यमस्मृति में लिखा है कि विप्र के नाम के साथ शर्म्मा और देव। राजा के साथ वर्म्मा और त्राता। वैश्य के साथ भूत और दत्त। शूद्र के साथ दास। विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि ब्राह्मण का नाम शर्म संयुक्त। क्षत्रिय का वर्म्म युक्त। वैश्य का गुप्त युक्त। और शूद्र का दास संयुक्त नाम रक्खे इति।

जातो नार्यामनार्य्यायामार्यादार्योभवेद्गुणैः ।
जातोप्यनार्य्यादार्य्यायामनार्य्य इतिनिश्चयः ॥

मनु० १० । ६७ ॥

जातः । नार्य्याम् । अनार्य्यायाम् । आर्य्याद् । आर्य्यः । भवेद् । गुणैः । जातः । अपि । अनार्य्यात् । आर्याय्याम् । अनार्य्यः । इति । निश्चयः ॥

(आर्य्यात्) आर्य्य से (अनार्य्याम्+नार्य्याम्) अनार्य्या नारी में अर्थात् दस्यु आदि की अनाड़ी स्त्री में (जातः) उत्पन्न हुआ बालक (गुणैः) गुणों से अर्थात् यदि उसमें अच्छे गुण होवें तो वह (आर्य्यः+भवेत्) आर्य्य कहलावेगा परन्तु (अना-र्य्यात्) दस्यु वा दास से (आर्य्यायाम्+अपि) आर्या स्त्री में भी (जातः+) उत्पन्न हुआ बालक (अनार्यः+इति निश्चयः) अनार्य ही है । यह निश्चय है ।

इससे भी सिद्ध होता है कि 'आर्य' शब्द पीछे जातिवाचक हो गया । इससे यह भी स्पष्ट है कि आर्य लोग दस्यु वा दास की कन्या से विवाह करते थे और उनके सन्तान 'आर्य' ही कहलाते थे । किन्तु अपनी कन्या अनार्य्यों को नहीं देते थे । 'आर्यावर्त' शब्द भी सिद्ध करता है कि यहाँ के लोग अपने को 'आर्य्य' नाम से पुकारते थे क्योंकि आर्यों के निवासस्थान का नाम 'आर्यावर्त' है । मनुस्मृति में आर्यावर्त की सीमा इस प्रकार कही गई है ।

आसमुद्रात्तुवैपूर्वा दासमुद्रात्तुपश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरंगिर्य्यो रार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥

मनु० २ । २२ ॥

पूर्व और पश्चिम समुद्रों के और हिमालय और विन्ध्याचल

अन्यान्य ग्रन्थों में आर्य्य शब्द ।

वेदों में 'आर्य्य' शब्द के श्रेष्ठ आस्तिकादि अर्थ देख ऋषियों ने अपने वंशजों के लिए 'आर्य्य' नाम रक्खा । ये ऋषि सन्तान जहाँ जहाँ गये वे इसी नाम से पुकारे जाते रहे । भारतवासी आर्य्यों में वेदों का पठन पाठन सदा बना रहा इस हेतु इनमें इस नाम का लोप नहीं हुआ । जो आर्य योरोप प्रभृति महाद्वीपों में जा बसे इनमें संस्कृत न रहने से धीरे-धीरे इस नाम को भूल गये यहाँ पर भी मुसल्मान के समय से यहाँ के लोग आर्य के स्थान में हिन्दू कहाने लगे । आजकल योरोपनिवासी भारतवासियों को 'इण्डियन' कहते हैं इस प्रकार भारतवासी ऋषियों ने अपने को 'आर्य' और जिस देश में प्रथम आ बसे उसका नाम 'आर्यावर्त्त' रक्खा । वेद से लेकर अभी तक इस शब्द का अर्थ पूर्ववत् ही प्रायः चला आया है । संस्कृत में प्रायः कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं जहाँ आर्य शब्द के प्रयोग न हों इसके प्रयोग अनेक प्रकार के मिलते हैं । ये दो चार उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं । वेदों से अनेक उदाहरण पूर्व में लिखे गये हैं ।

शवतिर्गतिकर्म्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते ।

विकार मस्याऽऽर्य्येषु भाषन्ते शव इति ॥ नि० २।२ ॥

यास्काऽऽचार्य्य कहते हैं कि 'शव' धातु गत्यर्थक है । केवल धातु का प्रयोग कम्बोज लोगों में होता है । परन्तु इस धातु का विकार अर्थात् इससे बना हुआ 'शव' शब्द आर्यों में प्रयुक्त होता है । शव = मुर्दा ।

इससे सिद्ध है कि 'आर्य्य' यह सम्पूर्ण भारतवासियों का नाम है । क्योंकि कम्बोज के मुकाबिले में यहाँ आर्य्य-शब्द प्रयुक्त हुआ है । पुनः—

जातो नार्य्यामनार्य्यायामार्य्यादार्य्योभवेद्गुणैः ।
जातोऽप्यनार्य्यादार्य्यायामनार्य्य इतिनिश्चयः ॥

मनु० १० । ६७ ॥

जातः । नार्य्याम् । अनार्य्यायाम् । आर्य्याद् । आर्य्यः । भवेद् । गुणैः । जातः । अपि । अनार्य्यात् । आर्य्याय्याम् । अनार्य्यः । इति । निश्चयः ॥

(आर्य्यात्) आर्य्य से (अनार्य्याम्+नार्य्याम्) अनार्य्या नारी में अर्थात् दस्यु आदि की अनाड़ी स्त्री में (जातः) उत्पन्न हुआ बालक (गुणैः) गुणों से अर्थात् यदि उसमें अच्छे गुण होवें तो वह (आर्य्यः+भवेत्) आर्य्य कहलावेगा परन्तु (अनार्य्यात्) दस्यु वा दास से (आर्य्यायाम्+अपि) आर्या स्त्री में भी (जातः+) उत्पन्न हुआ बालक (अनार्यः+इति निश्चयः) अनार्य ही है । यह निश्चय है ।

इससे भी सिद्ध होता है कि 'आर्य' शब्द पीछे जातिवाचक हो गया । इससे यह भी स्पष्ट है कि आर्य लोग दस्यु वा दास की कन्या से विवाह करते थे और उनके सन्तान 'आर्य' ही कहलाते थे । किन्तु अपनी कन्या अनार्य्यों को नहीं देते थे । 'आर्यावर्त' शब्द भी सिद्ध करता है कि यहाँ के लोग अपने को 'आर्य्य' नाम से पुकारते थे क्योंकि आर्यों के निवासस्थान का नाम 'आर्यावर्त' है । मनुस्मृति में आर्यावर्त की सीमा इस प्रकार कही गई है ।

आसमुद्रात्तुवैपूर्वा दासमुद्रात्तुपश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरंगिर्य्यो राय्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥

मनु० २ । २२ ॥

पूर्व और पश्चिम समुद्रों के और हिमालय और विन्ध्याचल

के बीच की भूमि का नाम आर्यावर्त है। कुल्लूकभट्ट टीकाकार आर्यावर्त शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं यथा—"आर्या अत्रावर्तन्ते पुनःपुनरुद्भवन्तीत्यार्य्यावर्तः"। यहाँ पर आर्य लोग पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं। अतः इसका नाम आर्यावर्त है। इस आर्यावर्त में रहने वाले को 'आर्य्यावर्तनिवासी' कहते हैं। यथा :—

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्म्मजीविनम्।
कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्य्यावर्त-निवासिनः॥ १०। ३४॥

शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण उत्पन्न निषाद कहलाता है। वह निषाद अयोगवी स्त्री में 'दास' नामक नौका-कर्म-जीवी को उत्पन्न करता है। जिसको आर्यावर्त-निवासी 'कैवर्त्त' कहते हैं। कैवर्त्त = मल्लाह = मत्स्यघाती॥

वाचस्पत्य कोश में 'आर्य शब्द' के ऊपर लिखा है कि स्वामी, गुरू, सुहृद्, श्रेष्ठकुलोत्पन्न, पूज्य, श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में आर्य शब्द आता है। 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय होने पर इसकी सिद्ध होती है। "कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः" कर्तव्य कार्य को करता हुआ अकर्तव्य को न करता हुआ अपने प्रकृताचार में सदा स्थित पुरुष आर्य कहाता है॥

'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया'।

उत्तम सदाचार से पुरुष 'आर्य' होता है। धन वा विद्या से नहीं।

शाकुन्तल, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार आदि नाटकों में आर्य शब्द के बहुत प्रयोग रहते हैं। नाटकों के लिए अनेक

नियम बने हुए हैं कि 'आर्य' शब्द के प्रयोग कैसे करने चाहिये। इसके दो एक नियम ये हैं :—

राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सोऽपत्यप्रत्ययेन च।
स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्य्येति चतरैः।
वाच्यौ नटीसूत्रधारौ आर्य्यनाम्ना परस्परम्।
वयस्येत्युत्तमैर्वाच्यो मध्यैरार्येति चाग्रजः। इत्यादि

ये सब साहित्य दर्पण के वचन हैं। राजा को हे राजन्! हे राजन्य, हे महाराज इत्यादि शब्दों से ऋषि सम्बोधित करें। विप्र स्वच्छन्दतया विप्र को किसी नाम से पुकारें। नटी और सूत्रधार परस्पर 'आर्य' शब्द व्यवहार करें। इसी प्रकार अमात्य को भी 'आर्य' कह कर पुकारते हैं। निज पत्नी सदा अपने स्वामी को 'आर्य' वा आर्यपुत्र कहती है। इत्यादि अनेक नियम हैं।

एक छन्द का भी नाम 'आर्य्या' है। आर्य्या छन्द में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्रायः कारिकाएं आर्य्या छन्द में हैं। सिद्धान्त मुक्तावली भी इसी छन्द में है। इसका लक्षण यह है :—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथातृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्य्या॥

जिस के प्रथम और तृतीय पाद में १२ मात्राएं और द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १८ मात्राएं हो उसे 'आर्य्या' वृत्ति (छन्द) कहते हैं। 'आर्य्यागीति' भी एक वृत्ति का नाम है। इत्यादि छन्दः-शास्त्र देखिये।

तेषां पुरस्ताद् भवन्नार्य्यावर्त्ते नृपा नृप ॥ भागवत ९।६।५॥

उनमें से कुछ आर्य्यावर्त के पूर्व में राजा हुए।

आर्य्यां द्वैपायिनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ भा० १०।७९।२० ॥

आर्य्या द्वैपायिनी को देख बलराम जी शूर्पारक देश को चले ।

आर्य्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ वाल्मीकि १।१६ ॥

यहाँ रामचन्द्र के लिये आर्य्य शब्द आया है ॥

अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ गीता ॥

महाकुल कुलीनाऽऽर्य्य सभ्यसज्जनसाधवः ॥ अमर ॥

ग्रहीतुमार्य्यान् परिचर्य्ययामुहुः ॥ माघ ॥

आर्य्यौ ब्राह्मणकुमारयोः ॥ पाणिनि सूत्र ॥

आर्य्यव्रतश्च पांचाल्यो न स राजा धनप्रियः ॥ महाभारत ॥

आर्य्य ईश्वरपुत्रः ॥ निरुक्त ६ । २६ ॥

अनेक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं आप स्वयं विद्वान् हैं। अनेक ग्रन्थ देखे हैं। इस हेतु इस शब्द के उपर अधिक विचार न करके अन्य विषय की मीमांसा करें। इसके पहले यह मैं आवश्यक समझता हूँ कि ऋग्वेद में आर्य्य शब्द का पाठ कहाँ कहाँ आया है उसको सुना दूं पहले भी आप लोगों से कह चुका हूँ। ऋग्वेद में आर्य्य शब्द इस प्रकार आया है :—

क्रमशः मण्डल, सूक्त और मन्त्र की संख्या दी गई है ॥

आर्य्यः =	५—३४—६	आर्य्या =	६—६०—६
	८—५१—९		९—६३—१४
	१०—३८—३		१०—६५—११
	१—१३८—३		१०—६९—६
आर्यम् =	१—१०३—३	आर्य्या =	७—३३—७
	१—१३०—८		१०—११—४

	१–१५६–५	आर्य्या =	६–२२–१०
	३–३४–९		७–८३–१
	९–६३–५	आर्य्यात् =	८–२४–२७
	१०–४३–४	आर्य्यान् =	१–५१–८
	१०–४९–३	आर्य्याय =	१–५९–२
	१०–८३–१		१–११७–२१
	१०–८६–१९		२–११–१८
आर्य्यस्य =	७–१८–७		४–२६–२
	८–१०३–१		६–१८–३
	१०–१०२–३		६–२५–२
आर्य्या =	४–३०–१८		७–५–६
	६–३३–३	आर्य्येण =	२–११–१९

प्रथम प्रश्न का समाधान ॥

आप के प्रथम प्रश्न का बहुत कुछ उत्तर हो गया है। अब शेष सुनिये !

पूर्वोक्त कथन से आपको अच्छे प्रकार विदित हो गया है कि आर्य और 'दस्यु' यथार्थ में दो जातिएं नहीं। आपने यह कहा था कि आर्य्यों का इन पर बड़ा क्रोध था। इनकी स्त्री का भी बध करना पाप नहीं समझते थे और ये लोग बड़े धनाढ्य थे अतः ये सभ्य थे। इसी के प्रसङ्ग में आपने कतिपय मन्त्र सुनाते थे। इस सबका समाधान अब सुनिये। प्रथम मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूँ कि वेदों में कोई इतिहास नहीं। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किन्तु मनुष्य के स्वभाव का वर्णन है। (वेदों में किसी विशेष पुरुष का इतिहास नहीं है इसको अन्य निर्णय में निरूपण करूँगा) अच्छा बुरा होना मनुष्य का स्वभाव है।

अभी आपको विश्वामित्र और उनके पुत्रों की आख्यायिका ऐतरेय ब्राह्मण से सुनाई है। विश्वामित्र के पुत्र जब दस्यु हो गए तब क्या सम्भव नहीं है कि वे लोग धनाढ्य हों। इनके निकट प्रत्येक युद्ध की सामग्री हो। विद्वानो ! बात यह है कि आर्य ही लोग अवैदिक होने के कारण 'दस्यु' वा अनार्य बन गये। इस कारण वे धनाढ्य एवं दुर्गप्रभृति आयोजनाओं से युक्त थे इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। मनुष्यों का ऐसा स्वभाव होता है कि वह नास्तिक क्रूर दुष्टाचारी बन जाता है॥ इसी स्वभाव को लक्ष्य करके वेदों में सब कुछ वर्णन हैं। वेदों में जो दस्यु वा आर्यों की संख्या का वर्णन है उसका भाव केवल यह है कि मनुष्य प्रायः हिसाब के साथ सब कार्य करता है। जब एक बलिष्ठ पुरुष अपने शत्रु के अनेक दुर्ग सैन्य अश्वादि देखता है तो उससे मुकाबिला करने के लिये अपनी आयोजना को भी उसी के अनुसार बढ़ाता घटाता हैं। कोई १००० कोई १०००० कोई १०००००० सेना रखना आरम्भ करता है उसका शत्रु भी उसी प्रकार अपनी आयोजना तैयार करता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में जानिये। अब उन मन्त्रों का अर्थ सुनिये उसके साथ-साथ उन सबों का भी निरूपण होता जायगा।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रोव्यास्यात् ।

दिवोदासाय दाशुषे ॥ ऋ० ४। ३०। २०॥

दिवु धातु का अर्थ द्यूत (जुआ) खेलना भी होता है। दिव् जो द्यूत-क्रीडादि व्यसन उसका दास अर्थात् शत्रु उसे दिवोदास कहते है। द्यूतक्रीडा (जुआ खेल) का निषेध वेद में बहुत आया है और इसका परिणाम बड़ा भयङ्कर दिखलाया गया है। ऋ० १०। ३४ सूक्त देखिये। अथवा दिव् = प्रकाश। अदास = अशत्रु 'दिवोऽदास' में दिव = अदास भी पदच्छेद होता है। शुभ कर्म्म

और ज्ञानादि प्रकाश का शत्रु नहीं किन्तु इन सबों का बढ़ाने वाला = अशत्रु। ऐसे पुरुष को 'दिवोदास' कहेंगे। अथवा। दिवः प्रकाशस्य दा दाता इति दिवोदाः परमेश्वरः। दिवोदां परमेश्वरं सनुते भजतेयः स (दिवादासः) दिव् जो प्रकाश उसे जो देवे वह दिवोदा अर्थात् परमेश्वर उसको जो भजे वह दिवोदास इत्यादि इसके अनेक अर्थ होंगे। दास का दाता भी अर्थ होता है। परन्तु वैदिक समय में यह अर्थ प्रायः नहीं था।

(इन्द्रः) राजा (अश्मन्मयीनाम् पुराम् + शतम्) दुष्ट दस्युयों की पाषाण निर्मित सैकड़ों नगरों को (वि + आस्यत्) तोड़कर फेंक देवें। ऐसा क्यों करें इस पर कहते हैं (दाशुषे) दाश्वान् अर्थात् विविध सुख देने वाले (दिवोदासाय) और द्यूतादि दुर्व्यसन के निवारण करने वाले पुरुष के हित के लिये। जब तक दुष्ट रहते हैं तब तक जगत् में सुख नहीं पहुँच सकता है और न ज्ञानादि का प्रकाश हो सकता है।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि केवल बलिष्ठ वा दुर्गादि सामग्री सम्पन्न होने से ही पुरुष सभ्य नहीं कहाता। पूर्व समय का इतिहास सूचित करता है बड़े-बड़े उपद्रवी हुए हैं। किसी-किसी मनुष्य का यह संकल्प था कि मैं अपने वश में सम्पूर्ण पृथिवी को कर लूँ। ऐसा-ऐसा बड़ा-बड़ा अनाचार और अकथनीय घोर पाप हुआ। लाखों देव मन्दिर तोड़े गये। लाखों सतीत्व नष्ट किये गये। लाखों सभ्य विद्वान् निरपराध मारे गये हैं। अतः केवल धनादि सम्पत्ति से आर्य्य नहीं कहलाता था।

"राक्षस किसको कहते हैं"

अब आपने जो स्त्री बध की चर्चा की थी उसका समाधान सुनिये।

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान मुत स्त्रियं मायया शासदानाम् ।
विग्रीवासोमूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् सूर्य्यमुच्चरन्तम् ॥
७ । १०४ । २४

जहि=हनन करो। यातुधान=राक्षस। शासदाना=हिंसा करने वाली। विग्रीव=ग्रीवा रहित। मूरदेव=मूर+देव मूर+मारण, हिंसा। देव=क्रीडक। हिंसा को ही जो क्रीडा मानता है।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र! आप (पुमांसम्+यातुधानम्) पुरुष राक्षस को (उत+मायया+शासदानाम्) और छल कपट से हिंसा करने वाली (स्त्रियम्) स्त्री राक्षसी को भी (जहि) हनन करो (मूरदेवाः) हिंसा प्रिय राक्षस (विग्रीवासः+ऋदन्तु) ग्रीवा रहित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाँय। हे इन्द्र! (ते) वे दुष्ट राक्षस (उच्चरन्तम्+सूर्यम्) उदित सूर्य को (मा+दृशन्) मत देखें।

यहाँ पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के राक्षसों के बध करने की आज्ञा पाई जाती है। राक्षस कौन हैं;। इसका पता इसी सूक्त से लगता है। दस्यु के बड़े भाई राक्षस हैं। जो लोग सदा रात्रि में मारना-पीटना लूटना आदि कर्म करते हैं। जो कभी-कभी मनुष्य के मांस भी खाते हैं। जो सदा हिंसा करना ही परम धर्म समझते हैं वे राक्षस हैं। मनुष्यों के निवास स्थान पर आक्रमण करते हैं अतः ये 'यातुधान' कहाते हैं (यातु=आक्रमण करना। धान=धानी जैसे राजधानी) धान वा धानी शब्द एकार्थक है। कच्चे मांस तक खा जाते हैं अतएव इनको क्रव्याद (क्रव्य=मांस। आद=भक्षक) कहते हैं। गदहे के समान चिल्लाते हैं अतः 'राक्षस' अथवा जिनसे अपनी रक्षा की जाय। इनके नामों से ही पता लगता है कि घृणित कर्म करने वाले को राक्षस पिशाच,

आदि कहा करते हैं अब यहाँ कतिपय मन्त्र इस विषय में प्रथम सुनिये।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमपद्रुहा तन्वं गूहमाना। वब्राँ अनन्ताँ अवसा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः॥

७। १०४। १७।

प्र = ०। या = जो। जिगाति = जाती है। खर्गला = उलूकी = उल्लूपक्षी नक्त = रात्रि। तनू = शरीर,। वब्र = गर्त, खड्डा, खाईं। अनन्त = बहुत। पदीष्ट = गिरे। ग्रावा = पत्थर। उपब्द = उपशब्द = चिल्लाहट।

(या) जो राक्षसी (नक्तम्) रात्रि में (द्रुहा) से युक्त हो (खर्गला+इव) उलूकी के समान (तन्वम्+अप+गूहमाना) शरीर को छिपाती हुई (प्र+जिगाति) हिंसा करने के लिये निकलती है (सा) वह राक्षसी (अनन्तान्+वब्रान्) अनन्त खण्डकों में (अव+पदीष्ट) अवाङ्मुख होकर गिरे और (रक्षसः) राक्षसों को (अपब्दैः) चिल्लाहटों के साथ (ग्रावाणः+घ्नन्तु) पत्थर हनन करें॥

वितिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन। वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे॥ ७। १०४। १७॥

मरुत = बलवान् पुरुष। विट् = प्रजा। वि = पक्षी। रिपू = हिंसा॥

(मरुतः) हे वायु समान बलवान् रक्षक पुरुषो! आप लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वम्) विविध प्रकार से रक्षार्थ स्थित होवें। तदनन्तर (इच्छत) दुष्टों के संहार के लिये इच्छा

करें (रक्षसः+गृभायत) राक्षसों को पकड़ें। और पकड़कर (संपिनष्टन) चूर्ण-चूर्ण कर देवें (ये) जो (वयः+भूत्वी) उलूक पक्षी के समान होकर (नक्ताभिः) रात्रि में (पतयन्ति) इधर-उधर हिंसा के लिये गिरते हैं (ये+वा) और जो (देवे+अध्वरे) प्रदीप्त यज्ञ में (रिपः+दधिरे) हिंसा किया करते हैं।

यहाँ विस्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ के विध्वंसकारी और रात्रि में आक्रमण करने वाले को राक्षस कहते हैं। अब आप विचार सकते हैं कि ऐसे नर नारी का वध क्यों कहा गया है।

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथावनं पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः॥

७। १०४। २१॥

यातु=हिंसक। पराशर=पराशातयिता, हिंसक। आविवासन्=आता हुआ। परशु=एक प्रकार का शस्त्र, फरसा, (जा शस्त्र परशुरामजी का था)।

(इन्द्रः) परमैश्वर्य्यशाली राजा (यातूनाम्) उन हिंसक यातुधान राक्षसों का (पराशरः+अभवत्) भी हिंसक है। जो राक्षस (हविः+मथीनाम्) यज्ञों के नाश करने वाले हैं और (अभि+आविवासताम्) सदा आमने-सामने आक्रमण करने वाले हैं उनका भी नाश करने वाला राजा ही होता है (परशुः+यथा+वनम्) जैसे वन को परशु-शस्त्र काटता है (पात्रा+इव) और जैसे मिट्टी के पात्रों को मुद्गर चूर्ण करता है तद्वत् (शक्रः) समर्थ वीर पुरुष (सतः+रक्षसः) प्राप्त=आगत राक्षसों को (भिन्दन्) छिन्न-भिन्न करता हुआ (अभि+इत्+उ+एति) चारों ओर जाता है। सत्=प्राप्त,। तिर और सत् ये दोनों प्राप्त के नाम हैं। निरुक्त ३। २०॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातु मुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातु मुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥७।१०४।२२॥

उलूकयातु = उलूक के समान गमन करने वाला। शुशुलूक-यातु = शुशु = शिशु = बालक । छोटे बच्चे उलूकवत् गन्ता । श्वयातु = कुक्कुरवत् गन्ता कोक = चक्रवाक चकवा । सुपर्ण = श्येन, बाजपक्षी । गृध्र = गीध । दृषत् = पाषाण ।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! उलूक, छोटे उलूक, कुत्ते, चकवा, बाज और गीध के समान आक्रमण करनेवाले जो (रक्षः) राक्षस हैं उन्हें पाषाण से (प्र+मृण) हनन करो ।

इतने वर्णन से आप लोगों को अच्छे प्रकार विदित हो गया होगा कि राक्षस वा राक्षसी कौन है। और क्यों इनके बध के लिए आज्ञा है। निःसन्देह महादुष्ट पुरुष को 'राक्षस' कहते हैं। अपने कर्म से ही मनुष्य राक्षस बन जाता है। लङ्काधिपति रावण मद्यपी ऋषिकुल का था। कुवेर उसके भ्राता थे। विभी-षण समान जिसका भाई था। वह राक्षस कहलाता था। वह हम ही लोगों के समान पुरुष था। उसके बीस हाथ दश मुखादि का वर्णन केवल निन्दा सूचक है। यथार्थ में दो हाथ और एक ही मुख था। दुष्टता के कारण उसके भयङ्कर रूप का वर्णन किया गया है। परन्तु वह आर्य्य का ही सन्तान था। अपने घृणित कर्म से राक्षस बन गया था। ऐसे भयङ्कर जगत-विनाशक पुरुष वा स्त्री हों, सबको दण्ड देना चाहिये। इसी कारण श्रीरामचन्द्र ने शूर्पणखा को दण्ड दिया। इसी सूक्त में दो मन्त्र और हैं जो हमें बतलाते हैं कि कभी भी राक्षस-कर्म नहीं करना चाहिये। प्रत्युत इस नाम से भी बड़ी घृणा रखनी चाहिये। यथा :—

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदिवाऽऽयु स्ततप पूरुषस्य। अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ ७। १०४। १५ ॥

(अद्य) आज (मुरीय) मैं मर जाऊँ (यदि + यातुधान + अस्मि) यदि मैं राक्षस हूँ। (यदि + वा) और यदि मैं (पूरुषस्य + आयुः) किसी पुरुष की आयु को (ततप) नष्ट करता हूँ। यदि मैं ऐसा हूँ तो हे भगवन्! मैं आज ही मर जाऊँ। परन्तु यदि मैं ऐसा नहीं हूँ तो (यः) जो (मा) मुझको (मोघम्) व्यर्थ ही (यातुधान + इति + आह) यातुधान = राक्षस कहता है (सः) वह मिथ्या-भाषी (अधा) तब (दशभिः + वीरैः) दशवीर अर्थात् अपने सब बन्धु बान्धवों के साथ (वि + यूयाः) वियुक्त होवे।

यो माऽयातुं यातुधानेत्याह योवा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ॥ इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तो रधमस्पदीष्ट ॥ ७। १०४। १६ ॥

(यः) जो (अयातुम् + मा) अराक्षस मुझको (यातुधान + इति + आह) यातुधान = राक्षस कहता है (यः + वा) और जो (रक्षाः) राक्षस होने पर भी (शुचिः अस्मि + इति + आह) मैं पवित्र हूँ ऐसा कहता है। (तस्य) उस दोनों प्रकार के मनुष्य को (महता + वधेन) महान् बध के साथ (इद्रः) राजा वा परमेश्वर (हन्तु) हनन करे। और (विश्वस्य + जन्तोः + अधमः) समस्त प्राणी में अधम वह पुरुष (पदीष्ट) पतित होवे। अब आप लोगों ने जो कहा था। कि दस्यु के ऊपर आर्य्यों का भीं वध किया करते थे। उसका उत्तर आप लोगों को मिला।

ऐसी दुष्टा रात्रि में छोटे छोटे बच्चों को भी मार कर खाने वाली स्त्री को क्यों नहीं दण्ड होवे। अब आप लोग स्वयं इस पर विचार करें।

'नास्तिक वाचक कीकट और प्रमगन्द शब्द'

अब आपने प्रमगन्द का इतिहास जो सुनाया था उसका समाधान सुनिये।

किन्ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरंदुह्रे न तपन्ति घर्म्मम् आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः॥ ऋ० ३।५३।१४॥

यह भी दस्युयों का वर्णन है। प्रथम 'कीकट' और 'प्रमगन्द' इन दो शब्दों के ऊपर यास्क और सायण का जो अर्थ है वह दिखलाते हैं॥

कीकटाः किंकृताः किं क्रियाभिरिति प्रेप्सावान्। मगन्दः कुसीदी मांगदो मा मा गमिष्यतीति च ददाति। तदपत्यं प्रमगन्दो ऽत्यन्तकुसीदिकुलीनः। प्रमदकोवा योऽयमेवास्ति लोको न पर इति प्रेप्सुः॥

इसी की टीका सायण करते हैं यथा :—

कृताभिर्यागदानहोमलक्षणाभिः क्रियाभिः किं फलिष्यतीति अश्रद्दधानाः प्रत्युत पिवत खादतायमेव लोकोन पर इति वन्दन्तो नास्तिका कीकटाः इति। द्वैगुण्यादिलक्षणपरिमाणं गतोऽर्थोमामेवा गमिष्यतीति बुद्धया परेषां ददातीति मगन्दो वार्धुषिकः। तस्यापत्यं पुत्रादिः प्रमगन्दः॥

अर्थात् याग, दान, होमादिक्रिया से क्या फलेगा। खूब खाओ पीओ। यही लोक है परलोक कोई नहीं। ऐसे कहनेवाले अविश्वासी नास्तिकों को 'कीकट' कहते हैं। और जो अत्यन्त सूदखोर है उसे प्रमगन्द कहते हैं। यही दोनों का भाव है। यास्काचार्य्य 'प्रमगन्द' का पक्षान्तर में भी नास्तिक अर्थ करते हैं। अब सम्पूर्ण मन्त्र का यह अर्थ है :—

हे (मघवन्) अन्नादिकों से प्रजाओं के पोषक भगवन्! (कीकटेषु) नास्तिक मनुष्यों में (ते+गावः) तेरी गाएँ (किम्+कृण्वन्ति) क्या करती हैं (न+आशिरम्+दुह्रे) न तो यज्ञार्थ आशिर अर्थात् दूध देती (न+घर्म्मम्+तपन्ति) और न आज्यादि पदार्थ को तपाती हैं। अर्थात् हे भगवन्! नास्तिक जगदुद्वेगकारी पुरुष को आपने धन किस लिये दिया है। (नः+आभर) वह धन हम लोगों को दो। पुनः (प्रमगन्दस्य) अत्यन्त सूद लेने वाले वा नास्तिक के (नैचाशाखम्) नीचशाखा से प्राप्त अर्थात् नीचकर्म्म से प्राप्त (वेदः) धन (नः) हमारे लिए (रन्धय) सिद्ध करो॥

इसके अतिरिक्त 'वधीहिदस्युं' और 'अस्वापयत्' इन दोनों मन्त्रों का अर्थ पीछे कह चुके हैं। अब आप विचार करें कि इस "किंते कृण्वन्ति" मन्त्र से जो अपने आर्य और दस्यु का इतिहास निकाला था और 'प्रमगन्द' एक व्यक्ति विशेष का नाम रक्खा था वह यास्कादि के प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है। इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि आर्य्य और दस्यु दो भिन्न-भिन्न जातियाँ नहीं। जो आजकल नास्तिक 'अस्ति नास्ति दृष्टं मतिः। पाणिनि सू० ४-४-६०' शब्द का अर्थ है ठीक वही अर्थ कीकट शब्द का है। अतः नास्तिकों का संहार विधि वेद में कहा है।

रावणादिकों का इतिहास इस विषय में हमें क्या सूचित करता है ?

मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, पुराणादिकों में कहा गया है कि 'पुलस्त्य' सप्तर्षियों में से एक थे आज कल भी तर्पणीय ऋषियों में पुलत्य नाम आता है इसी पुलस्त्य के पुत्र वैश्रवा वैश्रवा के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकरण और विभीषण और शूर्प-नखा नाम की एक कन्या। इस प्रकार रावण भी आर्य्य ही था। इसी प्रकार कंस क्षत्रिय कुलोद्भव था। दैत्य दानव भी कश्यप के सन्तान थे। इन सब कथाओं का तात्पर्य यही है कि आर्य्य-सन्तान में से ही अनार्य्य वा दस्यु वा राक्षस वा दैत्यदानव वा असुर वा अन्यान्य जातियाँ निकली हैं। इस हेतु इनका धनाढ्य होना आश्चर्यजनक नहीं है। और जो कृष्णवर्ण, श्वेतवर्ण, दास वर्ण, वा आर्य वर्ण आदि शब्द आते हैं वे केवल निन्दा और प्रशंसा सूचक हैं। रावण यद्यपि आर्य्यवंश और गौराङ्ग था तथापि पापी होने के कारण 'कृष्ण वर्ण' कहा जाता है। अतः कृष्णादिवर्ण पद से भी कुछ निर्णय नहीं कर सकते। यदि कहो कि अभी तक भारतवर्ष में कोल-भील संथाल किरात प्रभृति वे ही अतिप्राचीन मनुष्य अत्यन्त कृष्णवर्ण पाये जाते हैं और अभी तक काश्मीर प्रभृति देश में आर्य बड़े गौराङ्ग, बीच देश के भी द्विज गौर वर्ण ही विद्यमान हैं। उन्हीं गौर कृष्ण दोनों के विषय में वेद कहता हो तो यह कहना भी उचित नहीं। क्योंकि क्या कृष्ण-वर्ण आर्य नहीं होते हैं। काले आदमी को क्या ईश्वर ने नहीं उत्पन्न किया है। केवल वर्ण के ऊपर आर्यत्व निर्भर नहीं है। क्या विश्वामित्र के पुत्र कृष्ण थे जो 'दस्यु' हो गये। वेद के कृष्ण-वर्ण वा दासवर्ण वा आर्य वर्ण आदि शब्द से कोई लौकिक इतिहास

नहीं निकाल सकते। उष्ण प्रधान देश में चिरकाल निवास से मनुष्य का रङ्ग कृष्ण हो जाता है। इस देश में रहते-रहते आर्य भी काले हो गये। अथवा सृष्टि की आदि में अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए। काले गोरे सब रङ्ग हुए। इससे क्या सिद्ध होता है। क्या काले वर्ण को ईश्वर ने ज्ञान नहीं दिया। यदि कहो कि काले वर्ण कोल भील अभी तक अज्ञानी हैं तो क्या गौरववर्ण उत्तर और दक्षिण भाग में महा अज्ञानी विद्यमान नहीं हैं। आज भी हिमालय के पार्श्व में बड़े-बड़े अज्ञानी गौराङ्ग जङ्गली आदमी हैं। अंग्रेज़ का इतिहास कहता है कि करीब दो तीन सहस्र वर्ष पहिले ये भी महा अज्ञानी और जङ्गली थे। इससे सिद्ध होता है कि गौर, कृष्ण, दोनों आस्तिक-नास्तिक हो सकते हैं। वेद में केवल अवैदिक को दस्यु वा दास वा राक्षस वा पिशाच आदि कहा है। इति

"जाति शब्द पर विचार"

प्रश्न—जाति किसको कहते हैं ?

उत्तर—समानप्रसवात्मिका जातिः ॥ न्याय सू० ॥

हम अपने चारों तरफ विविध प्रदार्थों को देखते हैं। जल में विविध मत्स्य, मकर, कूर्म, मण्डूक, शुक्ति, शङ्ख आदि जल जन्तु,। स्थलभाग में विविध तृण, लता, ओषधि, वृक्षादि स्थावर। सरीसृप=सरकर कर चलने वाले सर्प आदि, पिपीलिका=चींटी आदि। तथा बन में रहने वाले सिंह, व्याघ्र, शृगाल, शशक, हरिण आदि अरण्यपशु। ग्राम में मनुष्यों के साथ रहने वाले गौ, महिष, बकरे, भेड़, हय, गज, ऊँट, गदहे, कुत्ते, आदि। आकाश और पृथिवी दोनों पर विचरण करने वाले विविध मक्षिकाएँ, दंशक, शुक, पिक, काक, गृध्र, चिल्ल, परावत, बक

आदि। इत्यादि अनेक पदार्थों से यह हमारी पृथिवी भूषित और परम सुशोभित है। इन सबों के रङ्ग, रूप, आकृति, वेष, स्वभाव आदि परस्पर बहुत भिन्न-भिन्न हैं। इन सब पदार्थों को हमारे ऋषियों ने प्रथम उत्पत्ति के अनुसार चार हिस्सों में विभक्त किया है। उद्भिज्ज—जो पृथिवी को फोड़कर निकलते हैं जैसे तृण, लता और वृक्ष आदि। द्वितीय—अण्डज, जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे जलचर मत्स्य और विहग आदि। तृतीय—पिण्डज, जो माता के उदर में कुछ काल निवास कर जन्म लेते हैं जैसे पशु मनुष्य। चतुर्थ—ऊष्मज = ऊष्मा = शीतोष्णता के योग से जो उत्पन्न होते हैं जैसे यूक, मत्कुण आदि।

सामान्य जाति ॥

अब आप किसी एक स्थान में सब पशुओं को इकट्ठे कर देखें। जब व्याघ्र शृगाल, गौ, भैंस, ऊँट, हाथी इन सबों को देखेंगे तो प्रथम सब में एकसमानता प्रतीत होगी। सबों के चार पैर देखकर कहेंगे कि ये "चतुष्पद" हैं चतुष्पदत्व सब में समान है। पुनः द्वितीय वार देखेंगे तो परस्पर भेद प्रतीत होने लगेगा। हाथी के समान ऊँट नहीं। ऊँट के समान घोड़े नहीं। घोड़े के समान गौ नहीं, इस प्रकार सब में भेद पावेंगे। पुनः तृतीय वार देखेंगे तो गायों में भी एक दूसरे से आकृतिएं भिन्न-भिन्न हैं ऐसा प्रतीत होगा। इसी प्रकार पक्षियों, जलचरों और वृक्षों में भी समानता और भिन्नता प्रतीत होगी। अब आप विचारें कि यद्यपि सब पशु चतुष्पद हैं तथापि आकृति और स्वभाव में एक-एक झुण्ड भिन्न-भिन्न हैं। जिनकी एक-सी आकृति अर्थात् स्वरूप है वे सब 'एक समान' कहलावेंगे। जैसे जितने हाथी हैं वे एक-समान हैं। जितने ऊँट हैं वे एक-समान हैं। इसी प्रकार अन्यान्य

पशु। हाथी का झुण्ड ऊँट के झुण्ड से और ऊँट का झुण्ड हाथी के झुण्ड से भिन्न प्रकार प्रत्यक्ष प्रतीत होगा। एक बालक भी कह सकता है कि हाथी से ऊँट भिन्न प्रकार का है।

एक-एक समुदाय में इस समानता के दर्शाने वाला जो पदार्थ-गत धर्म है अथवा स्वरूप अथवा आकृतिगत धर्म वा गुण है इसी का नाम लोगों ने 'जाति' रक्खा है। आप जब हाथियों का एक झुण्ड देखते हैं, तो एक समानता प्रतीत होती है। कोई आपसे पूछे कि यह समानता कैसे वा किस जरिये से प्रतीत होती है तो आप कहेंगे कि इनकी आकृति अर्थात् शरीर की बनावट सब की एक-सी है इसी से प्रतीत होता है कि यह सब समान हैं। इसी का नाम समानता अर्थात् *'सामान्य जाति'* है। अब आप ध्यान से देखेंगे तो एक हाथी दूसरे से भिन्न प्रतीत होगा। जो भेड़ चराने वाला होता है वह अपनी सब भेड़ों को पृथक्-पृथक् पहचान लेता है। क्योंकि हर एक में यत्किञ्चित् अवयव का भेद है। इसका नाम *'व्यक्तिगत भेद'* है। अब आप हाथी और ऊँट का एक एक झुण्ड देखें तो इन दोनों में बहुत भेद प्रतीत होगा। और आप कहेंगे कि इस झुण्ड से वह झुण्ड विलक्षण है। इसी का नाम परस्पर जातिगत भेद है। इस प्रकार परस्पर जातिभेद और परस्पर व्यक्तिभेद सर्वत्र विद्यमान है। इस प्रकार पशु, पक्षी और मत्स्य आदि जितने प्राणी हैं और तृण, लता ओषधि वीरुध और वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं इनमें से कोई छोटे से छोटा उदाहरण ले लीजिये एक जाति से दूसरी जाति पृथक् प्रतीत होगी। गृह में रहने वाली मक्खी और मच्छर देखिये। देखते ही मालूम हो जाता है कि ये दोनों दो प्रकार की जातियाँ हैं। आम्र और गूलर के वृक्ष के दर्शन मात्र से भिन्न-भिन्न जातियाँ प्रतीत होने लगती हैं। इसके अति-

रिक्त भिन्न-भिन्न जाति के पहचान की एक यह भी कसौटी है कि आपको केवल एक हाथी वा एक गौ वा एक आम्रफल दिया गया और कहा गया कि यह हाथी है। अब आप के निकट जितने हाथी लाए जायँगे झट आप कह देंगे कि यह हाथी है। यह घोड़ा है, यह आम्र है। इत्यादि। अर्थात् एक के देखने से उस सब समुदाय का बोध हो जाता है। इस कारण गोजाति, अश्वजाति, गर्दभजाति, आम्रजाति, पिप्पल जाति इत्यादि भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी एक जाति है।

'मनुष्य एकजाति है' ॥

जैसे पशु-पक्षी वृक्ष आदि में अनेक जातियाँ हैं और यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है जैसा कि मैंने अभी कहा है वैसे मनुष्यों में अनेक जातियाँ नहीं हैं। अब इसकी परीक्षा कीजिये।

अब अपनी जाति की ओर आइये। किसी एक देश के बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों को इकट्ठे कीजिये और इनके कृत्रिम वेष को पृथक् करके खड़ा कीजिये। क्या प्रतीत होता है। सब में एक समानता ही प्रतीत होगी। यह ब्राह्मण है यह क्षत्रिय है ऐसा बोध देखने से कदापि प्रतीत नहीं होगा क्योंकि आकृति सब की समान है। इस हेतु यह सब ही एक मनुष्य जाति है। पशु आदिवत् भिन्न-भिन्न नहीं॥ अब दूसरी तरह से भी परीक्षा कीजिये। आपके सामने कृत्रिम-वेष-रहित एक ब्राह्मण आपके समीप लाया गया। बिना पूछे हुए क्या आप कह सकते हैं कि यह भी ब्राह्मण है। कदापि नहीं। परन्तु पशुओं में जब एक हाथी को देख लेता है तो फिर दूसरे हाथी को देख कर पूछना नहीं पड़ता है कि यह कौन सा पशु है।

देखते ही कह देता है कि यह हाथी है। परन्तु मनुष्यों में ऐसा नहीं है। इस हेतु मनुष्यों में ब्राह्मणादि भिन्न-भिन्न जाति नहीं। लोक में भी देखा जाता है कि जब कहीं मनुष्य दो चार इकट्ठे हुए तो पूछते हैं कि आप किस वर्ण के हैं। बतलाने पर मालूम होता है कि यह अमुक वर्ण का है।

हाथी और ऊँट अथवा गौ और घोड़े में जैसा परस्पर जातिगत भेद है, क्या वैसा ही भेद ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों में देखते हैं। कदापि नहीं। वैसा भेद इन चारों में नहीं। ये चारों एक समान ही देख पड़ते हैं। इस कारण पशु पक्षी आदि के समान इन चारों में परस्पर जातिगत भेद नहीं है ऐसा अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अतः मनुष्य एकजाति है इसमें सन्देह नहीं। यदि आप कहें कि यद्यपि हम लोगों को इनमें भेद नहीं प्रतीत होता है परन्तु जो योगी हैं उन्हें इस सूक्ष्म भेद का पता लगता होगा। तो यह कहना ठीक नहीं। जिसमें भेद है ही नहीं उसकी प्रतीति क्या होगी। गदहे की सींग की प्रतीति किसी को नहीं हो सकती। जाति भेद के पहिचान के लिये अन्यान्य भी कारण हैं उनपर ध्यान दीजिये यथा।

जाति भेद पहिचान के अन्यान्य कारण।

१—जो यथार्थ में भिन्न जातियाँ हैं वे परस्पर एक दूसरे के कार्य का नकल नहीं कर सकती जैसे मकड़ी जैसा जाला बनाती है। वैसा अन्यान्य कीट नहीं बना सकता। मधुमक्षिका के समान अन्यान्य मक्षिका मधु नहीं बना सकती। घोड़े की चाल और उसकी हिनहिनाहट का नकल गौ नहीं कर सकती। इत्यादि। परन्तु बाल्यावस्था से यदि एक शूद्र बालक अच्छे प्रकार शिक्षित हो तो ब्राह्मण के समान पूजा पाठ कर और करवा सकता है।

आज कल भी बहुत से शूद्र साधु बन ब्राह्मणवत् ही कर्म करते हैं इन कारण मनुष्य में जाति भेद नहीं।

१—जो यथार्थ में भिन्न जातियाँ हैं वे परस्पर बदल सकती है जैसे लक्षों उपाय करने पर भी सहस्रों विद्वान मिलकर हाथी को गदहा नहीं बना सकते। परन्तु मनुष्यों में देखा जाता है कि ब्राह्मण शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेछ यवन तक बन गये हैं और बनते जाते हैं। इसके अनेक उदाहरण आगे लिखेंगे। अनेक ब्राह्मण मुसल्मान और क्रिस्तान हो गये हैं। इस देश में मुसल्मान के राज्य के समय अनेक ब्राह्मण क्षत्रियादि मुसल्मान बना लिये गये आज वे ब्राह्मणों से बड़ी शत्रुता कर रहे हैं। इस हेतु भी मनुष्यों में अनेक विध जाति भेद नहीं।

३—जो सचमुच भिन्न जातियाँ हैं उनमें परस्पर एक दूसरे से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती हैं। हथिनी से घोड़े की वा घोड़ी से हाथी की न तो प्रीति होगी और न सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे इसी प्रकार शुकी से काक प्रीति नहीं करेगा। परन्तु मनुष्यों में शूद्रा से ब्राह्मण और ब्राह्मणी से शूद्र प्रीति करता है और सन्तान भी उत्पन्न कर लेता है। महाभारत में कथा बहुत-सी हैं। व्यास से दासी-शूद्री में विदुर उत्पन्न हुए। सहस्रों क्षत्राणियों में ब्राह्मण से सन्तान उत्पन्न हुए हैं। और वे सब क्षत्रिय हुए हैं। आगे इनके उदाहरण महाभारत से देवेंगे। मनुजी ने भी कहा है कि ब्राह्मण का विवाह चारों वर्णों में हो सकता है। यदि ये चारों चार जातियों के होते तो ऐसा अनर्थ और विपरीत आज्ञा मन्वादि शास्त्रों में कैसी पाई जाती। अतः मनुष्य एक जाति है।

यदि कहो कि गर्दभ जाति और अश्वजाति ये दोनों भिन्न-भिन्न होने पर भी इन दोनों से सन्तान होती है जिसको अश्वतर वा खच्चर कहते हैं॥ ठीक है, परन्तु आप देखते हैं कि इन दोनों

के योग से जो सन्तान होती है वह तीसरे प्रकार की हो जाती है। और आगे इसका वंश नहीं चलता है। और जो अश्वजाति यथार्थ में अश्व नहीं है परन्तु समान प्रतीत होती है उसी से सन्तान होते हैं। परन्तु मनुष्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय जाति के योग से जो सन्तान होती है वह तीसरे प्रकार की नहीं होती है। और आगे सन्तान भी चलती है अतः यह उदाहरण ठीक नहीं।

४—ईश्वर ने अश्वजाति, गजजाति, गोजाति आदि के प्राणियों को प्रायः सर्वत्र उत्पन्न किया। इसी प्रकार मनुष्य जाति भी सर्वत्र पाई जाती है। परन्तु जैसे गौ, भैंस आदि में सर्वत्र ही जाति-भेद विद्यमान है। वैसे ही योरोप अफ्रिका अमेरिका आदि सर्व द्वीपस्थ मनुष्य में भी आर्यावर्त के समान मनुष्य में जाति-भेद अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः मनुष्य में जाति-भेद नहीं यह सिद्ध होता है।

५—सबसे बढ़कर हमारा वेद और शास्त्र मनुष्य में एक ही जाति मानता है ब्राह्मणादि भिन्न-भिन्न जाति का स्वीकार नहीं करता है। पुराण भी इसी बात को मानता है इस हेतु मनुष्य में जाति-भेद मानना सर्वथा वेद शास्त्र विरुद्ध है। इस हेतु त्याज्य है। इसके उदाहरण आगे देवेंगे। हे विद्वानों! कैसा अन्धकार देश में फैला है कि वेद, शास्त्र और प्रत्यक्ष विरुद्ध विषय को अन्धाधुन्ध सब कोई मान रहे हैं।

६—ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के चार लक्षण कहे गये हैं। यदि वे चार भिन्न-भिन्न जातियाँ होती तो वैसे लक्षण नहीं कहे जाते। शमदमादि ब्राह्मण के, शौर्य्य तेज आदि क्षत्रिय के, कृषि गोरक्षा आदि वैश्य के, परिचर्य्या आदि शूद्र के लक्षण गीता बतलाती है। इससे सिद्ध है कि जिसमें ये शमदम स्वभावतः पाया जाय वह ब्राह्मण। जिसमें शूरता वह क्षत्रिय इत्यादि॥ ये

गुण किसी खास जाति वा वंश के ऊपर निर्भर नहीं हैं। और इस प्रकार की व्यवस्था द्वीप द्वीपान्तरस्थ सर्व मनुष्य में संचारित हो सकती है। इस कारण से भी मनुष्य में जाति भेद नहीं।

७—यदि आप कहो कि गौर वर्ण ब्राह्मण, रक्तवर्ण क्षत्रिय, पीतवर्ण वैश्य और कृष्ण वर्ण शूद्र होते हैं। अतः ये चारों भिन्न जातियाँ हैं। (१) तो यह भी कहना उचित नहीं क्योंकि क्या ब्राह्मण कृष्णवर्ण नहीं हैं ? मद्रासी सब ही ब्राह्मण कृष्णवर्ण के हैं। और काश्मीरी सब ही शूद्र श्वेतवर्ण के हैं। इङ्गलेण्ड आदि शीतप्रधान द्वीप में सब ही श्वेतवर्ण और उष्णप्रधान देश में सब ही कृष्णवर्ण के हैं इस हेतु यह लक्षण ठीक नहीं। "श्वेत-वर्ण ब्राह्मण का" इसका अर्थ नहीं है कि जो रंग में श्वेत हो वह ब्राह्मण किन्तु जो श्वेत अर्थात् सात्त्विक गुण से युक्त हो वह ब्राह्मण इत्यादि वर्णन आगे देखिये।

८—इत्यादि अनेक कारण जाति भेद के होते हैं। इन चार वर्णों में इस प्रकार का एक भी भेद आप नहीं पावेंगे। फिर योगी को वह भेद कहाँ से प्रतीत हो सकता। यदि आप कहैं कि जब कर्ण जी परशुराम से विद्याऽध्ययन को गये और जब एक भयङ्कर कीट से व्यथित और रुधिराक्त-शरीर होने पर भी कर्ण ने गुरु की सेवा नहीं त्यागी और न गुरु को कुछ सूचना दी। परशुरामजी ने जब उठ कर इस भयानक व्यापार को देखा तो उन्हें झट प्रतीत हो गया कि यह कोई क्षत्रिय कुमार है ब्राह्मण नहीं। इससे मालूम होता है कि योगी को सूक्ष्म भेद प्रतीत हो जाता है। उत्तर सुनिये—यदि योगी को जाति प्रतीत

---

(१)—ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां च लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ॥ महाभारत शान्तिपर्व ॥ १८८ । ५ ॥

होती तो प्रथम ही क्यों नहीं हो गई जब इन्होंने कर्म्म देखा तब उन्हें प्रतीत हुआ कि यह साहसी तो क्षात्र कुमार है। इसमें सन्देह नहीं जो जन्म से ही मारने काटने का पूरा निरन्तर अभ्यास करेगा वह अवश्य ही घोर साहसी बन जायगा। जो ऐसा साहसी बनेगा वह अवश्य कर्म्म से क्षत्रिय है। मैं भी इसको स्वीकार करता हूँ। कहीं-कहीं जो यह लिखा है कि कोई पुरुष हाथ में खड्ग, कोई लेखनी, कोई पुस्तक, कोई तुला आदि लेकर ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ सो यह सब मिथ्या कपोल कल्पित है। और वेद विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य और अश्रद्धेय है अतः मनुष्य में जाति भेद नहीं। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र को चार भिन्न-भिन्न जाति मानना सर्वथा अज्ञानता की बात है।

'मनुष्य एक जाति है'

इसमें

'सांख्यशास्त्र का प्रमाण'

(१) अष्ट विकल्पो दैव स्तैर्यग्योनिश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥

कारिका ॥ ५७ ॥

इस पर वाचस्पति मिश्र की व्याख्या :—

ब्राह्मः। प्राजापत्यः। ऐन्द्रः। पैत्रः। गान्धर्वः। याक्षः। राक्षसः। पैशाचः इत्यष्टविधो दैवः सर्गः। तैर्य्यग्योनिश्च पाञ्चधा भवति। पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, स्थावराः। मानुष्यश्चैकविधः। ब्राह्मणत्वाद्यवान्तरभेदाऽविवक्षा संस्थानस्य चतुर्ष्वपि वर्णेष्व-विशेषादिति।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, यात्त, रात्तस और पैशाच ये आठ प्रकार देवयोनि हैं। तिर्यग्-योनि पाँच प्रकार के हैं—पशु, मृग, पत्ती, सर्प और स्थावर। ब्राह्मणादि चार वर्णों में किसी प्रकार पृथक्त्व नहीं है इस हेतु ब्राह्मण आदि अवान्तर भेद न मान कर मनुष्ययोनि एक ही प्रकार का माना है।

इस सांख्यकारिका में 'मानुष्यश्चैकविधः' मनुष्य एक ही प्रकार का है यह विस्पष्ट वर्णन है। पुनः "दैवादिभेदा" इस सांख्य ३।४६ सूत्र की व्याख्या में विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि "मानुष्यसर्गश्चैकप्रकारः" मनुष्य जाति एक ही प्रकार की है।

'महाभारत का प्रमाण'

(२) न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥१०॥
काम-भोग-प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्त-स्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजा क्षत्रतां गताः ॥११॥
गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्म्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥१२॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धा सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्तेद्विजाः शूद्रतां गताः ॥१३॥
शान्तिपर्व ॥ अ १८८ ॥

आदि सृष्टि में सब ब्राह्मण ही थे। कोई वर्ण विभाग नहीं था। कर्म्म से क्षत्रियादि वर्ण बनता गया। जो ब्राह्मण काम-भोगप्रिय, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसप्रिय और युद्ध करने से सदा रक्ताङ्ग हुए वे क्षत्रिय गिने गये। जो ब्राह्मण गोवृत्ति का अव-

लम्बन कर कृषि—कर्म्म में निरत हुए वे वैश्य और जो हिंसा अनृतादि में संलग्न हुए वे शूद्र कहाये।

इससे भी सिद्ध होता है कि मनुष्य एक जाति के हैं। कर्म्म के द्वारा भिन्न-भिन्न वर्णों में विभक्त हुए।

'बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण'

(३) ब्रह्म वा इदमग्र असीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत्। तच्छ्रेयोरूप मत्यसृजत क्षत्रम् ॥ ११ ॥ स नैव व्यभवत् स विशमसृजत ॥१२॥ स नैव व्यभवत् स शौद्रं वर्णसृजत ॥ १३ ॥ बृ० उ० १ । ४ ॥

प्रथम एक ही ब्राह्मण वर्ण था। एक होने के कारण उसकी वृद्धि नहीं हुई इस हेतु अपने से भी उत्तम क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया। उससे भी वृद्धि नहीं हुई तब वैश्य वर्ण बनाया। उससे भी उन्नति नहीं हुई तब शूद्र वर्ण बनाया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे धीरे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण बनते गये।

'वाल्मीकिरामायण का प्रमाण'

(४) अमरेन्द्र मया बुध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥१९॥
तासां ना स्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ॥२०॥

उत्तर काण्ड

हे अमरेन्द्र! मैंने प्रथम बुद्धिपूर्वक प्रजाएँ सृष्ट कीं। सब ही प्रजाएँ एक वर्ण थीं। सबकी एक भाषा थी। सब कोई एक-रूपा थीं। इनके दर्शन वा लक्षण में कोई विशेषता नहीं थी।

'भागवत का प्रमाण'

(५) सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषाञ्च यः ॥१८॥
वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधाद्रुमाः ॥ १६ ॥
तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टविंशतिधा मतः ।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥
गौरजो महिषः कृष्णः शूकरो गवयो रुरुः ।
द्विशफा पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥
खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरीतथा ।
एते एकशफाः क्षत्तः शृणुपञ्चनखान् पशून् ॥ २२ ॥
श्वा शृगालो वृकोव्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ।
सिंहःकपिर्गजः कूर्म्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥
कंक गृध्रवटश्येन भास भल्लूक वर्हिणः ।
हंस सारस चक्राह्व काकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥
भागवत ३ । १० ॥

अब सप्तम सर्ग का वर्णन करते हैं। स्थावर छः प्रकार के हैं। वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ॥ १६ ॥ अब अष्टम सर्ग कहते हैं। तिर्यग् जातियों के अट्ठाईस प्रकार हैं। ये सब अज्ञानी, तामसी, घ्राणज्ञ और इनके मन में सुख-दुःख का परिणाम चिरकाल तक नहीं रहता है। वे ये हैं—बैल, बकरी, भैंस, हरिण, शूकर, नीलगौ, रुरु (एक प्रकार का मृग), मेंढ़ा और ऊँट। ये दो खुर वाले पशुओं की जाति हैं ॥ २१ ॥ हे विदुरजी! गर्दभ, घोड़ा, खच्चर, (एक प्रकार का मृग) शरभ

और चमरी (वनगौ)। यह एक खुर वालेपशुओं की जाति हैं। अब पाँच नखवाले पशुओं का भेद कहता हूँ सुनिये ॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलार, खरगोश, साही, सिंह, बानर, हाथी, कछुआ और गोह ये बारह पाँच नख वाले पशु हैं। मगर आदि जलचर और कंक, गृध्र, बाज, शिकरा, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, काक, उलूक आदि पक्षी यह जलचर और थलचर मिल कर तिर्यग जाति का एक भेद है। इत्यादि अनेक विध सृष्टि कह कर अब मनुष्य सृष्टि कहते हैं। सुनिये !

अर्वाक् स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेव विधोनृणाम् ।
रजोधिकाः कर्म्मपरा दुःखे च सुखमानिनः॥ २५ ॥ स्कन्ध ३।१०॥

हे विदुर ! मनुष्यों की एक ही प्रकार की सृष्टि है। यह नवम है। यह नीचे गति वाला है। रजोगुण इसमें अधिक है। कर्म्म-परायण, और दुःख में सुख मानने वाला है।

यहाँ पर देखते हैं पुराण शिरोमणि भागवत भी मनुष्य की जाति एक प्रकार मानता है। यदि इसमें चार वा अधिक प्रकार होते तो यहाँ इनको पश्वादिवत् गिनाते; परन्तु यहाँ नहीं गिनाया अतः इसके सिद्धान्त के अनुसार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये भिन्न जातियाँ नहीं हैं। आगे इन ही विषयों का अधिक वर्णन रहेगा अतः यहाँ अधिक प्रमाण सुनाने की आवश्यकता नहीं। हे भारतवर्षीय विद्वानों ! हम लोगों को हठ, दुराग्रह, पक्ष-पात को छोड़कर विचार करना चाहिये। वेदों से जो सिद्ध हो उसे शिर पर चढ़ाना चाहिये। आज कल की भयङ्कर रीति यह देखते हैं कि लौकिक व्यवहार देखकर शास्त्र का निर्णय करना चाहते हैं। लोक से डरते हैं। वेदों से नहीं। इसमें सन्देह नहीं

कि अज्ञानीजन नहीं समझते हैं। इनकी संख्या अधिक है। परन्तु अज्ञानी पुरुषों से क्यों भय करना चाहिये। मनुष्यमात्र हम एक हैं। परस्पर प्रेम करें। परस्पर सम्बन्ध जोड़ें। एक दूसरे के लिये प्राण अर्पण करें। कर्म्म से मनुष्य नीच होता है। जन्म से कदापि नहीं। अतः हे विद्वानों! वेदशास्त्र विरुद्ध सामाजिक नियम को अवश्य ही तोड़ देना चाहिये। इति।

'अध्यारोपित जाति'

शङ्का=तब महर्षि पाणिनि और मनुस्मृति आदि ग्रन्थ इन चारों को चार जाति कैसे मानते हैं।

उत्तर=जब अनेक प्रमाणों से और प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि मनुष्य एक जाति है तब हम कैसे कह सकते हैं कि ये चारों पशुवत् भिन्न-भिन्न जातियों के हैं अब बात यह रह गई कि पाणिनि प्रभृति आचार्य्यों ने इनमें भिन्न जाति कैसे मानी। इसका उत्तर सुनिये—इन लोगों ने मनुष्यों में वास्तविक जाति-भेद नहीं माना है। अध्यारोपित जाति-भेद माना है अर्थात् जैसे कोई कवि वृक्ष में चेतनपुरुषत्व का आरोप करके कहता है कि हे वृक्ष! मेरी बात सुन! तू मुझे फल दे। तेरी सुन्दरता देख मैं मोहित हूँ इत्यादि। यथार्थ में वृक्ष चेतन पुरुष नहीं; किन्तु इसमें चेतनता का अध्यारोप अर्थात् कल्पना की गई है तद्वत् मनुष्य में जाति-भेद नहीं; परन्तु कल्पित जाति-भेद माना है।

कल्पित जाति-भेद क्यों माना है? यह प्रश्न उत्थित हो सकता है। इस पर किञ्चित् ध्यान देने से इसके कारण का बोध हो सकता है। देश में जब अनेक प्रकार के व्यापार आवश्यकता-नुसार फैलने लगते हैं तब एक कार्य्य को अनेक-अनेक मनुष्य

करने लगते हैं। जब भूषण की आवश्यकता बढ़ी तो सहस्रों मनुष्य भूषण बनाने लगे उनकी यही वृत्ति (जीविका) हुई। जब लोहों को प्रयुक्त करने लगे और इसकी आवश्यकता बढ़ी तो इसी कार्य को लाखों करने लगे, इसी प्रकार अन्यान्य व्यापार में समझिये। ये लोग स्वर्णकार, लोहकार आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। अब कर्म के अनुसार जितने लोहकार एक स्थान में कार्य्य कर रहे हैं वे कर्म्मवश एक समान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जो लोग कपड़े बुन रहे हैं वे तन्तुवाय एक समान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार स्वर्णकार रथकार आदिकों को भी जानो। हम पीछे कह आए हैं कि समान बुद्धि के उत्पादक जो आकृतिगत-धर्म्म है वह 'जाति' कहलाती है। क्यों कि गौतमाचार्य्य कहते हैं— "समानप्रसवात्मिका जातिः" जैसे एक हाथी के देखने से सकल हाथी का बोध हो जाता है। वैसे ही कर्म्मवश मनुष्य में भी एक समानता प्रतीत होती है। जब वह कार्य्य करता रहता है। उदाहरण के लिये लोहकार को ले लीजिये। एक आदमी को लोह का काम करते हुए देख "यह लोहकार है" यह मन में निश्चय कर जिस-जिसको लोह सम्बन्ध कार्य्य करते हुए आप देखेंगे झट से आप कहेंगे कि यह लोहकार है। इस प्रकार सब लोहकार में समान बुद्धि का उत्पादक एक धर्म्म है अतः लोहकार भी एक जाति है। परन्तु अब लोहकार को कहीं आपने अन्यत्र देखा जहाँ वह स्नान वा पूजापाठ कर रहा है वा गमन कर रहा है वहाँ उसे देख "यह लोहकार है" ऐसी बुद्धि आपको उत्पन्न नहीं होगी। इससे क्या सिद्ध हुआ ? मनुष्य में जो जाति है वह कर्म्मगत है। आकृतिगत नहीं जब कर्म्म करता रहता है तब वह लोहकार प्रतीत होता अन्यत्र नहीं। परन्तु पशु सर्वत्र एक समान ही प्रतीत होंगे। इस कारण मनुष्य में 'जाति' अध्यारोपित है।

वास्तविक नहीं। इसी अध्यारोपित जाति को पाणिनि प्रभृतियों ने मानकर शब्दों की सिद्धि की है ॥

आज कल इसी अध्यारोपित-जाति शब्द का सर्वत्र प्रयोग होता है। बोल चाल में जैसा प्रयोग हो जाता है वैसा वरतना ही पड़ता है। इसी नियम के अनुसार प्रत्येक-देश निवासियों में भी जाति शब्द का प्रयोग होने लगा। क्योंकि प्रत्येक देश के मनुष्यों में अशन, वसन, आचरण, बैठना, उठना सामाजिक व्यवहार आदि प्रायः सर्व कर्म कुछ-कुछ भिन्न हो गये हैं। अङ्गरेजों के जो धर्म्म, वस्त्रादि-परिधान, विवाह रीति, भोजन की विधि आदि हैं भारत-वासियों के वैसे नहीं। एवं देश भेद से रूप में भी बहुत भेद है। वे गौराङ्ग हैं। भारत में उष्णता की अधिकता के कारण अनेक वर्ण के हैं। कोई गौर, कोई श्याम इत्यादि। इससे भिन्न-भिन्न जातीयता प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में भिन्न जातियता नहीं।

'वर्ण शब्द का प्रयोग'

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार 'वर्ण' कहलाते हैं। जाति नहीं। क्योंकि चारों वेदों में इन चारों के लिये 'जाति' शब्द का प्रयोग नहीं है। वेदों के अनुसार मनुष्यमात्र प्रथम दो भागों में विभक्त हुए हैं। आर्य्य और दस्यु। शुभ कर्म्म करने वाले आर्य्य और दुष्ट कर्म करने वाले दस्यु वा दास। आर्य्य और दस्यु दोनों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में आया है॥

"वर्ण शब्द और वेद"

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्राऽऽर्य्यं वर्णमावत् ॥
ऋ० ३। ३४। ९॥

इस जगत् में (इन्द्रः) परमात्मा ने मनुष्यों के लिये (अत्यान्) हय प्रभृति पशु (समान) दिये हैं (उत+सूर्य्यम्) प्रकाश के लिये सूर्य्य (समान) दिया है (पुरुभोजसम्+गाम्) अनेक भोज्य पदार्थ संयुक्त पृथिवी (समान) दी है। इसके अतिरिक्त (उत+हिरण्ययम्+भोगम्) सुवर्णादि युक्त भोग्य वस्तु दी है और वह परमात्मा (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू को (हत्वी) हनन-कर (आर्य्यम्+वर्णम्) आर्य्य वर्ण को (प्र+आवत्) सदा रक्षा किया करता है। दानार्थक 'षणु' धातु से 'समान' बनता है 'प्राऽऽर्य्यम्' में 'प्र+आर्य्यम्' दो शब्द हैं॥

यहाँ 'आर्य्य, वर्ण' शब्द आया है। आर्य्य नाम श्रेष्ठ, याज्ञिय, वैदिक व्रती आस्तिक आदि धार्मिक पुरुष का है। ऐसे 'आर्य पुरुष' के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग देखते हैं।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्य्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥

ऋ० २। १२। ४॥

(येन) जिसने (इमा+विश्वा) इस विश्व को (च्यवना+कृतानि) नम्र बनाया है। अर्थात् जिस राजा ने शिक्षा के द्वारा मनुष्यों को नम्रीभूत किया है और जो शिक्षा के अधीन नहीं हुए ऐसे जो (दासम्+वर्णम्) जगत् में अशान्ति फैलाने वाले उपक्षयिता नास्तिक वर्ण हैं उनको (यः) जिसने (अधरम्) नीचे करके (गुहा+अकः) गह्वर में स्थापित किया और (यः) जो (श्वघ्नी+इव) मृग के मारने वाले व्याध के समान (लक्षम्) लक्ष्य को (जिगीवान्) जीतता है। और (अर्यः) प्रजाओं का स्वामी वह राजेन्द्र (पुष्टानि) पुष्टकारी वस्तुओं को सदा (आदत्)

प्रजा के सुख के लिये ग्रहण किया करता है (जनासः) हे मनुष्यों ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र अर्थात् हम लोगों का राजा है ॥

यहाँ पर भी "दास" के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्ण शब्द का अर्थ 'चुनने वाला' है। अपनी अपनी मति से मनुष्य अपनी अपनी जीविको पाय चुना करता है। किसी ने अच्छा व्यवसाय चुना किसी ने बुरा व्यवसाय। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में देखते हैं। परन्तु इनके लिए 'जाति' शब्द का प्रयोग कहीं भी उक्त नहीं हैं। अतः वेदानुसार मनुष्यों में भिन्न-भिन्न व्यवसायी को वर्ण शब्द द्वारा व्यवहार करना सर्वथा उचित है।

'वर्ण शब्द और ब्राह्मण ग्रन्थ'

सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् । ऋग्भ्यो जातं वैश्य वर्णमाहुः। यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्। तैत्तिरीय ब्रा० ३।१२।६।४॥

दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः। तैत्तिरीय ब्रा० १।२।६।७॥

स शौदं वर्ण सस्रृजत । शतपथ ब्रा० १४।४।२।२३॥

ब्राह्मण ग्रन्थों से यहाँ केवल तीन वचन उद्धृत किये हैं। ये वचन भी ब्राह्मणादिकों के लिए 'वर्ण' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'जाति' शब्द का नहीं।

'वर्ण शब्द और महाभारत'

कृते युगे समभवन् स्वकर्म्म–निरताः प्रजाः ।
समाश्रयं समाचारं समज्ञानञ्च केवलम् ॥ १८ ॥

तदा हि समकर्म्माणो वर्णा धर्म्मानवाप्नुवन् ।
एकवेदसमायुक्ता एकमन्त्र विधिक्रियाः ॥ १६ ॥
कृते युगे चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्यस्य शाश्वतः ।
एतत्कृतयुगं नाम त्रैगुण्य परिवर्जितम् ॥ २२ ॥

महाभारत बनपर्व ।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्म मिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥

शान्ति पर्व १८८ । १० ॥

इत्यादि अनेक स्थलों में ब्राह्मणादि मनुष्य के लिए 'वर्ण' शब्द का ही प्रयोग आता है। जाति शब्द का नहीं। आगे उद्धृत श्लोकों में वर्ण शब्द के अनेक प्रयोग देखेंगे। लोक में भी चार वर्ण और चार आश्रम कहते सुनते हैं। चार जाति और चार आश्रम कोई नहीं कहता ।

'वेद में अनेक वर्णों के नाम'

यजुर्वेद ३० वें अध्याय में ब्राह्मणादि अनेक नाम आए हैं उनका अर्थ सहित यहाँ लेख करते हैं। यथा :—

(५) १—*ब्राह्मण* = (१) ब्रह्मपुत्र अर्थात् वेद, ईश्वर, व्रत, तप, यज्ञादि के तत्त्व जानने वाला ।

२—*राजन्य* = राजपुत्र अर्थात् शौर्य्य, वीर्य्य, प्रतापादि से शोभायमान ।

---

(१) यजुर्वेद ३० वें अध्याय के पञ्चम मन्त्र से नामों की गणना आती है। एक मन्त्र को छोड़ प्रत्येक मन्त्र में दश-दश नाम आये हैं।

३—*वैश्य* = वैश्यपुत्र अर्थात् व्यवसाय के लिए सर्वत्र वायु-
वत् प्रवेश करने वाला।

४—*शूद्र* = कठिन से कठिन दुःसाध्य शारीरिक कर्म में सदा
तत्पर (तप से शूद्रम्)।

५—*तस्कर* = चोर।

६—*वीरहा* = वीरों को मारने हारा।

७—*क्लीब* = नपुंसक।

८—*अयोगू* = लोहे के हथियार विशेष के साथ चलने हारा।
अयस् = लोहा। गू = गन्ता।

९—*पुँश्चलू* = पुरुषों के साथ चञ्चायमानचित्तवाली व्यभि-
चारिणी स्त्री (पुँश्चली, स्वैरिणी)।

१०—*मागध* = अपनी कविता से लोगों के चित्त को मादक
बनाने हारा (मादयतीति मागधः)।

(६) ११—*सूत* = विविध-प्रतिभा-युक्त, विचित्र काव्यरचयिता
(सूते जनयति काव्यादिकं यः स सूतः)।

१२—*शैलूष* = गाने हारा नट।

१३—*सभाचर* = सभा में विचरने हारा सभापति।

१४—*भीमल* = भयङ्कर कार्य्य करने हारा।

१५—*रेभ* = स्तुति करने हारा।

१६—*कारि* = उपहासकर्ता।

१७—*स्त्रीषख* = स्त्री से मित्रता करने हारा (स्त्री + सखा)।

१८—*कुमारीपुत्र* = विवाह से पूर्व व्यभिचार से उत्पन्न
बालक।

१९—*रथकार* = विमानादि बनाने हारा।

२०—*तक्षा* = महीन काम करने हारा बढ़ई।

(७) २१—*कौलाल* = कुम्हार का पुत्र अर्थात् मृत्तिकाओं के विविध पात्रों का निर्माता (कुं पृथिवी लालयति, पात्रैर्मनुष्यकुलमलंकरोतीति वा)।

२२—*कर्म्मार* = उत्तम शोभित काम करने हारा (कर्म्माणि अरङ्करोतीति)।

२३—*मणिकार* = मणि बनाने वाला।

२४—*वप* = विद्यादि शुभगुणों का बोने वाला (विप्र, मेधावी)।

२५—*इषुकार* = बाणकर्ता।

२६—*धनुष्कार* = धनुष्कर्ता।

२७—*ज्याकार* = प्रत्यञ्चा बनाने वाला।

२८—*रज्जुसर्ज* = रज्जु (रस्सी) बनाने वाला।

२९—*मृगयु* = व्याध, (मृगं कामयते मृगयुः)।

३०—*श्वनी* = कुत्ते पालने हारा (श्वानं कुक्कुरं नयतीति श्वनीः)।

(८) ३१—*पौञ्जिष्ठ* = धानुक।

३२—*नैषाद* = निषादपुत्र (निषीदति निषद्यकर्म्म करोति वा)

३३—*दुर्म्मद* = दुष्ट, अभिमानी।

३४—*व्रात्य* = संकार-रहित मनुष्य।

३५—*उन्मत्त* = उन्माद रोग वाला।

३६—*अप्रतिपद* = संशयात्मा।

३७—*कितव* = ज्वारी, धूर्त्त।

३८—*अकितव* = जुआ न करने हारा।

३९—*विदलकारी* = पृथक्-पृथक् टुकड़ों को करने हारा।

४०—*कण्टकीकारी*—काँटे बोने वाली स्त्री।

(९) ४१—*जार* = व्यभिचारी (जारयति विनाशयति धर्म्मं यौवनम्वा)।

४२—*उपपत्ति* = दूसरा व्यभिचारी पति।

४३—*परिवित्त* = छोटे भाई के विवाह होने में विना विवाह का ज्येष्ठ भाई।

४४—*परि-विविदान* = ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुआ छोटा भाई।

४५—*एदिधिषुःपति* = ज्येष्ठ पुत्री के विवाह के पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री का पति।

४६—*पेशस्कारी* = शृङ्गार विशेष से रूप करने हारी व्यभिचारिणी।

४७—*स्मरकारी* = कामदेव को चेतन-करने हारी दूती।

४८—*उपसद* = साथी।

४९—*अनुरुध* = रोकने वाला।

५०—*उपदा* = नज़र, भेट वा घूँस देने हारा।

(१०) ५१—*कुब्ज* = कुबड़ा।

५२—*वामन* = छोटा मनुष्य।

५३—*स्राम* = जिसके नेत्र से निरन्तर जल निकलता हो।

५४—*अन्ध* = अन्धा।

५५—*वधिर* = बहिरा।

५६—*भिषज* = वैद्य।

५७—*नक्षत्र-दर्श* = नक्षत्र देखाने हारा गणितज्ञ।

५८—*प्रश्नी* = प्रशंसित प्रश्नकर्ता।

५९—*अभिप्रश्नी* = सब ओर से प्रश्न करने हारा।

६०—*प्रश्न-विवाक* = प्रश्नों को विवेचन कर उत्तर देनेवाला।

(११) ६१—*हस्ति-प* = हाथियों का रक्षक (हस्ति+प)

६२—*अश्व-प* = घोड़ों का रक्षक (अश्व+प)
६३—*गो-पाल* = गौओं का रक्षक (गाः पालयतीति)
६४—*अवि-पाल* = गड़ेरिया (अविं मेषजातिं)
६५—*अज-पाल* = बकरे बकरियों का रक्षक। (अजं-पालयतीति)
६६—*कीनाश* = खेतिहर ।
६७—*सुराकार* = सोमरस को निकालने वाला ।
६८—*गृह-प* = घरों का रक्षक (गृह + प)
६९—*वित्त-ध* = धन धारण करने हारा ।
७०—*अनुक्षत्ता* अनुकूल सारथी ।
(१२) ७१—*दार्वाहार* = काष्ठों को पहुँचाने वाला (दारु + आहार)
७२—*अग्न्येध* = अग्नि के दीप्ति करने हारा (अग्नि + इन्धी दीप्तौ)
७३—*अभिषेक्ता* = अभिषेक = राजतिलक करने वाला ।
७४—*परिवेष्टा* = परोसने वाला ।
७५ - *पेशिता* = विद्या के अवयवों को जानने वाला ।
७६—*प्रकरिता* = फेंकने वाला ।
७७—*उपसेक्ता* = उपसेचन करने हारा ।
७८—*उपमन्थिता* = ताडनादि से पीड़ा देने हारा दुष्ट ।
७९—*वासः पल्पूली* = वस्त्रों को शुद्ध करने वाली धोबिन ।
८०—*रजयित्री* = उत्तम रंग करने वाली रँगरेजिन ।
(१३) ८१—*स्तेनहृदय* = चोर के तुल्य छली कपटी ।
८२—*पिशुन* = चुगिल ।
८३—*क्षत्ता* = सारथी वा ताड़ना से रक्षा करने हारा ।
८४—*अनुक्षत्ता* = अनुकूल सारथी ।
८५—*अनुचर* = सेवक ।

८६—*परिस्कंद* = सब ओर से वीर्य्य सेचने वाला।
८७—*प्रिय-वादी* = प्रिय बोलने वाला।
८८—*अश्व-साद* = घोड़ों को चलाने वाला।
८९—*भागदुघ* = अंशों को पूर्ण करने हारा।
९०—*परिवेष्टा* = परोसने वाला।

(१४) ९१—*अयस्ताप* = लोह वा सुवर्ण तपाने वाला (अयस्+ताप)।
९२—*निसर* = निश्चित रूप से चलने वाला।
९३—*योक्ता* = योग करने हारा।
९४—*अभिसर्ता* = सम्मुख चलने वाला।
९५—*विमोक्ता* = दुःख से छुड़ाने वाला।
९६—*त्रिष्ठी* = जल, स्थल, आकाश, तीनों स्थानों में विमानादि के साथ रहने वाला।
९७—*मानस्कृत* = मन से विचार करने में प्रवीण।
९८—*आञ्जनी-कारी* = नेत्र में अंजन लगाने वाली स्त्री।
९९—*कोशकारी* = करवालादि कोश करने वाली।
१००—*असू* = मृतवत्सा स्त्री।

(१५) १०१—*यमसू* = यमल प्रसव करने वाली स्त्री (यमौसूते)।
१०२—*अवतोका* = अपुत्रा स्त्री।
१०३—*पर्य्यायिणी* = क्रम से पुत्र कन्या उत्पन्न करने वाली।
१०४—*अविजाता* = ब्रह्मचारिणी कुमारी।
१०५—*अतित्वरी* = अत्यन्त चलने वाली (अत्यन्त कुलटा)।
१०६—*अतिष्कद्वरी* = अतिशय कर जानने वाली।
१०७—*विजर्जरा* = वृद्धा स्त्री।
१०८—*पलिक्नी* = श्वेत केश वाली स्त्री।

१०९—*अजिनसन्ध* = नहीं जितने वाले पुरुषों से मेल रखने वाला ।

११०—*चर्म्मम्न* = चर्म्मकार (चर्म्माणि मनति अभ्यस्यति, निर्माति) चर्म्म + म्न । म्नाअभ्यासे ।

(१६) १११—*धैवर* = धीवर का लड़का (धिया वुद्धया वरः) ।

११२—*दाश* = सेवक, धीवर ।

११३—*वैन्द* = निषाद का पुत्र ।

११४—*शौष्कल* = मछियों से जीने वाला ।

११५ *मार्गार* = व्याध का पुत्र ।

११६—*केवर्त* = जल में नौका चलाने वाला ।

११७—*आन्द* = बान्धने वाला ।

११८—*मैनाल* = मीन ग्राही सन्तान ।

११९—*पर्णक* = भील ।

१२०—*किरात* = किरात ।

१२१—*जम्भक* = नाश करने वाला ।

१२२—*किम्पूरुष* = छोटे जंगली मनुष्य । (१)

(१७) १२३—*पौल्कस* = भंगी का पुत्र ।

१२४—*हिरण्यकार* = सुवर्ण बनाने हारा सुनार ।

१२५—*वाणिज* = बनिया का पुत्र ।

१२६—*ग्लावी* = हर्ष को नष्ट करने हारा ।

१२७—*सिध्मल* = रोगी ।

१२८—*जागरण* = जागने वाला ।

१२९—*स्वपन* = सोने वाला ।

१३०—*जन-वादी* = स्पष्टवक्ता ।

---

(१) इस मन्त्र में १२ नाम आए हैं ।

१३१—*अपगल्भ* = प्रगल्भता शून्य ।

१३२—*प्रछिद* = अधिक छेदन करने वाला ।

(१८) १३३—*कितव* = जुआरी ।

१३४—*आदिनवदर्श* = प्रारम्भ में ही नवीन दोष दर्शी (आदि+नव+दर्शी) ।

१३३—*कल्पी* = कल्पना वाला ।

१३६—*अधिकल्पी* = अधिक कल्पना करने हारा ।

१३७—*सभास्थाणु* = सभा में स्थिर रहने वाला सभ्य ।

१३८—*गोव्यछ* = गौ को ताडन करने हारा ।

१३९—*गोघात* = गौ को मारने हारा ।

१४०—*भिक्षमाण* = भीख माँगता ।

१४१—चरकाचार्य्य = भक्तकों का आचार्य्य ।

१४२—*सैलग* = दुष्ट का पुत्र ।

(१९) १४३—*अर्तन* = प्रापक ।

१४४—*भष* = परिभाषक ।

१४५—*वहु-वादी* = वहुत वोलने वाला ।

१४६—*मूक* = गूँगा ।

१४७—*आडम्बराघात* = हल्ला-गुल्ला करने वाला ।

१४८—*वीणावाद* = वीणा बजाने वाला ।

१४९—*तूणव-ध्म* = तूणव बाजे बजाने वाला ।

१५०—*शङ्ख-ध्म* = शङ्ख बजाने वाला ।

१५१—*वन-प* = वन रक्षक ।

१५२—*दाव-प* = वनदाह रक्षक ।

(२०) १५३—*पुंश्चलू* = व्यभिचारिणी स्त्री ।

१५४—*कारी* = विक्षेपक, फेंकने हारा ।

१५५—*शावल्या* = कवरे मनुष्य की कन्या ।

१५६—*ग्रामणी* = ग्रामनायक (ग्रामं नयति)

१५७—*गणक* = गणितविद् ।

१५८—*अभिक्रोशक* = पुकार ने हारा ।

१५९—*वीणावाद* = वीणा बजाने हारा ।

१६०—*पाणिघ्न* = हाथ से ताल बजाने वाला । (पाणिं हन्ति)

१६१—*तूणव-ध्म* = तूणव बजाने वाला ।

१६२—*तल-व* = हस्तादि ताल बजाने वाले ।

(२१) १६३—*पीवा* = स्थूल ।

१६४—*पीठसर्पी* = बिना पगों का । हाथ में खड़ाऊँ लेकर सरक कर चलने वाला ।

१६५—*चाण्डाल* = चाण्डाल ।

१५६—*वंशनर्ती* = बाँस पर नाचने वाला नट ।

१६७—*खलति* = गंजा ।

१६८—*हर्य्यक्ष* = वानर की सी छोटी आँख वाला ।

१६९—*किर्मिर* = कबर-रङ्ग वाला ।

१७०—*किलास* = थोड़ा खोता वर्ण ।

१७१—*शुक्लपिङ्गाक्ष* = पीत नेत्र ।

१७२—*कृष्णपिङ्गाक्ष* = कृष्ण नेत्र ।

इति प्रथममार्य्यदस्युदासादि-शब्दनिर्णयप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ

'खेती करना आदि व्यवसाय प्रकरण'

देश में प्रायः लोग समझते हैं कि खेती करना, लोह से कुठार वाशी (वसुला) कुद्दाल वगैरह गढ़ना, काठ से हल,

युग (जूआ) गाड़ी, रथादि तैयार करना, मिट्टी से अनेक वर्त्तन गढ़ना, काँसे पीतल आदि से वर्तन बनाना, सूतों से कपड़ा बुनना, चमड़ों के विविध जूते वा वस्त्र वा युद्ध में पहनने के हेतु अनेक प्रकार के वर्म्म सीना और चमड़े के तन्तु से ज्या (प्रत्यञ्चा धनुष की रस्सी) सुसज्जित करना, चक्की पीसना, अपने कार्य्य के लिये ढोना, खाई, नहर, कूप, तालाव आदि खोदना, सड़क बाँधना वगैरह कर्म्म नीच पुरुषों के हैं। और प्रत्यक्ष देखते हैं कि इन सब व्यवसायों के करने वाले आज नीच निकृष्ट अस्पृश्य माने जाते हैं। और सभ्य समाज में वे किसी प्रकार से सम्मिलित नहीं किए जाते। ये परिश्रम-शील पुरुष जिनके अधीन समाज के जीवन, शोभा, सुन्दरता है अति घृणित और नीच बना दिये गये हैं। इनसे यज्ञोपवीत छीन लिया गया। कर्म्म-करना निषेध किया गया। इस प्रकार ज्यों-ज्यों इनका सम्बन्ध उच्च वर्णों से छूटता गया त्यों-त्यों ये गिरते गये। मद्यादि सेवन से, शौचादिक के त्याग से और विद्या के अध्ययन अध्यापन न होने से ये सब निःसन्देह आज बहुत नीचे गिरे हुए हैं। इनके कर्म्म, धर्म्म, देव, पितर, भजन, बैठना उठना सब ही उच्च वर्णों से भिन्न-भिन्न हो गये। मैं इस प्रकरण के आप लोगों को सुनाना चाहता हूँ कि कोई व्यवसाय वेदानुसार निकृष्ट नहीं। ब्राह्मण ऋत्विक् राजा प्रभृति भी इन व्यवसायों को बड़े आनन्द से किया करते थे। आप यह समझें कि समाज की शोभा के निमित्त वा जीवन निर्वाहार्थ जिन-जिन व्यवसायों की आवश्यकता थी उनको सब कोई कुछ न कुछ अवश्य किया करते थे। विशेष कर ब्राह्मण और राजा को आज्ञा थी कि उन व्यवसायों को तुम कभी-कभी किया करो जिससे साधारण प्रजाओं में घृणा न हो। एवमस्तु अब आप वेदों की ऋचा सुनकर स्वयं मीमांसा करें।

'राजकर्तव्य हलचालन'

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं वकुरेण धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रतुरार्य्याय ॥

१ । ११७ । २३ ॥

यवम् । वृकेण । अश्विना । वपन्ता । इषम् । दुहन्ता । मनुषाय । दस्रा । अभि । दस्युम् । वकुरेण, धमन्ता । उरु । ज्योतिः । चक्रथुः । आर्याय ॥

अर्थ = (दस्रा+अश्विना) हे दर्शनीय राजन् ! तथा मन्त्रिन् ! आप दोनों (वृकेण) लाङ्ग्ल=खेती करने के कर्षक यन्त्र से (यवम्+पवन्ता) यव (जौ) अनेक प्रकार के अन्नों को बोते हुए और उस बोआई से (इषम्+दुहन्ता) अन्नों को पृथिवी से दुहते हुए तथा (वकुरेण) वकुरनामक अस्त्र से (दस्युम्+अभि+धमन्ता) दुष्टों को नाश करते हुए इस प्रकार इन तीन प्रकार के कर्म्मों से (आर्याय+मनुषाय) आर्य मनुष्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रथुः) कर रहे हैं इस हेतु, आप दोनों परम प्रशंसनीय है ।

यास्क 'वकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीतिवा' जो अस्त्र जलता हुआ दौड़े जैसे बन्दूक, तोप आदि उसे वकुर कहते हैं । 'वृको लाङ्लं भवति' 'लाङ्गल का नाम यहाँ वृक है । निरुक्त ६ । २५ । और २६ ॥

निरुक्त में इस ऋचा का उदाहरण आया है । वृक नाम यहाँ हल के लांगल का है । इसमें विस्पष्ट वर्णन है कि राजा और मन्त्री दोनों मिलकर कभी-कभी खेती करें ताकि प्रजाएँ इस कर्म को नीच न समझें और इस व्यवसाय के करने वाले भी निकृष्ट

न माने जाँय। कदाचित् आप कहेंगे कि यहाँ 'अश्विनौ' पद से देवता का ग्रहण होता है राजा मन्त्री का नहीं। सुनिये, 'अश्विनौ' किसको-किसको कहते हैं—"तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके अहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः" इस प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मात्मा राजा मन्त्री जोड़े का भी नाम 'अश्विनौ' है। और देवता भी शुभ-गुण-सम्पन्न मनुष्य ही कहाते हैं। खेत करने वाले को देवता की पदवी दी गई है। यह इनकी प्रशंसा है।

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
ता वा मद्यसुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्रस्तुवीमहि॥
८। २२। ६॥

(दिवि) द्युलोक में जैसे मनुष्य के सुख के लिये सूर्य्य चन्द्र कार्य्य कर रहे हैं तद्वत् आप दोनों राजा मन्त्री (मनवे) मनुष्य के लिये (पूर्व्यम्) नवीन वस्तु (दशस्यन्ता) देते हुए (यवम्) जौ अर्थात् सब प्रकार के धान्य (वृकेण) लाङ्गल से (कर्षथः) उत्पन्न करते हैं। इस हेतु (अश्विनौ) हे राजा! तथा मन्त्री (अद्य) आज (शुभस्पती) शुभकर्म्म के पालन करने वाले अथवा जल के रक्षक (ता+वाम्) आप दोनों को (सुमतीभिः) शोभनमति अर्थात् स्तोत्रों से (प्रस्तुवीमहि) हम लाग स्तुति करते हैं। अर्थात् आपके गुण गाते हैं।

शुभः+पती=जल के रक्षक राजा को इस हेतु यहाँ कहा गया है कि खेत जल से ही होता है। यदि जल का प्रबन्ध राजा न करे तो खेती होना कठिन है। राजपूताने और पञ्जाब आदि देश में आजकल भी जलार्थ राजाओं का बड़ा प्रबन्ध देखा जाता है। अन्यान्य कर्म के साथ किसानी भी एक कर्त्तव्य कर्म्म राजा

के लिये विहित था। पौराणिक समय में भी जनक और पृथु महाराज आदि की कथा कर्षणवृत्ति राजकर्त्तव्य सूचित करती है।

'कृष्टि और चर्षणि'

मनुष्य के नाम में कृष्टि और चर्षणि ये दो नाम आते हैं 'कृष् विलखने' कृष् धातु से ये दोनों शब्द बने हैं। पृथिवी को हलादि यन्त्र से चीरना फाड़ना अर्थ 'कृष्' धातु का है इसी अर्थ में इसके प्रयोग बहुत आते हैं इसी हेतु खेत से जीने वाले किसान के नाम आज कल कर्षक, कृषक और कृषीवल आते हैं (१) जब मनुष्य मात्र के नाम (निघण्टु २-३) कृषि और 'चर्षणि' है। तो क्या राजा और ब्राह्मण मनुष्य में नहीं।

'कृषि कर्म्म प्रचारार्थ आज्ञा'

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहा दुत्तरा मुत्तरा समाम्॥ ऋ०४। ५७। ४॥

(इन्द्रः) जो राजा हो वह (सीताम्+निगृह्णातु) लांगल को पकड़े और (ताम्+अनु) पीछे उस सीता को अर्थात् हल सम्बन्धी खेती क्रिया को (पूषा) मन्त्री वगैरह नि+यच्छतु) नियय में चलावें (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) प्रत्येक आगामी वर्ष में। इस प्रकार (सा+पयस्वती+दुहात्) वह दूध देने वाली होवे॥

भाव यह है कि प्रथम, वर्ष के आरम्भ में कम से कम एक आध दिन स्वयं राजा हल को पकड़कर चलावें। पीछे मन्त्री आदि प्रबन्धकर्ता पुरुष प्रजाओं के बीच इस क्रिया को फैलाने के

---

(१) क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषिकश्च कृषीवल॥ अमर २। ६। ६॥

लिये पूरा यत्न करें। ऐसा न हो कि किसी हल बैल बीज पानी आदि के अभाव से खेती करना बन्द हो जाय। खेती से ही गाय भैंस बकरी भेंड़ी घास-भूसे खाती हैं और सब दूध देती हैं। मनुष्य मात्र का जीवन इसी के अधीन है इस प्रकार खेती दूध देने वाली प्रत्येक वर्ष हुआ करती है। इस ऋचा के द्वारा ईश्वर ने राजा को हल चलाने की आज्ञा देकर कृषि विद्या प्रचारार्थ आज्ञा दी है।

यदि कोई कहे कि इन्द्र नाम तो देवों के राजा का है। सुनिये मैं कह चुका हूँ कि देव' मनुष्य भी होते हैं। और ऐसे-ऐसे स्थान में इन्द्र पद से 'राजेन्द्र' का ग्रहण होता है। जिसके पक्ष में देवराज अभीष्ट है। उस पक्ष में भी कोई क्षति नहीं। जब देवराज खेती करते हैं तो मनुष्य राजाओं की क्या गिनती है। इससे तो खेती की और भी प्रशंसा होती है।

खेती और जनक महाराज—'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता'। रामायण १। ६६। १४॥ बालकाण्ड रामायण में जनक महाराज स्वयं कहते हैं कि हल चलाते हुए मुझे यह सीता मिली, इस कथा का भाव जो कुछ हो परन्तु राजा को हल चलाकर खेती करने का पता इससे अवश्य लगता है। यदि उस समय क्षेत्र-कर्षण राजा को निषेध रहता तो ऐसा इतिहास कभी नहीं लिखा जाता॥ अतः 'सीता' यह नाम और सीता-जनक-चरित्र पूर्णतया दृढ़ करता है कि क्षेत्र-कर्षण और कृषीवल दोनों नहीं माने जाते थे।

खेती और पृथु महाराज—पृथु महाराज के चरित्र में यद्यपि बहुत अन्तर पड़ गया है। और इसके साथ बहुत ही अत्युक्ति की गई है। परन्तु यह इतिहास सूचित करता है कि पृथ्वी पर अन्न

उत्पन्न करने के लिए राजा अनेक उपाय किया करते थे। ऋषि, ब्राह्मण, राजा, प्रजा सब मिल कर खेती विद्या की बढ़ती में तत्पर थे। भागवत चतुर्थस्कन्ध सप्तदशाध्याय में लिखा है कि अन्न बिना भूखों मरती हुई प्रजाएँ पृथु के समीप आ जोर से चिल्ला उठीं कि आप हम सबों की रक्षा करें अन्न बिना सब मरती जाती हैं। तब पृथु महाराज धनुष बाण ले पृथिवी के पीछे चले। पृथ्वी वशीभूत हुई और उससे सारे खाद्य पदार्थ दुहे। भाव इसका केवल यह है कि खेती के लिए राजा प्रजा ऋषि मुनि सब ही उद्यत रहते थे।

'खेती और विद्वान् आचार्य्य आदि'

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ऋ० १०।१०४।४॥

सीर = हल। युग = जुआ। सुम्न = सुख।

(धीराः) धीमान् क्षेत्रविद्यावित् (कवयः) कृषिकर्म्म जानने वाले विद्वान् (सीरा+युञ्जन्ति) हल में बैल जोतते हैं और (युगा) युगों को (पृथक्+वितन्वते) पृथक्-पृथक् विस्तार करते हैं। किस हेतु? (देवेषु+सुम्नया) मनुष्यों में सुख पहुँचाने के हेतु॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपते ह बीजम् ॥ १०।.०१।३॥

हे विद्वानों! (सीरा+युनक्त) हलों को बैलों से युक्त करो (युगा+वि तनुध्वम्) युगों को विस्तार करो। [कृते०] हल से तैयार खेत में बीज बोओ। इत्यादि अनेक ऋचाएँ विद्वान्

आचार्य, कवि, धीर प्रभृतियो को भी हल चलाने को आज्ञा देती हैं। पीछे आचार्यों ने इसका अनुकरण भी किया है यथा :—

खेती और धौम्य ऋषि :—महाभारत-आदि पर्व तृतीयाध्याय में लिखा है कि कोई एकधौम्य नामक ऋषि थे। उनके उपमन्यु, आरुणि, और वेद तीन शिष्य थे। "स एकं शिष्य मारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं वधानेति। 'आदिपर्व' ३। २४। उन्होंने एक शिष्य पाञ्चाल्य आरुणि से कहा कि जा खेत के पानी को बाँध आ। परन्तु वह वहाँ जाकर खेत न बाँध सका। इस हेतु पानी बहने के पनाले में पड़ रहा। गृह पर उसे न देख धौम्य ऋषि वहाँ जा शिष्य का चरित्र देख अति प्रसन्न हुए हैं। वह शिष्य पीछे "उद्दालक" नाम से जगत् विख्यात हुआ। यह आख्यायिका धौम्य ऋषि का खेत करना सूचित करती है। इसके आगे कृषिकर्म्म सम्बन्धी एक सूक्त ही सुनाते हैं।

'ऋग्वेद ४। ५७ सम्पूर्ण सूक्त'

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृलाती दृशे॥ १॥

वामदेव ऋषि सबको उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यों! (वयम्) हम सब कोई (हितन+इव) परम मित्र के समान (क्षेत्रस्य+पतिना) खेत के स्वामी के साथ होकर ही (जयामसि) विजय पाते हैं। अर्थात् करने वाले पुरुष हम लोगों को विविध अन्न पहुँचाते हैं तब ही हम लोग प्रत्येक कार्य्य को करने में समर्थ होते हैं। (सः) वह क्षेत्रपति (गाम्+अश्वम्) गौ, बैल और अश्व (पोषयित्नु) और पुष्टिकारक अन्यान्य पदार्थ (आ) सब तरह से हम लोगों को पहुँचाते हैं। जिस हेतु (ईदृशे) ऐसे-

ऐसे कार्य्यों में खेतिहर किसान (नः+मृलाति) हमको सुख पहुँचाते हैं इस कारण क्षेत्रपति सदा आदरणीय है।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूत मृतस्य नः पतयो मृलयन्तु ॥२॥

अब क्षेत्रपति की ओर देखकर वामदेव ऋषि कहते हैं कि (क्षेत्रस्य+पते) हे क्षेत्रस्वामिन्! (धेनुः+इव+पयः) जैसे गौ दूध देती है वैसे ही (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (मधुमन्तम्) मीठी (ऊर्मिम्) जल धारा (धुक्ष्व) दूहो अर्थात् मीठा जल के लिए भी उपाय किया करो (ऋतस्य+पतयः) खेत के लिए उपाय किया करो (मधुश्चुतम्+मृतम्+इय+सुपूतम्) मधुस्रावी पवित्र घृत के समान (ऋतस्य+पतयः) खेत के मालिक (नः) हम लोगों को (मृडयन्तु) सुख पहुँचाया करें।

मधुमती रोषधी द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥

पृथिवी पर (ओषधीः) जौ, गेहूँ धान आदि अन्न (द्यावः) द्युलोकस्थ सूर्य्यादिपदार्थ (आपः) और मेघस्थजल ये (मधुमतीः) सब ही हमारे लिये मीठे होवें (नः) हमारे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाशस्थ सब ही पदार्थ (मधुमत्+भवतु) मीठा होवे। (क्षेत्रस्यपतिः+मधुमान्+अस्तु) क्षेत्र पति भी मीठा होवे और हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी से द्रोह न करते हुए (एनम्+अनु+चरेम) क्षेत्रपति के अनुकरण करें। जैसे किसान बड़ी शान्ति और धैर्य्य के साथ खेती करता है। उसी प्रकार हम लोग सब कार्य्य करें।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रा मुदिङ्गय । ४ ।

(वाहाः) बैल (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें । (नरः) खेती करने वाले मनुष्य (शुनम) सुख पावें (शुनम् + कृषतु + लाङ्गलम्) खेतों में सुख से लांगल चलें (शुनम् + वरत्राः) सुख पूर्वक रस्सियाँ (बध्यन्ताम्) बाँधो जाँय । (अष्टाम्) कोहाल आदि खेत करने की सामग्री (शुनम्) सुख से (उद् + इङ्गय) चलाओ ।

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रतुः पयः । तेनेमा मुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

हे (शुनासीरौ) सुख से खेती करने वाले नर नारियों ! (इमाम् वाचम्) इस उपदेश-मय वाणी को (जुषेथाम्) प्रीति पूर्वक सुनो । (यद्) जिस (पयः) पानी को (शुनासीरौ) सूर्य्य और वायु (दिवि) आकाश में (चक्रतुः) बनाते हैं (तेन) उस पानी से (इमाम्) इस भूमि को (सिञ्चतम्) सींचो ।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।

अथानः सुभगा ससि यथानः सुफलाससि ॥ ६ ॥

(सुभगे + सीते) हे सुभगे हल सामग्री (अर्वाची + भव) पृथिवी के नीचे चलने वाली होओ । (त्वा + वन्दामहे) तेरी कामना हम करते हैं (यथा) जैसे तू (वः) हमारे लिए (सुभगा + अससि) सुभगा है और (यथा + नः) जैसे हमारे लिए (सुफला) अच्छे अच्छे फल देने वाली (अससि) है । वैसे ही सदा बनी रहो ।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।

सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥

(इन्द्रः) राजा (सीताम्+नि+गृह्णातु) हल के लाङ्गल को पकड़ कर चले (ताम्+अनु) पीछे उसका (पूषा) पोषण कर्ता मन्त्री (यजतु) चलावे अर्थात् राजा सीता अर्थात् खेती विद्या को खूब फैलावे और उसके पीछे मन्त्री आदि भी इसी का अनुकरण करें जिससे कि (सा) वह खेती (नः+पयस्वती+दुहाम्) हम लोगों को दूध देने वाली हो (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) होने वाले वर्ष में वह हमको सुख देने वाली होवे।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः। शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

(नः) हम लोगों के लिये (फालाः) लोहे से बनाई हुई भूमि खोदने के लिये फार (शुनम्) अच्छे प्रकार (भूमिम्) भूमि को (वि कृषन्तु) चीर फार करें (कीनाशाः) खेतिहर लोग (वाहैः) बैलों के द्वारा (अभि+यन्तु) खेती के सब काम करें (पर्जन्यः) मेघ (मधुना+पयोभिः) मधुरता से युक्त जल को (शुनम्) सुख से बरसावे (शुनासीरौ) सूर्य्य और वायु (अस्मासु) हमारे निमित्त (शुनम्+धत्तम्) सुख पहुँचावें ॥ ८ ॥

कृषि कर्म्म सम्बन्धी मैंने अनेक ऋचाएँ यहाँ सुनाई हैं। मैं देखता हूँ हलग्राही पुरुष देश में अतिनिकृष्ट समझे जाते हैं। मिथिला देश में द्विज यदि अपने हाथ से हल चलावें तो वे जाति से निष्काशित हो जाँय। खेत के सब काम करेंगे। दिन भर खेत खोदेंगे। निरोनी करेंगे। काटना बोना दबाना खलियाना वगैरह में अपना सम्पूर्ण समय लगावेंगे। परन्तु अपने हाथ से हल नहीं चला सकते। इतना मैं अवश्य कहूँगा कि इन कामों में सदा लिप्त रहने से मनुष्य नीच बन जाता है। परन्तु क्या केवल एक ही

हल को न छूने से कोई ब्राह्मण बना रह सकता है। नहीं। हल चलाने से क्या होता। बात यह है कि पठन-पाठन स्वाध्याय आदि सब शुभ कर्म्म को छोड़ रात दिन केवल भूमि के खोदने में लगा रहना सर्वथा अनुचित है॥ खेती करवानी अवश्य चाहिये। तिरहुत में अभी तक एक विधि चली आती है कि माघ शुक्ल पञ्चमी को ब्राह्मण लोग भी अढ़ाई मोर हल स्वयं अपने हाथ से चलाते हैं। यह सूचित करता है कि यों हल चलाना अनुचित नहीं।

'चीन देश का राजा और हल चलाना'

"चीन देश में किसनई के काम का बड़ा आदर सम्मान किया जाता है। पीकिङ्ग नगर के समीप एक विशेष खेत है जहाँ बरस में एक बार महाराज और प्रधान लोग एकट्ठे होके बड़ा त्योहार करते हैं। एक बहुत विभूषित हल महाराज के हाथ में दिया जाता है जिसके द्वारा वह तीन कुड़ बनाता है और हर एक राजकुमार पाँच और बड़े-बड़े राजमन्त्री नौकुड़ बनाते हैं। उस स्थान पर एक गाय की बड़ी मूर्ति मट्टी की बनी हुई और उसके पास मट्टी की ऐसी सैकड़ों छोटी-छोटी मूर्ति रक्खी जाती हैं। जब खेत जोता गया तब भीड़ गाय की बढ़ी मूर्ति को टुकरा-टुकरा करके और छोटी मूर्ति को लूटकर ले जाती है और उनकी मिट्टी को पीसकर अपने-अपने खेतों में डालती है"? चीन देश चित्रमाला पृ० ४४।

'वस्त्रवयन (कपड़ा बुनना)'

वस्त्र निर्माण कर्म्म को आज कल लोग बहुत निन्दनीय मानते हैं। परन्तु मैं पूछता हूँ कि भारतवर्ष भर में सब वर्णों के पुरुष

कपास पैदा करते हैं। प्रायः सब वर्णों की स्त्रियाँ चरखा कातती हैं इस प्रकार उत्तम से उत्तम सूत बना लेती हैं। जब इतने काम कर लेती हैं तो वस्त्र बुनने में क्या दोष आ गया है। अति शोक की बात है कि बुनाई को बुरी और कताई को अच्छी मानें। हाँ इतनी बात अवश्य है कि बुनाई के हेतु अनेक सामग्री की आवश्यकता है। जो प्रत्येक मनुष्य नहीं रख सकता है यह सत्य है। परन्तु जो धनिक समर्थ हैं वे रक्खें और इसका व्यापार भी करें इसमें क्या क्षति। परन्तु मैं देखता हूँ वस्त्र-वयनकर्ता तन्तुवाय (जुलाहे) की एक पृथक् जाति ही भारत में बनी हुई है। और सभ्य समाज में नीच मानी जाती है। इस श्रमजीवी को नीच मानना बहुत ही अनुचित है। यदि यह वस्त्र न बनाये तो शोभा सुन्दरतादि सब ही जाती रहे सब जङ्गली बन जायँ।

मैं इस प्रकरण में दिखलाऊँगा कि ऋषि लोगों को भी वस्त्र बनाने की आज्ञा है। और पूर्व समय में रूई कातना बनाना आदि के समान प्रत्येक गृह में देवियाँ विविध प्रकार के वस्त्र भी अपने हाथ से बुन लेती थीं। यह कर्म्म अनुचित नहीं माना जाता था। जैसे आज कल द्विज भी कम्बल, शाल, दुशाल, पीताम्बर, अनेक प्रकार के कौशेयवस्त्र, खटिया, चारपाय, पर्यङ्क वगैरह बना लेते हैं और इस कर्म्म को अनुचित नहीं मानते हैं। वैसे ही पूर्व समय में सब वर्णों के नारी और नर सब प्रकार के वस्त्र बुन लिया करते थे।

'ऋषि और मेषलोम से वस्त्र वयन'

प्रत्यर्धिर्यज्ञाना मश्वहयो रथानाम्। ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः॥ ५॥ आघीषमाणायाः पतिः

शुचायाश्च शुचस्यच । वासोवायोऽवीना मावासांसि मर्मृजत्॥

ऋ० १० । २६ ॥

ऋषि कौन-कौन कार्य्य करते हैं इसका संक्षेप वर्णन है। (ऋषिः) ऋषि है (यज्ञानाम्+प्रत्यर्धिः) यज्ञों के फैलाने वाले हैं। (रथानाम्+अश्वह्यः) रथ सम्बन्धी अश्व विद्या के ज्ञाता। ऐसे (यः) जो ऋषि हैं (सः) (मनुर्हितः) वे मनुष्य हितकारी होते हैं और (विप्रस्य+यावयत्सखः) मेधावी विद्वानों के दुःखों के नाश करने वाले सखा हैं ॥ ५ ॥ पुनः (आधीषमाणायाः) बच्चा देनेवाली भेंड़ी (शुचायाः) लोमों से देदीप्यमान भेंड़ी और (शुचस्यच) शुद्ध भेंड़ का (पतिः) पालक हैं और (अवीनाम्) भेड़ों वालों से (वासोवायः) वस्त्र बुनने वाले हैं और (वासांसि) बुने हुए अनेक वस्त्रों की (आ+मर्मृजत्) परिशोधन करने हारे हैं।

अवि = भेंड़ भेड़ी। बास = वस्त्र। यहाँ विस्पष्ट कहा गया है कि लोम वस्त्र ऋषि लोग निर्माण करते हैं। अनेक ऋचाओं से पता लगता है कि मनुष्यमात्र को बकरी, भेंड़ आदि पशु रखने की आज्ञा है। जब ऋषियों को वस्त्र बुनने की आज्ञा है तब जुलहे को हम क्यों कर घृणित मान सकते हैं।

'विद्वान् को वस्त्र वयन करना'

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।

यजु० । १९ । ८० ॥

(मनीषिणः) मननशील पुरुष (सीसेन+तन्त्रम्) सीस = सीसा धातु से (तन्त्रम्) अंगद = भूषणविशेष (वयन्ति) बनाते हैं और (कवयः) विद्वान् पुरुष (ऊर्णासूत्रेण) ऊनी सूत से

(तन्त्रम्+वयन्ति+मनसा) विचार पूर्वक पट बनाते हैं।— 'तन्त्रं राष्ट्रेच सिद्धान्ते परच्छन्दाप्रधानयोः। अंगदे कुटुम्बकृते तन्तुवाने परिच्छदे ॥ इति ॥ 'तन्त्र' शब्द अनेकार्थ है। यहाँ विस्पष्ट कहा है कि मनीषी और कवि लोग परिधेयभूषण और ऊनीवस्त्रवयन करते हैं। वैदिक और आजकल के सिद्धान्त में कितना भेद हो गया है।

'जुलहे का व्यवसाय'

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धियाकृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ १० । ५३ । ६ ।

तन्तुम्। तन्वन्। रजसः। भानुम्। अन्विहि। ज्योतिष्मतः। पथः। रक्ष। धिया। कृतात्। अनुल्वणम्। जोगुवाम्। अपः। मनुः। भव। जनय। दैव्यम्। जनम्।

हे मनुष्यो ! (रजसः+भानुम्) अनेक रंग के प्रकाशक किरण के समान देदीप्यमान (तन्तुम्+तन्वन्) सूत को बनाते हुए आप (अनु+इहि) पूर्वजों का अनुकरण किया करें और इस प्रकार (धिया+कृतात्) ज्ञान के द्वारा निर्मित (ज्योतिष्मतः पथः) उत्तम पथ अर्थात् वस्त्रादिकनिर्माणकर्म्म को (रक्ष) रक्षा कीजिये। और (अनुल्वणम्) शान्ति पूर्वक (जोगुवाम्) जोगू=जुलहों के (अपः) कार्य्य को (वयत) करो। इस प्रकार (मनुः+भवः) मननशील मनुष्य बनो और सदा (दैव्यम्+जनम्) उत्तम स्वभाव के मनुष्य को (जनय) उत्पन्न करो।

"अप" नाम कर्म्म का है। नि० २-१-) 'धी' यह नाम भी कर्म्म का है ! "वयत" वेञ् तन्तुसन्ताने 'वे' धातु का प्रयोग

बुनाने अर्थ में सदा आता है। इसी हेतु जुलहे को 'तन्तुवाय' कहते हैं, (तन्तुम्+वयतीति) यहां 'जोगू' नाम जुलहे का है ॥ इसी शब्द से 'जुलहा' पद निकला है।

'स्त्री और वस्त्र निर्म्माण'

पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्मधीरः

२ । ३८ । ४ ॥

पुनः=पुनः पुनः । समव्यत् समिटती है। वितत+विस्तीर्ण। वयन्ती=कातती हुए सूत बनाती हुई नारी। मध्या=मध्या। कर्तोः=कर्म। न्यधात्। रखता है। शक्म=शक्य। धीर।

रात्री (वयन्ती) वस्त्र बुनती हुई नारी के समान (विततम्) विस्तीर्ण आलोक को (पुनः समव्यद्) पुनः पुनः पूर्ववत् समिटती है। और (धीरः) धीर पुरुष (कर्तोः) कर्म (शक्म) जो करने योग्य था उस कर्म्म को (मध्या) बीच में ही (न्यधात्) छोड़ देते हैं। क्योंकि सन्ध्योपासन का समय उपस्थित हुआ। यह सन्ध्याकाल का वर्णन है।

'वयन्ती वस्त्रं वयन्ती नारीव' सायण। इससे शिद्ध है कि स्त्रियाँ वस्त्र बुनती थी। वेदों में विविध प्रकार से वर्णन आते हैं। कहीं साक्षात् कहीं परम्परा से। यहाँ उपमामात्र से दिखलाया गया है कि सब नारी को भी वस्त्र वयन करना वेद विहित है। ऐसी उपमा प्रायः वेद में आती रहती है यथा—

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते तन्तुं ततं संव्ययन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती।

२। ३। ६॥

यहाँ 'वयी' शब्द का प्रयोग ही करता है कि स्त्री को कपड़ा बुनना चाहिये। क्योंकि यह शब्द स्त्री लिङ्ग है।

विवाह पद्धति में स्त्री को वस्त्र देने के समय एक ऋचा पढ़ी जाती है। इसका यही भाव है कि कातना बुनना सीना पिरोना किनारे में झालर आदि लगाने का कार्य स्त्रियाँ करें। वह यह है।

या अकृन्तन्नवयन् याश्चतत्निरे या देवीरन्ताँ अभितो ददन्ता। तास्त्वा जरसे संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वास॥

अथर्व० १४। १। ४५॥

(याः+देवीः) जिन देवियों ने (अकृन्तन्) प्रथम रूई को चरखे में काता है। (अवयन्) पीछे वस्त्र वयन किया है और (याश्च) जिन देवियों ने (तत्निरे) उस वस्त्र में अन्य सूत लगा लगाकर (जैसे कि कपड़ों पर बेल, बूटे लगाये जाते हैं) विस्तृत किया है (याः) और जिन्होंने (अभितःअन्तान्+अददन्त) वस्त्र के चारों कोरों में अन्त अर्थात् झालर आदि दिये हैं (ताः) वे सब देवियाँ (जर से) पूर्णायुःप्राप्तर्थ। (त्वा+संव्ययन्तु) तुमको कपड़े से ढाकें (आयुष्मति) हे आयुष्मति कन्ये (इदं+वासः) यह वस्त्र (परि+धत्स्व) पहनों।

यह अथर्ववेदी ऋचा क्या उपदेश देती है यह विचारने की बात है। मन्त्र में 'देवी' पद आया है शुभ गुणों से युक्त विदुषी धीरा कुलीना स्त्री को देवी कहते हैं। जब कुलीना स्त्री वस्त्र वयन करती है तो अन्यान्य स्त्री की बात ही क्या रही हे विद्वानों! निःसन्देह वेद को त्याग चलने से ही भारत की यह दुर्दशा प्राप्त हुई है।

विवाह पद्धति में इस प्रकार पाठ है यथा—

या अकृन्तन्नवयन् याश्रतन्वत याश्च देवी स्तन्तू नमितोततन्थ। ता स्त्वा देवीर्जरसे संव्यस्वाऽऽयुष्मतीदं परिधत्स्ववासः। अत्र गदाधरकृत भाष्यम्। या देवीः देव्यः इदं वासः अकृन्तन् कर्तितवत्यः। या अवयन् वीतवत्यः वेञ् तन्तुसन्ताने श्रोतवत्य इत्यर्थः। वास्तन्तून् सूत्राणि अतन्वत प्रोतवत्यः तिर्य्यग् तन्तून् विस्तारितवत्य इत्यर्थः। चकाराद्या ओतान् प्रोतांश्च तन्तूनभित उभयपार्श्वयो रपि ततन्थ तेनुः। तुरीवेमादि व्यापारेण ग्रथितवत्यः। ताः तत्तत्सामर्थ्यदात्र्यो देव्यः स्वकार्य्यरूपवदिदं वासः त्वा त्वां जरसे दीर्घकालनिर्दुष्टजीवनाय संव्ययस्व परिधापयन्तु। पुरुषादि व्यत्ययश्छन्दसः। अतोहेतोः आयुष्मति! इदं एतादृशं वासः परिधत्स्व। उत्तरीयत्वेन। वृणीष्व॥ पुनः—

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात्॥१४।२।५१॥

अन्त=किनारे के झालर आदि। सिच=छींटें, कपड़े के ऊपर बेल बूटे। ओतु=तिरछे सूत। तन्तु=सूत। वास+वस्त्र। पत्नी=पतिव्रता स्त्री। उत=बुना है। स्योन=सुख। उपस्पृश=स्पर्श॥

(ये+अन्ताः) जो ये अन्त=झालरें हैं। यावतीः+सिचः) जितनी ये छींटें=बेल बूँटे हैं (ये+ओतवः+ये+च+तन्तवः) जो ये ओतु और तन्तु हैं और (यत्+वासः+पत्नीभिः+उतम्) जिस वस्त्र को कुलीना स्त्रियों ने बुना है (तत्+नः+स्योनम्+

उपस्पृशात्) वह सब ही हमारे सुखस्पर्शी होवें अर्थात् सुन्दर और कोमल होवें ।

अब क्या सन्देह हो सकता है ?

'वस्त्रवयन-विद्या-प्रचारार्थ-पाठशाला'

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥६।६।२॥

तन्तु = सूत । ओतु = टेढ़े सूत । वयन्ति = बनाते हैं । समर = स्थान । अतमान = चेष्टमान ॥

(अहं + तन्तुम् + न + वि + जानामि) मैं सूत नहीं जानता हूँ और (न + ओतुम्) वस्त्र बुनने में जो टेढ़े सूत दिये जाते हैं उन्हें भी मैं नहीं जानता हूँ और (यम्) तन्तु और ओत से जिस पट को (समरे + अतमानाः) अपने-अपने स्थान में परिश्रम करते हुए मनुष्य (वयन्ति) बुनते हैं उसे भी नहीं जानता हूँ इस प्रकार (इह) यहाँ (कस्य + स्वित् + परः पुत्रः) किसी का चतुर पुत्र (अवरेण + पित्रा) अपने अज्ञानी पिता से (वक्त्वानि + वदाति) वचन कहता है ।

अभिप्राय यह है कि कोई श्रमजीवी पुरुष अपने पिता से पूरी शिक्षा न पाकर कहता है कि मैं वस्त्रनिर्माण विद्या भी नहीं जानता जीविकोपाय कैसे करूँ । इस प्रकार जीविका का सहज उपाय वस्त्र-निर्माण है यह उपदेश इस ऋचा से दिया जाता है । यदि पिता अपने पुत्र को शिक्षा न दे सके तो अयन्त्र भेजकर इस विद्या का अध्ययन अपने पुत्र को करवावे । इसकी शिक्षा आगे के मन्त्र में दी जाती है ।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥३॥

(सः+इत्+तन्तु+विजानाति) वही आचार्य्य तन्तु को जानता है (ओतुम्) ओतु को भी जानता है। केवल वह जानता ही नहीं किन्तु (सः) वह (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु में (वक्त्वानि+ददाति) वस्त्र निर्माण-सम्बन्धी वक्तृता भी देता है। क्योंकि (यः+ईं+चिकेत) जो ही इस कर्म को जानता है (तत्) वही अमृतस्य इस अमृत विद्या वा कर्म्म का (गोपाः) रक्षक होता है पुनः (अवः) वह अवश्य रक्षक होता है (परः) परोपकारी चतुर वह अध्यापक (अन्येन) अन्य दूसरे ज्ञान से (पश्यन्) सबको देखता हुआ (चरन्) व्यवहार करता है। अर्थात् इसके लिये पाठशाला बनी हुई है। वहाँ इसकी वक्तृता ऋतु-ऋतु में होती है। जो इस विद्या को जानता है। वही अवश्य इसका रक्षक भी होता है। क्योंकि ज्ञान से सबको वह बराबर देखता हुआ इस विद्या को देने के लिये सबके साथ समान व्यवहार रखता है।

इन दो ऋचाओं से पता लगता है कि वस्त्र निर्माण विद्या कठिन है परन्तु इसकी इतनी आवश्यकता है कि इसके लिये पृथक् पाठशाला होनी चाहिये जिसमें अध्यापक इसकी पूरी शिक्षा दे देश में कल्याण का मार्ग खोलें। ३५ कोटि मनुष्य इस भारतवर्ष आज कल विद्यमान हैं। दरिद्र से दरिद्र पुरुष भी वर्ष में दो-चार वस्त्र अवश्य खरीदता है। इस विद्या से रहित देश को भाग्यहीन समझना चाहिये। यह व्यवसाय निर्दोष है। सबको करना करवाना उचित है हे विद्वानों! मैंने अनेक मन्त्र वेद से सुनाये हैं। किसी में क्या इस व्यवसाय की निन्दा है ? । यज्ञ में वस्त्र देने के समय मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं ? । बृहस्पति देवी आदि

पद क्यों आए हैं ? । इस सबका यही भाव है कि यह व्यवसाय बड़े-बड़े कुलीन पुरुष भी किया करें । क्या आज के लोग ऋषियों से भी बढ़ गए ? फिर इसको करते हुए क्यों अपने को नीच मानते हैं अथवा कुलीन पुरुष भी इसको क्यों नहीं आरम्भ करते हैं ? ।

चीन देश की महारानी और वस्त्र बुनना ।

"चीनी कहते हैं कि कौशाम्बर का बनाना हमारे देश का एक बहुत ही पुराना उद्यम है । वे यह भी कहते हैं पहिले पहिल किसी महारानी ने कौशाम्बर को काता और उससे कपड़ा बिना था । और इसीलिये नवें मास का एक दिन स्थापित हुआ जिसमें उसकी पूजा की जाती है और जैसे ऊपर वर्णन हुआ है कि महाराजा खेत में जाके हल जोतता है उसी रीति से महारानी अपनी सहेलियों सहित उस दिन को जाती हैं और तूँत की पत्तियों को बटोरती और तन्तु कीटों को खिलाती और उनके कितने कोषों को खोलकर उनसे सूत लपेटती हैं । चीन देश चित्रमाला पृ०५०

'रथकार, स्वर्णकार, कुम्भकार आदि'

अब मैं आप लोगों को रथकार आदि के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ काष्ठ, धातु, मृत्तिका और चर्म्म आदि पदार्थों से जो लोग विविध गाड़ी, रथ, भाजन, ज्या, धनुष, वर्म्म, यज्ञ पात्रादि निर्माण करते हैं उनका प्राचीन एक नाम 'तक्षा' है । क्योंकि (तक्षूत्वक्षू तनूकरणे) किसी पदार्थ से काट-काटकर वस्तु बनाने वाले का नाम 'तक्षा' है । यद्यपि आज कल तक्षा शब्द की प्रवृत्ति केवल 'बढ़ई' में हैं । परन्तु प्राचीन काल में लोहकार, स्वर्णकार, कुम्भकार, चर्म्मकार प्रभृति को भी यहीं नाम दिया

जाता था। आगे के वर्णन से यह प्रतीत होगा। आप लोग इस प्रकरण में देखेंगे कि इन श्रमजीवी व्यवसायी रथकार कुम्भकारादिकों की कितनी प्रतिष्ठा वेद में विहित है। इनके लिये धीर, विद्वान् विपश्चित, देव, निपुण, सुन्दर, प्रशंसार्ह, यज्ञिय आदि शब्द आए हैं। इनको ऋषि लोग स्वयं शिक्षा दिया करते हैं। यहाँ तक एक मन्त्र में (१) इनकी प्रशंसा आई है कि वे ही ऋषि हैं। वे ही शूर हैं। वे ही बाण के चलाने वाले हैं। जिसको वे बचाते हैं वे ही विजयी होते हैं। इत्यादि। क्यों? इसमें क्या सन्देह है कि ये ऋषि हैं। क्योंकि वेदों के मन्त्रों को देखकर ही उन्होंने अनेक परमोपयोगी युद्ध की सामग्री से लेकर खाने-पीने तक के सारे भाजन बर्तन आविष्कृत किये। नवीन-नवीन वस्तु बनाकर दी। यही तो ऋषियों का आदि सृष्टि में मुख्य कार्य्य था। अतः इन श्रमजीवी मनुष्यों का वेदानुकूल बड़ा आदर होना चाहिये। आज कल ये भी स्वयं कुछ गिर गये हैं इसका कारण मैं यही समझता हूँ कि ये सभासमाज से जितने ही पृथक् किये गये उतने ही गिरते गये। इनकी बड़ी उन्नति करनी चाहिये। अब ऋचाओं पर ध्यान दीजिये।

'तक्षा का आश्चर्यजनक कार्य'

अनश्वो जातो अनभीशु रुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः। महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥ मण्डल ४। सू० ३६॥

---

(१) स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः। स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥४।३६।६॥

(ऋभवः) हे रथ बनाने वाले मनुष्यो ! आपका काम परम प्रशंसनीय है क्योंकि (रथः) आपका बनाया हुआ रथ (रजः+ परिवर्तते) आकाश में भ्रमण करता है। वह रथ कैसा है (अनश्वःजातः) बिना घोड़े का। पुनः (अनभीशुः) प्रग्रहरहित अर्थात् लगाम रहित (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (त्रिचक्रः) तीन पहिया युक्त ईदृग् रथ आपने तैय्यार किया है इस हेतु (वः) आप लोगों का (देव्यस्य+प्रवाचनम्) दिव्य आश्चर्य्ययुक्त कर्म्म के प्रख्यात करने वाला (तत्+महत्) वह महान् कर्म्म है (यत्) जिस कर्म्म से (द्याम्+पृथिवीं+पुष्यथ) अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों को पुष्ट करते हैं। अर्थात् आपके बनाए विविध प्रकार के रथ पृथिवी औ आकाश दोनों में व्यापक हो रहे हैं। इस हेतु आप पूज्य हैं ॥ १ ॥ यहाँ 'अनश्व' 'अनभीशु' आदि शब्द सूचित करता है कि ऐसे रथ बनाए जा सकते हैं जो आकाश में अच्छे प्रकार चल सकें।

रथनिर्माण करना और यज्ञ में भाग लेना।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परिध्यया। ताँऊन्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥

(ये+सुचेतसः) जो बढ़ई शुद्ध चित्त होकर (मनसः परि+ ध्यया) मन के ध्यान से (सुवृतम्) सुन्दर गोल (अविह्वरन्तम्) टेढ़ा नहीं किन्तु सीधा (रथम्+चक्रुः) रथ बनाते हैं (वाजाः+ ऋभवः) हे विज्ञानी तत्वाओ ! (तान्+ऊ+वः) उन सब लोगों को (अस्य+सोमस्य+पीतये) इस सोम यज्ञ में खाने-पीने के लिये (आवेदयामसि) निमन्त्रण देते हैं ॥ २ ॥

'वृद्ध पिता माता को युवा बनाना'

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् । जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

हे (वाजाः = ऋभवः) हे विज्ञानी तक्षाओ ! आप लोग (विभ्व) विभू = बड़े शक्तिमान् हैं इस हेतु (वः) आप लोगों को (तत् + महित्वनम्) वह माहात्म्य (देवेषु) परम विज्ञानी पुरुषों में (सुप्रवाचनम् + अभवत्) कथन योग्य हुआ । अर्थात् परम विज्ञानी पुरुषों के समाज में भी आप के गुणों की चर्चा होती रहती है । कौन वह कर्म्म है सो कहते हैं । आप के (पितरौ) पिता माता (जिव्री) वृद्ध और (सनाजुरा + सन्ता) अत्यन्त जीर्ण होने पर भी (चरथाय) स्वच्छन्द विचरण करने को (पुनःयुवानौ + तक्षय) उनको पुनः आप युवा बनाते हैं । (यत्) यह जो आप का कार्य्य है वह प्रशंसनीय है । ३ ॥

प्रायः इस वर्णन को सुन कर आप को आश्चर्य्य लगा होगा कि वृद्ध और जीर्ण पुरुष को कोई युवा कैसे बना सकता है । ठीक है । परन्तु सुनिये यह तक्षा अर्थात् खाती का वर्णन है । ये लोग विविधि प्रकार के रथ बनाते हैं जो पृथिवी और आकाश दोनों स्थानों में अच्छे प्रकार चलते हैं । अब आप विचार सकते हैं कि खाती अपने पिता माता को कैसे युवा बनाते हैं । परम परम वृद्ध होने पर भी युवा पुरुष के समान पृथिवी आकाश में खाती के पिता माता रथ पर चढ़ विचरण करते हैं । प्रत्युत युवा पुरुष से भी बढ़कर सर्वत्र भ्रमण करते हैं । यह केवल खाती विद्या की प्रशंसा दिखलाई गई है ।

'तक्षा का आश्चर्य्य कार्य्य और चमड़े से भी बनाना'

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गा मरिणीत धीतिभिः। अथा देवेष्व मृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥

हे तक्षाओ ! (एकम्+चमसम्) एक ही पानपात्र को (चतुर्वयम्) चार अवयव वाला (विचक्र) बनाओ। और जिसकी माता मर गई हो ऐसे वत्स (बच्चे) के लिए (धीतिभिः) अपनी बुद्धि से (गाम्+) नूतन गौमाता को (निः—अरिणीत) अच्छे प्रकार बनाओ। (अथ) तब (देवेषु) देवों में (अमृत-त्वम्+आनश) अमरत्व को लाभ करो (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी खातिओ! (श्रुष्टी) शीघ्र (वः) आपका (तत्+उक्थ्यम्) वह कर्म्म प्रशंसनीय होवे।

बर्तन बनाने की किसी विशेष रीति का वर्णन है कि वह पात्र देखने में एक प्रतीत हो परन्तु उसमें चार हों। अर्थात् एक ही बर्तन को जब चाहें तब दो तीन चार पाँच छः सात आठ नौ कार्य्य एक साथ ले सकें। और चाहें तो उससे एक ही कार्य्य लें। ऐसा वर्तन बनाओ॥ और चमड़े की माता ऐसी बनाओ कि मृतमातृक बालकों को यह प्रतीत न हो कि यह मेरी माता नहीं है। और उसी माता से उन बालकों को स्तन्यपान भी मिला करे। इत्यादि वस्तु बनाने की शिक्षा यहाँ पाई जाती है॥ यहाँ देखते हैं कि चमड़े का कार्य्य भी तक्षा के ही लिये कहा है।

'तक्षा की प्रशंसा'

वाज्यर्वा सऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः। स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवोयमाविषुः ॥ ६ ॥

(सः+वाजी+अर्वा) वही वेगवान् अश्व है (सः+वचस्यया+ऋषिः) वही स्तुतिसमन्वित ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानी है (सः शूरः+अस्ता) वही अस्त्र फेंकने वाला शूर है (पृतनासु+दुस्तरः) संग्राम भूमि में वही दुस्तर है (सः+रायस्पोषम्+धत्ते) वह धन सम्पत्ति रखता है (सः+सुवीर्य्यम्) वही सुवीर्य्य रखता है। (यम्) जिस पुरुष को (वाजाः) ज्ञानी (विभ्वान्) समर्थ और (ऋभवः) काटने में निपुण तक्षागण (आविषुः) रक्षा करते हैं।

वेद का एक ऐसा नियम देखा जाता है कि जो पुरुष जिस कर्म्म को करता है वह कर्म्म ही साक्षात् उसमें अध्यारोप किया जाता है। जैसे अग्नि से पाक और अस्त्र बनाता है। अतः अग्नि को तू पाचक है। तू अस्त्र बनाने वाला है। इत्यादि इसी प्रकार तक्षा उत्तम रथ आकाश पृथिवी पर बिना घोड़े के चलने वाला बनता है अतः तक्षाऽनुगृहीत पुरुष मानों साक्षात् घोड़ा ही है क्योंकि घोड़े के समान दौड़ता है इत्यादि।

'तक्षा के लिए धीर, कवि, और विपश्चित् शब्द'

श्रेष्ठं वऽ पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन। धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चित स्तान्त्र एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥

हे (वाजाः+ऋभवः) विज्ञानी तक्षाओ ! (वः) आपका (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (दर्शतम्) दर्शनीय (पेशः) रूप (अधि + धायि) सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस कारण (ःतोमः) यह हमारा स्तव है (तम् + जुजुष्टन) इसे सेविये। आप लोग (धीरासः) धीर (कवयः) कवि और (विपश्चितः) विपश्चित्=विद्वान् (हि+स्थः) प्रसिद्ध हैं (तान्+वः) उन प्रसिद्ध आप लोगों को (एना+ब्रह्मणा) इस वाणी से (आवेदयामसि) आवेदन करते हैं। निपुण तक्षा की प्रशंसा करनी चाहिये। उसके यश को बढ़ा चढ़ा कर गाना चाहिये जिससे कि वह उत्साहित हो नवीन कला कौशल और शिल्प विद्या निकाला करे। यह इससे उपदेश है।

एतं वां स्ताम मश्विनावकर्म्मा तक्षाम भृगवो न रथम् । न्यमृक्षाम योषणां न मर्य्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥ १० । ३९ । १४ ॥

(भृगवः+न+रथम) जैसे भृगुगण अर्थात् बुद्धिमान तक्षा-गण सुन्दर सुगठित रथ प्रस्तुत करते हैं तद्वत् (अश्विनौ) हे अश्विनौ राजन्! तथा राज्ञि! (वाम्) आप दोनों के निमित्त (एतम्+स्तोमम्) इस स्तोम को (अकर्म) बनाया है। (अतक्षाम) अच्छे प्रकार ग्रथित किया है और (मर्यं+न+योषणाम्) जैसे विवाह के समय जामाता को देने के हेतु कन्या को भूषणा-लंकृत करते हैं और जैसे (तनयम्+सुनूम्+न) वंशवृद्धि कर पुत्रको संस्कृत करते हैं तद्वत् (दधानाः) यज्ञ कर्म्म करते हुए हम लोग (नि+अमृक्षाम) आपके लिए यह स्तोम संस्कृत करते हैं उसे सुनें। सायण—'रथकारा भृगवः' भृगु का अर्थ रथकार करते हैं। इससे सिद्ध है कि बुद्धिमान् पुरुष का यह कार्य्य है।

'विद्वान् तक्षा को वाशी और किला वगैरह बनाना'

सतो नूनं कवयः संशिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्व मानशुः ॥
१० । ५३ १० ॥

(कवय + विद्वांसः) हे मेधावी विद्वानो ! (नूनम् + सतः) निश्चिन्त होकर वाशी नामक अस्त्र शस्त्रों को (संशिशीत) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करें (याभिःवाशीभिः) जिन वाशियों से आप लोग (अमृताय) अमृत के योग्य होवें (तक्षथ) उस प्रकार इस कार्य्य को सम्पादन करें हे विद्वानों ! (गुह्यानि + पदा) गुह्य विनाश स्थानों किला वगैरह को (कर्तन) बनाओ (येन) जिससे (देवासः) आर्य्य लोग (अमृतत्वम् + आनशुः) अमरत्व को प्राप्त होवें । सायण—संशिशीत = अत्यर्थं तीक्ष्णीकुरुत । सतः = सन्तः ।

यहाँ भी कवि और विद्वान् शब्द तक्षा के लिए आया है । और गुह्य भवन बनाना भी तक्षा ही का कर्तव्य देखते हैं उससे प्रतीत होता है कि जो मकान बनाने वाले स्थपति अर्थात् राज नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी पूर्व समय में तक्षा कहलाते थे ।

'तक्षा को लोहे का परशु और खाने पीने को बर्तन बनाना'

त्वष्टा माया वेदपसा मपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा। शिशीते नूनं परशुम् स्वायसं येन वृश्चा देशतो ब्रह्मणस्पतिः ॥ १० । ५३ । ६ ॥

यह (त्वष्टा) बढ़ई=खाती, तखान (१) (मायाः) पात्र निर्म्माण के विध कर्म्मों को (वेत्) जानता है। इसी हेतु (अपस्तमः) कर्म्म करने वालों में अति प्रशंसनीय है। और अपनी दूकानों पर (शन्तमा) अतिशम सुखकारी (देवपानानि) विद्वान् लोग जिसमें खा पी सकें ऐसे (पात्रा) विविध पात्रों को (बिभ्रत्) रखते हुए (नूनम्) निश्चिन्त होकर (परशुम्) 'परशु' नामक शस्त्र को (शिशीते) तीक्ष्ण कर रहा है। वह पात्र कैसा है (स्वायसम्) सु+आयस=सुन्दर लोहे से बना हुआ। (येन) जिस परशु से (एतशः+ब्रह्मणस्पतिः) यह मन्त्र-वित् याज्ञिक पुरुष (वृश्चात्) पात्रों को छेदते हैं। सायण= मायाः कर्म्माणि। शिशीते तीक्ष्णयति।

यहाँ तक्षा के अनेक कर्म्म देखते हैं। थाली, लोटा आदि देवपानपात्र अर्थात् खाने पीने के पात्र और कुल्हारी, कुद्दाल, कुठार, वाशी (वसूला) रुखान आदि परशु अर्थात् काटने के विविध लोह निर्मित वस्तुएँ बनाने की आज्ञा तक्षा को है। अतः लोहार, कसेरा आदि को भी तक्षा कह सकते हैं।

'तक्ष कर्तृक वस्त्र वयन'

त्वष्टा वासो व्यदधात् शुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्य्यामिव परि धत्तां प्रजया॥

अथर्व० १४। १। ५३॥

(शुभे+कम्) कल्याण के हेतु (बृहस्पतेः) आचार्य्य और (कवीनाम्) इस विद्या में निपुण विद्वानों की (प्रशिषा) उत्तम

(१) तक्षा तु वर्द्धकिस्त्वष्टा रथकारस्तु काष्ठतट्। तक्षा, वर्द्धकि, त्वष्टा, रथकार और काष्ठतट् ये पाँच नाम खाती के हैं।

शिक्षा से (त्वष्टा) खाती (वासः+व्यद्धात्) वस्त्र बनाता है। (तेन) उस त्वष्टृकृत वस्त्र से (सूर्य्याम्+इव) उषा के समान (इमाम्+नारीम्) इस परिणीत नारी को (सविता) पुत्रोत्पादक स्वामी और (भगः+च) सेवा करने वाले देवर ये दोनों (प्रजया) प्रजा=सन्तति सहित (परि+धत्ताम्) संवृत=अर्थात् ढाका करें।

भाव इसका यह है कि जैसे आज कल भी किसी किसी कारीगर की वस्तु सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है वैसे ही जिस तन्तुवाय के कपड़े अच्छे सुथर चिकने सुन्दर बनते हो यथाशक्ति यहाँ से लाकर पत्नी को कपड़ा देवें। इससे लाभ यह है कि उस विद्वान् परिश्रमी तन्तुवाय को लाभ पहुँचने से उसका उत्साह दिन-दिन द्विगुणित होता जायगा और भी उत्साह से विद्वानों की शिक्षा ग्रहण कर उस विद्या में तरक्की करता रहेगा इसी हेतु यहाँ 'बृहस्पति' और 'कवि' दो पद आपे हैं। और स्त्री जाति की शोभा भी बढ़ती है।

सविता=सूञ्=प्रसवे। स्वामी। भग=भज सेवायाम्। सेवा करने वाले देवर आदि। यहाँ वस्त्र उपलक्षणमात्र है प्रत्येक आवश्यकीय और प्रयोजनीय पदार्थ से स्त्री का सत्कार किया करें।

'शिशुक्रीडनक' (खेलौने)

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षु र्मनसा हरी।
शमीभिर्यज्ञ माशत। ऋ० १। २०। २॥

(ये) जो खाती (मनसा) मन से अर्थात् प्रीति से (इन्द्राय) क्रीड़ाशील बच्चों के लिए (वचोयुजा) वाणी युक्त

(हरी) दो घोड़े (शमीभिः) शमी नामक लकड़ियों से (ततक्षुः) बनाते हैं। वे खाती (यज्ञम् + आशत) यज्ञ में आवें।

वचोयुक् = वाणी से युक्त। घोड़े का खिलौना ऐसा बनावे कि जो ठीक घोड़े के समान हिन हिनावे। 'हरी' यह द्विवचन पद है। प्रायः गाड़ी में दो-दो घोड़े जोते जाते हैं। अतः द्विवचन है। जोड़े से तात्पर्य्य है। ऐसी-ऐसी जगह में 'इन्द्र' शब्दार्थ शिशु है "अस्मिन् + रमते" जो खिलौने में रत हो।

'पुनः पूर्वोक्त कर्मों की चर्चा'

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥३॥ युवाना पितरा पुनः सत्मन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥४॥ उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः ॥५॥

ऋ० १। २० ॥

उन्होंने राजा रानी के लिये सर्वतोगामी सुखकर रथ निर्माण किया है एवं क्षीर दोग्धी एक गौ बनाया है ॥३॥ जिनका विचार सत्य है जो ऋजु हैं ऐसे खातियों ने अपने माता-पिता को पुनः युवा बनाए ॥ ४ ॥ विज्ञानी त्वष्टा से निर्मित नूतन चमस चार बनाए ॥ ५ ॥ इत्यादि चर्चा १।२०; । १।१११ और ४।३६ इत्यादि सूक्तों में बराबर आती है। ऐसे-ऐसे विद्वान् खाती वंशजों का जब से भारत में निरादर होना आरम्भ हुआ। तब से ही सारी शिल्प विद्याएँ लुप्त हुई।

'कुम्भ (घड़ा) की चर्चा'

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।

शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः ॥
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ अथर्व० । १ । ६४ ॥

धन्वनी अर्थात् मरुदेशीय जल । अनूप्य अर्थात अनूपदेशोद्भव खनत्रिम अर्थात् कूपादिक का जल (जो खोदने से निकले) और नदी तड़ागादि से लाया हुआ कुम्भस्थजल और वर्षा सम्बन्धी जल । ये सब प्रकार के जल सुखदायक होवें ।

अनूपपिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ॥
अथर्थ० १८ । ३ । ६८ ॥

अपूप के समान मुख वाले घड़े जिनको विद्वान् लोग रखते हैं ।

चतुरः कुम्भां श्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णां उदकेन दध्ना ।
अथर्व० ४ । २४ । ७॥

दूध, दही और जल से पूर्ण चार कुम्भ (घड़े) चार भाग कर देता हूँ ।

'कूप की चर्चा'

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥
अथर्व० ५ । ३७ । ८ ॥

उन अज्ञानी जनों ने जिस मलिनता को कूप में स्थापित किया है जिसको श्मशान में गाड़ा है । या भवन में किया है । उन सबों को मैं साफ करता हूँ । अर्थात् कूप का जल बहुत साफ रखना चाहिये । उसमें कपड़े वगैरह धोना नहीं चाहिये । श्मशान को भी साफ रखना चाहिये । घर की सफाई तो आवश्यक है । पुनः—

कूप्याभ्यः स्वाहा। यजुः २२-२५ नमः कूप्याय चावट्यायच। यजु०१६।३८। इत्यादि अनेक स्थल में कूप की चर्चा आई है।

'चर्म की चर्चा'

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म्म चोपस्तृणीथन।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥
अ० १४। २। २२॥

जिस बल्बज को आप लोगों ने रक्खा है। और जिस चर्म्म को विछाया है उस पर सुसन्तति वाली कन्या जिसने पति प्राप्त किया है बैठा जाय।

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इम मग्निं सपर्य्यतु॥ २३॥

रोहित चर्म्म के ऊपर बाल्वज को विछाओ। उस पर बैठकर यह सुप्रजावती कन्या इस अग्नि को घृतादिक से सत्कार करे। अर्थात् हवन करे।

आरोह चर्म्मोप सीदाग्नि मेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा॥२४॥

हे नारि! इस चर्म्म पर आरोहण करो। अग्नि के निकट बैठो। यह अग्नि देव सब विघ्नों का नाश करता है।

'कम्बल की चर्चा'

संभले मलं सामयित्वा कम्बले दुरितं वयम्॥१४।२।६७॥

उत्तम कम्बल के मैल को साफ कर उस पर बैठें।

आसन्दी (कुर्सी) आदि की चर्चा॥

यदाऽऽसन्द्या ऊपधाने यद्वोपवासने कृतम्।

विवाहे कृत्यां यां चक्रु रास्नाने तां नि दध्मसि ॥१५।२।६५॥

आसन्दी (Cushion) उपधान (Chair) और उपवासन (Canopy) आदि में मैल हो तो विवाह के निमित्त इन सबों को जल में साफ करो।

सहस्र खंभों से युक्त अट्टालिका [भवन]

राजाना वनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।
२ । ४१ । ५ ॥

(राजानौ) राजा तथा अमात्य ये दोनों (अनभिद्रुहा) प्रजाओं से न द्रोह रखते हुए (ध्रुव) खूब मजबूत (उत्तमे) उत्तम (सहस्रस्थूणे) सहस्रों खंभ वाले (सदसि) सभा भवन में (आसाते) बैठते हैं। राजाच राजाच = राजानौ यह द्विवचन है। अमात्य की भी राजपदवी है। सहस्रस्थूण = स्थूण = स्तम्भ = खंभा। जिसमें सहस्रों खंभे हो उसे सहस्रस्थूण कहते हैं। आस उपवेशने। आस = बैठना।

'प्रस्तर निर्मित शत पुर'

शतमश्मन्मयोनां पुराभिद्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे।

(दिवः + दासाय) दिव् = द्यूतक्रीडा। दास = उपक्षयित्ता अर्थात् द्यूतादि व्यसन के निवारक और (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण प्रदायक (इन्द्रः) राजा शिष्यों को पढ़ाने वाले आचार्य्यों के लिये (अश्मन्मयीनाम् + पुरां शतम्) प्रस्तर निर्मित शतशः नगर (व्यास्यत्) बनवाकर देवें। जिसमें सुविधा से ब्रह्मचारी गण शिक्षा पा सके (व्यास्यत + वि + असु = क्षेपणे (दाश्वान् = दाश्‌ दाने) इस ऋचा का अर्थ पूर्व में किया है। देखिये। उप-

सर्ग से धातु का अर्थ परिवर्तित भी हो जाता है। यहाँ पर प्रस्तर निर्मित सैकड़ों पुरी का वर्णन है।

लोह निर्मित अनेक नगर

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भि रायसीभिर्नि पाहि। ७। ३। ७॥

अमित=बहुत। महत्=तेजोयुक्त। आयसी=लोहनिर्मित। अयस्=लोह अयस् से बना हुआ आयसम् (अग्ने) हे अग्रगामी सेनाध्यक्ष वा महेन्द्र! आप (आयसीभिः पूर्भिः) अनेक लोह निर्मित नगरों से (नः+नि+पाहि) हमारी रक्षा कीजिये। अर्थात् अनेक शहर लोहों के बनवाइये जिसमें शत्रु का डर किञ्चित् भी न रहे। और न वे नगर किसी प्रकार से भग्न हो सकें। अयस्=नाम सुवर्ण का भी है।

अधा महीन आयस्यनाधृष्टोनृपीतये।
पूर्भवा शतभुजिः॥ ७। १५। १४॥

(अध) अब हे अग्रगामी सेनापते। आप (अनाधृष्टः) अप्रधर्षणीय होकर (नः+नृपीतये) हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिये (मही) महती (शतभुजिः) शतगुणा (आयसी+पूः) लोह निर्मित पुरी के समान (भव) हूजिये।

'समुद्र यात्रा'

आज कल कतिपय अज्ञानी जन कहा करते हैं कि समुद्र यात्रा शास्त्र विहित नहीं है ऐसा कहकर देश में अन्धकार फैलाते हैं। और अज्ञानता का बीज बो कल्याण का घात करते हैं। मैं पूछता हूँ कि समुद्र-यात्रा क्यों नहीं करनी चाहिये। श्री रामचन्द्र समुद्र

में सेतु बाँधकर लङ्का गये थे। अनेक राजा सम्पूर्ण पृथिवी के सम्राट् हुए। समुद्र लंघन किये बिना सम्पूर्ण पृथिवी का विजय कैसे हो सकता है। सप्तद्वीपा वसुमती का राज्य कैसे करते थे। यदि कहो कि इसका जल खार होने से लोग मर जाते हैं तो यह कहना उचित नहीं। आज समुद्र में सैकड़ों जहाज चल रहे हैं। पानी को पृथिवी बना रक्खा है। वे लोग कैसे जीते हैं। ऐ मनुष्यों! परिश्रमी और शूर वीर बनो। समुद्र से मत डरो। यह तुम्हारा बड़ा धन है। यह तुम्हें लाखों को रोटी देगा। तुम्हें पुकार रहा है। आओ मुझसे धन लो। क्यों नहीं देखते हो। देखो वेद भी आज्ञा देते हैं। यथा—

तुग्रो ह भुज्यु मश्विनोदमेघे रयिन्न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥

१ । ११६ ३ ॥

तुग्र=उपद्रुत, हत। उग्र=व्यापारशील पुरुष। ह=निश्चय अश्वी=रात और दिन। उदमेघ=समुद्र। रयि=धन। न= जैसे। कः चित्=कोई। ममृतान्=मुमूर्षु=मरने वाला। अवाहाः=त्यागता है। अन्तरिक्षप्रुद्=जल के ऊपर-ऊपर चलने वाली। अपोदका=जिसमें जल प्रविष्ट नहीं हुआ है।

(तुग्रः+कश्चित्) रोगादिकों से उपद्रुत कोई (ममृवान्) मुमूर्षु पुरुष (रयिम्+न) जैसे धन त्यागता है वैसे ही (तुग्रः) अन्यान्य राजाओं से उपद्रुत कोई राजा (ह) निश्चय कर (भुज्युम्) पालन में समर्थ अपने पुत्र वा सेनाध्यक्ष को विजयार्थ (उदमेघे) समुद्र में (अवाहाः) त्यागता है अर्थात् समुद्र की यात्रा से उन दुष्टों को दण्ड देने के लिए भेजता है। (तम्) उस सेनाध्यक्ष को सेना सहित (अश्विनौ) रात दिन अर्थात् रात

दिन कार्य्य करने वाले मल्लाह लोग (नौभिः+उदथु) सहस्रों नौकाओं से पहुँचाते हैं। नौकाएँ कैसी हैं (आत्मन्वतीभिः) आत्मवान् अर्थात् अतिप्रयत्न शील पुरुषों से युक्त। पुनः (अन्तरिक्ष प्रुद्भिः) अतिस्वच्छ होने के कारण जल के ऊपर-ऊपर चलने वाली। और (अपोदकाभिः) अच्छी बनावट होने के कारण जिसके भीतर जल नहीं जा सकता है! ऐसी। अश्विनौ = रात दिन (निरुक्त ६।१) जैसे 'मञ्च चिल्लाता है' कहने से मञ्चस्थ पुरुष का ग्रहण होता है। वैसे ही रात दिन से रात दिन काम करने वाले पुरुषों का ग्रहण है। (अवाहाः) ओहाक् त्यागे। ममृवान् मृङ् प्राणत्यागे अन्तरिक्षप्रुत् = प्रुङ्गतौ।

तिस्रः पक्षस्त्रिरहाऽतिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहतुः पतङ्गैः। समुद्रस्य धन्वनार्द्रस्य पारे त्रिभीरथैः शतपद्भि षडश्वैः॥
१। ११६। ४॥

(तिस्रः+पक्षः) तीन पक्ष (त्रिः+अह) तीन दिन में (अतिव्रजद्भिः) अत्यन्त गमनशील (पतङ्गैः) नौकाओं से (नासत्या) रात दिन परिश्रमी कैवर्तगण (भुज्युम्+ऊहतुः) जगत्पालक सेनाध्यक्ष को तीर पर ले जाते हैं। और वहाँ से (शतपद्भिः) सौ पैर वाले अर्थात् शतचक्रयुक्त (षडश्वैः) छः घोड़ों से संयुक्त (त्रिभिः+रथैः) तीन रथों से (आर्द्रस्य+समुद्रस्य) आर्द्र समुद्र के (धन्वन्+पारे) जल वर्जित पार में पहुँचाते हैं।

अनारम्भणे तदवीरयेथा मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥ ५॥

हे (अश्विनौ) रात दिन परिश्रम शील पुरुषों ? आप लोगों

ने (समुद्रे) समुद्र में (तत्+अवीरयेथाम्) उस कार्य्य को बड़ी वीरता के साथ किया है अतः आप सब धन्यवादार्थ हैं। समुद्र कैसा है (अनारम्भणे) आलम्बन रहित (अनास्थाने) आस्थान=रहने की जगह, उससे शून्य पुनः (अग्रभणे) हाथ से ग्रहण करने के लिए वृक्षादि शाखा से भी रहित। कौन वह कर्म्म है सो कहते हैं। (यत्) जो (शतारित्राम्) सैकड़ों अरित्रों से युक्त (नावम्+आतस्थिवांसम्) नौका के ऊपर अपनी सेना सहित स्थिर पूर्वक बैठे हुए (भुज्युम्) सेनाध्यक्ष को (अस्तम्) अपने गृह (ऊहथुः) आपने पहुँचाया। वह प्रशंसनीय कार्य्य आप लोगों का है।

आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्॥७।८८।३॥

यहाँ समुद्र के बीच की क्रीड़ा का वर्णन है। सामुद्रिक सहाज के साथ-साथ छोटी-छोटी नौकाएँ भी लगी रहती हैं। जब खेल करने वा मन बहलाने की इच्छा होती है तब उस नौका पर चढ़कर विविध जलक्रीड़ा करते हैं। एक विषय यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि जैसे 'देवदत्त यज्ञदत्त' काल्पनिक नाम आते हैं वैसे ही वर्णन के लिए वेद में यौगिक वरुण, इन्द्र, वसिष्ठ, अत्रि आदि नाम आते हैं। क्योंकि उदाहरण के साथ वर्णन करने से बोध होता है। कल्पना करो कि समुद्र में कई एक मनुष्यों की क्रीड़ा वर्णन करनी है। एक उसमें कहता है मुझे बड़ा आनन्द आया। दूसरा कहता है कि आओ मेरी नौका पर चढ़ो। तीसरा कहता है कि तू डूब रहा है तेरी मैं रक्षा करता हूँ इत्यादि। जैसा मनुष्य का स्वभाव है। वेद भी ठीक वैसा ही निरूपण कहता है। ऐसी जगह में नाम की कल्पना होती है।

यहाँ यह विषय नहीं कि मैं इसको विस्तार से दिखलाऊँ परन्तु आप यहाँ इतना समझें कि वसिष्ठ वरुणादि यौगिक काल्पनिक नाम से वेद में वर्णन है। इससे कोई इतिहास नहीं सिद्ध होता है। इसमें मीमांसा शास्त्र का प्रमाण देखिये।

कोई कहता है कि (यद्) जब मैं (वरुणश्च) और मेरा साथी वरुण (नावम्+आरुहाव) दोनों नौका पर आरूढ़ होते हैं और (यद्) जब (समुद्रम्) समुद्र के बीच (प्र+ईरयाव) नौका को ले जाते हैं और (यद्+अपां+अधि) जब पानी के ऊपर (स्नुभिः+चराव) चलती हुई अन्यान्य नौकाओं के साथ चलते हैं तब उस समय में (प्रेङ्खे) नौका रूप दोला के ऊपर तरङ्गों से ऊँचे नीचे जाते हुए हम दोनों (शुभे+कम्) सुखपूर्वक (प्र+ईङ्खयावहे) बड़ी-बड़ी लीला देखते हैं।

जिन्होंने सामुद्रिक यात्रा की है उन्हें मालूम है कि कैसे नौका ऊपर नीचे जाती है। हिंडोले से भी बढ़कर आनन्द प्रतीत होता है। बहुत वाक्य उद्धृत कर सुनाने का प्रयोजन नहीं। आपको मालूम हो गया कि वेद स्वयं समुद्र यात्रा के लिए आज्ञा देते फिर इसको कौन काट सकता है। अतः समुद्रयात्रा-निवारक अज्ञ हैं इसमें सन्देह नहीं। इसी हेतु उनकी बात अमाननीय है।

वाणिज्य की चर्चा

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत ब्रजं गोः। यया मनुर्विशिशिप्रम् जिगाय यया वणिग् वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ५ । ४५ । ६ ॥

(सखायः) हे समान-कर्म्म-साधक मित्रो! (एत) आओ। आकर (धियम्+कृणवाम) कर्म्म, व्यापार, उद्यम, करें (या+

माता) जो उद्योग माता है। अर्थात् माता के समान सुख पहुँ-चाने वाला है। (यया+मनुः) जिस धी से मनन शील पुरुष (विशिशिप्रम्) हनुरहित शत्रु को (जिगाय) जीतते हैं और (यया+बङ्कुः+वणिक्) जिससे अभिलाषी उत्कण्ठावान् वणिक्=वनिया (पुरीषम्) उदक (आप) प्राप्त करते हैं। कौन कर्म्म वा उद्यम करें सो कहते हैं। (गोः+व्रजम्) गौ के निमित्त गोष्ठ (अप+ऋणुत) घेरें।

धी=अपः। अप्नः। दंसः। वेषः। वेपः। विष्ट्वी व्रत। कर्वर..................धी। शची। शमी, शिमी, शक्ति, शिल्प इत्यादि २६ नाम कर्म्म के हैं निघण्टु २। १। अतः वेदों में 'धी' शब्दार्थ प्रायः 'कर्म्म' होता है। पुरीष=अर्णाः। क्षोदः। क्षद्म.... ....घृत, मधु, पुरीष आदि एक शत नाम जल के हैं निघण्टु १। १२। सायण भी 'पुरीषं पूरक मुदकम्' जल ही अर्थ करते हैं। "वणिक उदक प्राप्त करता है" इसका भाव यह है कि अपने उद्योग से पृथिवी के अभ्यन्तर से खोदकर पानी निकालता है अथवा जहाँ-जहाँ नदी वा समुद्र है वहाँ-वहाँ जाकर अपने विक्रेय वस्तु को इधर-उधर भेजता है। इत्यादि। 'गौप्रधान धन' है अतः इसकी प्रशंसा की गई है।

वाणिज्य के निमित्त राजरक्षा।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्। कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभि रू षु ऊतिभि रश्विनाऽऽगतम्॥ १। ११२। ११॥

(अश्विना) हे राजन् और सेनाध्यक्ष! आप दोनों (सुदानू) प्रत्येक प्रकार के सहायता रूप दान देने वाले हैं आप दोनों ने

(याभिः) जिन विविध रक्षाओं से (दीर्घश्रव से) दिग्दिगन्त व्याप्त यशस्वी (औशिजाय+वणिजे) इच्छा पुत्र वणिक् के लिये। (मधुकोशः+अक्षरत्) मधुकोश बरसाया है। (याभिः) जिनसे (स्तोतारम्+कक्षीवन्तम्) स्तुति करने वाले कक्षीवान् अर्थात् 'सार्थ' को (आवतम्) रक्षा की है (ताभिः+ऊ+सु) उसी रक्षाओं से (आगतम्) मेरे निकट भी आवें।

औशिज='वश' कांतौ। इच्छार्थक 'वश' धातु से 'उशिक्' बनता है। अर्थात् इच्छा। उशिजः पुत्र औशिजः। इच्छापुत्र को 'औशिज' कहते हैं। जो वणिक वास्तव में इच्छापुत्र है उसका कोश (खजाना) निःसन्देह मधुमय रहता है। कक्षी-वान्=जो एक प्रयोजन के लिए मिल-मिल कर व्यापार करते हैं उन्हें 'कक्षीवान्' वा 'सार्थ' कहते हैं। राजा और सेनाध्यक्ष के उद्योग से प्रजाओं की परमवृद्धि होती रहती है। वैश्यों के लिये अनेक स्थल में कहा गया है कि ये लोग कई मनुष्य मिल कर वाणिज्य करें। आगे वैश्य प्रकरण में सूचित करूँगा। इसी हेतु यहाँ 'कक्षीवान्' शब्द का प्रयोग है। शोक की बात यह है कि आजकल के भाष्यकारों ने समस्त वैदिक मन्त्रों को केवल याज्ञिक कर्म्म में लगाकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।

मल्लाह का पेशा।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥
१०।५३।८॥

सखायः=हे मित्रो! अश्मन्वती+रीयये=नदी चल रही है। संरभध्वम्=कार्य्य आरम्भ करो। उत्तिष्ठत=उठो। प्रतरत=

नदी में तैरो। अत्र=इस नदी में ये+अशेवाः=जो असुखकारी पदार्थ। असन्=हैं। उन्हें। जहाम=छोड़ दें और जो। शिवान्+वाजान्=जो सुखकारी पदार्थ हैं उन्हें लाने के लिये। वयम्+अभि+उत्तरेम। हम सब मिलकर चारों तरफ पार उतरें। सायण=रीयते गच्छति। री गतिरेपणयोः। अशेवाः शेव-मिति सुखनाम ये असुखभूताः। अश्मन्वती=नदी।

दिव्य नौका की चर्चा।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्म्माण मदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥

यजु० २१। ६॥

हम लोग (स्वस्तये) कल्याणार्थ (दैवीम्+नावम्) दिव्य नौका पर (आ रुहेम) चढ़ें। कैसी नौका है (सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार से रक्षा करने हारी (पृथिवीम्) बहुत विशाल (द्याम्) जिसमें बहुत प्रकाश और अवकाश=जगह है (अनेह-सम्) जिसमें किसी प्रकार का खतरा नहीं है (सुशर्म्माणम्) जिसके अभ्यन्तर मकान बने हुए हैं। (अदितिम्) अखण्यनीय (सुप्रणीतिम्) सुन्दर चलने वाली (स्वरित्राम्) अच्छी डांड़ों (चप्पे) से युक्त (अनागसम्) दोष रहित (अस्रवन्तीम्) छिद्र रहित। ऐसी नौका है। इस हेतु यह दैवी है। और इस पर चढ़ कर यदि व्यापार के लिये हम लोग प्रस्थान करें तो टूटने डूबने आदि का भय नहीं हो सकता।

सुत्रामा=सुष्ठुत्रायते रक्षति सुत्रामा। सुशर्म्मा=शर्म्मा=गृह। स्वरित्र=सु+अरित्र=डांड़। पुनः—

शतारित्रा = १०० डांड़ [चप्पा] युक्त नौका ।

सुनाव मारुहेयमस्रवंती मनागसम् ।
शतारित्रां स्वस्तये ॥ यजुः । २१ । ७ ॥

मैं (सु+नावम्) सुन्दर नौका पर (आ+रुहेयम्) चढ़ूँ । कैसी नौका है (अस्रवन्ती) छिद्र रहित (अनागसम्) दोष रहित (शतारित्राम्) १०० शत संख्यक अरित्र अर्थात् डांड़ों= चप्पों से युक्त । किसलिये (स्वस्तये) व्यापारादि कल्याण साधन के लिये ॥ ७ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवा कुष्ठ मबन्धत ॥
अथर्व० ५ । ४ । ४ ॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययी रासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥

हिरण्य नाम सोने और लोहे दोनों का है । 'कुष्ठ' नाम एक जड़ी का है । उसे कुट वा कुटकी कहते हैं यह बहुत लाभदायद जड़ी (Plant) है । इसकी चर्चा अथर्व वेद में अधिक है । समुद्र में हिरण्यबन्धनयुक्त और हिरण्यरचित नौका जा रही हैं । अथवा यह विमान का वर्णन है । आकाश में सुवर्ण रचित नौका रूप विमान जा रहा है । जिसके ऊपर देव अर्थात् वैद्यगण अमृत का पुष्प कुष्ठ नामक औषध लाते हैं ॥४॥

जिन नौकाओं में मार्ग भी हिरण्य रचित है । अरित्र डांड़

(Oars) भी हिरण्यमय है नौकाएँ (Ship) भी सुवर्ण मय है। जिनसे कुष्ठ को लाते हैं। (१)

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौ रिव बन्धनात् ।

अथर्व० ३।६।७॥

बन्धन रहित नौका के समान प्रवाह के ऊपर-ऊपर वे तैरें।

इस प्रकार 'नाविक' का भी व्यवसाय बहुत देखते हैं। आज कल नौका चलाने वाले 'कैवर्त' 'मल्लाह' धीवर वगैरह भी निकृष्ट माने जाते हैं। ये लोग नदियों से मछली बहुधा निकाला करते हैं। अतः इनको 'मछुआ' भी कहते हैं। विहार बंगाल में ये अधिक हैं। इसी नौका के ऊपर पूर्व समय वाणिज्य निर्भर था अब भी है। आज भी जहाज के ऊपर सहस्रों पदार्थ एक द्वीप से

---

(१) नोट—कुष्ठ औषध का वर्णन इस प्रकार अथर्ववेद में है।

यो गिरिष्व जायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठे हि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरपि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥ २ ॥
उदङ्जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयते जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि विभेजिरे ॥ ३ ॥

जो 'कुष्ठ' नाम की जड़ी पर्वतों पर होती है। सब पौधे में जो अति बलवान् होती है। जो ज्वर नाशक है। हिममय प्रदेश के ऊपर वा परे पर्वत के ऊपर होती है। जो इसको ज्वर नाशक जानते हैं वे धन के लिये बेचते हैं। जो प्रायः हिमप्रदेश के उत्तर भाग में हुआ करती है। जो प्राची दिशा के लोग के निकट प्रापित होती है। इसके लोग अनेक गुण गाते हैं। इत्यादि अथर्ववेद में इस महौषधि का वर्णन है। कुष्ठ = a medicinal plont, costus speciosus or aradicus,

दूसरे द्वीप में जाते हैं। प्रथम यह व्यवसाय भी आर्य्यों के हाथ में था तब तक उसकी बड़ी उन्नति भी रही। १०० सौ-सौ जिसमें डांड़ हों। जो लोहे और सोने से बनाई जाती हों। और जब विलक्षण-विलक्षण दैवी नौकाएँ रचित हों। जब तक लोगों में पूर्णतया इसकी चाह न हो और इससे अन्यन्त लाभ न होता हो तब तक सुवर्ण आदिक नौकएँ नहीं बन सकती हैं। और न वेद में ऐसी आज्ञा ही हो सकती है॥ परन्तु जब इस व्यवसाय से मुख मोड़ और गँवार अज्ञानी के हाथ में दे यहाँ के लोग इससे घृणा करने लगे तब ही जानो इनका शिर फूटा और ये भिखमंगे हुए। कैसी अज्ञानता छा गई है कि प्रत्येक व्यवसायात्मिका लक्ष्मी को लात मारकर इन्होंने देश से निकाला।

मनुष्यों! पुनः वैदिक आज्ञा पर चलो और उसी उत्साह से सुवर्णमयी नौका बनाओ।

नापित (बारबर) का व्यवसाय

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः॥ अथर्व० ८।२।१९॥

हे नापित! (यत) जब (वप्ता) तू केशों के छेदन करने वाले होकर (मर्चयता) व्यापार वाली (सुतेजसा) शोभनतेजो युक्त (क्षुरेण) क्षुरी से (केशश्मश्रु) शिर और मुख के रोमों को (वपसि) काटता है उस समय (मुखम्+शुभम्) मुख को शुभ बना (नः+आयुः+मा+प्र मोषीः) हमारे आयु का नष्ट मत कर। सायण=मर्चयता व्यापारयता।

स्वर्णकार और मालाकार का व्यवसाय

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः।

त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो ॥
व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः । ८ । ४७ । १५ ॥

(दिवः+दुहितः) सूर्य्य की कन्या के समान अर्थात् उषा के समान सबको सुख पहुँचाने वाली हे युवती ब्रह्मचारिणी (निष्कम्+वा+कृणवते) कनक आदि धातु के निष्क अर्थात् कण्ठ भूषण बनाने वाला स्वर्णकार (वा+घ+स्रजम्) और माला बनाने वाले माली के निमित्त जो आपने (दुःस्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्न देखा है अर्थात् जो आप उससे विवाह करना चाहती हैं (सर्वम्) इस सब विषय को (आप्त्ये+त्रिते) तीन आप्त पुरुषों से युक्त सभा में निर्णयार्थ (परि+दद्मसि) पेश करता हूँ (वः) आप सभाध्यक्षों की (ऊतयः) रक्षाएँ (अनेहसः) निष्पाप होवे, निश्चय ही निष्पाप होवे ।

'लोहकार का व्यवसाय और भस्त्रायन्त्र'

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः । यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरि यथा ॥
५ । ९ । ५ ॥

(अध+स्म) और (यस्य+अर्चयः) जिस अग्नि की ज्वाला (धूमिनः-सम्यक्+संयन्ति) धूम युक्त हो सर्वत्र विस्तृत होती है । इस प्रकार सर्वत्र फैलकर (यद्+ईम्+त्रितः) जब तीनों स्थान में व्याप्त हो जाती है तब (दिवि+उप+धमति) आकाश में जाकर बहुत अपने को बढ़ाती है । इसमें उपमा देते हैं (ध्माता+इव) जैसे कर्म्मार=लोहकार भस्त्राऽऽदि यन्त्र से (उप+धमति) अग्नि को धौंककर बढ़ाता है । और (यथा) जैसे (ध्मातारि) ध्माता=लोहकार के निकट ध्मायमान होने पर अग्नि

(शिशीते) अपने को स्वयं तीक्ष्ण करता है। यन्ति इण=गतौ। धमति=ध्माशब्दाग्निसंयोगयोः। शिशीते शीतनूकरणे।

'एक ही मन्त्र में अनेक धातुओं के नाम'

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्चमेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

अजुः २८। १३॥

हे विद्वानों! इस प्रकार आप देखते हैं कि मनुष्य के सुखकारी सब ही व्यवसाय की आज्ञा वेद में पाई जाती है। सैकड़ों आयुध अस्त्र-शस्त्र सैकड़ों खाने-पीने के पात्र इत्यादि प्रयोजनीय सब ही पदार्थ वेद में पाये जाते हैं। मुझे यहाँ केवल आप लोगों को यह सूचित करना है कि जो लोग यह कहते हैं कि वैदिक समय में इतना झंझट नहीं था वेद तो केवल यज्ञ ही बतलाता है इस हेतु जाति-पाँति का उस समय बखेड़ा नहीं था वेद का इससे क्या प्रयोजन इत्यादि। परन्तु आप देखते हैं कि मनुष्य जीवन के हेतु सब व्यवसाय की चर्चा है। किसी व्यवसायी की निन्दा नहीं। प्रत्युत बड़ी प्रशंसा है। प्रत्येक व्यवसाय-कर्त्रिसाध्य विद्वत्कर्तव्य कहा गया है। और इन कामों के करने वाले बहुत उच्च समझे जाते थे। अतः वैसे कहने वालों की भूल है आगे अब कुछ पोष्य पशु के बारे में भी कथ्य है। सो सुनिये।

अथ पोष्य पशु वर्णन प्रकरण ।

वेद में गोपशु की प्रशंसा ।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे । प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥

६ । २८ । १ ॥

(गावः+आ+अग्मन्) मेरे गृह में गायें आवें । (उत+भद्रम्+अक्रन्) और शुभ करें (गोष्ठे+सीदन्तु) गोष्ठ में बैठें (अस्मे+रणयन्तु) हमारे बीच रत होवें अथवा अपने दुग्ध से हमें वीर बनावें । (इह) यहाँ (पुरुरूपाः+प्रजावतीः+स्युः) विविध वर्णों की गायें प्रजापती होवें (इन्द्राय) यज्ञ के लिये (पूर्वीः+उषसः) पूर्व उषा में अर्थात् प्रातःकाल (दुहानाः) दूध देने वाली होवें ।

गावो भगो गाव इन्द्रं अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः । इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसाचिदिंद्रम् । ५ ॥

(मे) मेरी (गावः) गौ ही (भगः) धन है (गावः इन्द्रः+अच्छान्) गौही ऐश्वर्य्य वा इन्द्र है (प्रथमस्य+सोमस्य+भक्षः+गावः) प्रथम सोमरस का भक्ष गौ ही है । अर्थात् सोमरस में प्रथम घृत ही मिलाया जाता है । (जनासः) हे मनुष्यों ! (याः

गावः) ये जो गौवें ही (इन्द्रः) इन्द्र हैं। (इन्द्रम् चित्) इसी इन्द्र को (हृदा+मनसा+इत्) श्रद्धायुक्त मन से (इच्छामि) इच्छा करता हूँ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्। भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु। ३ ॥

(यूयं गावः+मेदयथा) गोवो ! आप वृद्धि करें। (कृशम्+चित्) कृशभी (अश्रीरम्+चित्) अमंगल भी शरीर को (सुप्रतीकम्+कृणुथ) दृढ़ाङ्ग बनावें। दूध के कृश स्थूल और कुरूप सुन्दर हो जाता है (गृहं०) गृह को भद्र करें (भद्रवाचः) हे मङ्गल ध्वनि गावो (वः×बृहत×वयः) तुम्हारा महान् यश (सभासु+उच्यते) सभा में वर्णित होता है॥ ६ ॥ यह सम्पूर्ण सूक्त गोवर्णन परक है। देखिये।

गौ पशु चारण

आ निवर्त निवर्तय पुनर्नइन्द्र गा देहि।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ १० । १९ । ६ ।

हे भगवन् ! आप मेरे गृह में आवें। प्रत्येक कार्य में सहायता करें। बारम्बार गायें देवें। जीवनप्रद गौवों से विविध भोगों को आपकी कृपा से भोगें।

ऋग्वेद १० दशम मण्डम ऊनविंश १९ सूक्त सम्पूर्ण गौ के विषय में वर्णित है। यहाँ गो-चारणादि का वर्णन है पुनः

अवध्या गौ।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गा मनागा मदितिं वधिष्ट। ८। १०१। १५॥

स्वयं भगवान् कहते हैं। (चिकितुषे+जनाय+प्रवोचम्) चेतन पुरुष से अर्थात् समझदार जन से मैं कहता हूँ कि (अनागाम्) निरपराधी (आदितिम्) अहिंसनीय पृथिवी के सदृश (गाम्) गौ को (मा+वधिष्ट) मत हनन करो।

इस प्रकार देखते हैं कि गोधन की अतिप्रशंसा है। यजमान का नाम ही 'गोपति' है। यजुर्वेद की प्रथम ही कण्डिका में गौ की प्रशंसा आई है। और अघ्न्या कहा है। 'गोत्र' यह शब्द ही सूचित करता है कि ऋषि गोरक्षा पर बहुत ही तत्पर थे।

ऋषि कर्तृक गो-पोषण।

प्राचीन काल में ऋषि, आचार्य, अध्यापक, गुरु प्रभृति सबही गौवों को अपने-अपने गृह पर पालन पोषण करते थे इसकी चर्चा सर्वत्र पाई जाती है।

छान्दोग्योपनिषद् चतुर्थ प्रपाठक में लिखा है कि हारिद्रुमत गोतम ऋषि को ४०० सौ तो दुर्बल गौएँ थीं। और मोटी ताजी कितनी थीं उसका कुछ हिसाब ही नहीं और उनके शिष्य सत्यकाम जाबाल उन कृशा गौवों को चराया करते थे। (१) जानश्रुति पौत्रायण ने १०० एक सहस्र गौवें विद्याप्राप्ति के हेतु रैक्व मुनि को दी थी। (२) बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है वैदेह जनक महाराज ने ब्रह्मिष्ठ पुरुष को देने के लिये सुवर्णादि से सुभूषित कर १००० एक सहस्र गौवें एकट्ठी की थीं (३) और कई स्थल

---

(१) तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निरा कृत्योवाच। इमाः सौम्याऽनुव्रज। छान्दोग्य० ४। ३॥

(२) इदं सहस्रं गवाम्॥ छान्दोग्य ४। ३॥

(३) स ह गवां सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः। बृहदारण्यक उ० ३। १।

में याज्ञवल्क्य ऋषि से जनक महाराज ने कहा है कि मैं आप को एक १००० सहस्र गौएँ देता हूँ (४) इत्यादि गौवों की चर्चा ब्राह्मण और उपनिषदों में बहुत आती है।

'गौ के कारण वसिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध'

बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ५२ अध्याय से कथा चलती है कि वसिष्ठ के आश्रम में एक समय विश्वामित्र आए। यथा योग्य सत्कृत होने पर चलने के समय विश्वामित्र महाराज ने ऋषि वसिष्ठ से शवला गौ माँगी और कहा कि इसके बदले में आपको बहुत से हाथी घोड़े रथ आदि पदार्थ देता हूँ। इस रत्न को मुझे दीजिये। वसिष्ठ ने नहीं दी। इसी कारण परस्पर महा-युद्ध हुआ (१) अन्यान्य पुराणों में भी इसका वर्णन आता है।

महाभारत आदिपर्व ३ तृतीयाध्याय में लिखा है कि (२) आयोद-धम्यौ आचार्य्य के निकट बहुत गौएँ थीं। अपने एक शिष्य उपमन्यु को कहा कि हे उपमन्यो ! तुम गौवों को चराया करो। वह वैसा ही करने लगा। एक दिन उस शिष्य को मोटा ताज़ा देख कहा कि हे उपमन्यो ! तुम अपनी जीविका कैसे करते तुम बड़े पीवान् (मोटे) दीखते हो। भिक्षाकर मैं भोजन करता हूँ। शिष्य ने कहा। मुझे बिना दिए हुए भिक्षा से जीविका कैसे

---

(४) सोऽहं भगवते सहस्रं ददामि । ४ । २ ॥

(१) गवां शतसहस्रेण दीयतां शवला मम । रत्नं हि भगवन्नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः । ६ । ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश । हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजाम् । १८ । इत्यादि बाल-काण्ड ॥ ५३ ॥

तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति । इत्यादि ।

करते हो। अब से ऐसा मत करना (गुरु ने कहा) तब उसने भिक्षा माँग गुरु के सामने रख दी। गुरु ने सब ही भिक्षा रख ली। पुनः उसे पीवान् देख गुरु ने कहा कि तुम फिर भी पूर्ववत् ही स्थूल हो, कैसे खाते पीते हो। उसने कहा कि आपको निवेदन करके मैं पुनः भिक्षा माँग लेता हूँ। गुरु ने उसको भी निषेध किया। इस प्रकार यहाँ गुरु और शिष्य की भक्ति का वर्णन है। इत्यादि कथा से सिद्ध है कि पहले ऋषि आदिक भी गाएँ रखते थे।

महाभारत विराटपर्व में गोहरण कथा सूचित करती है कि राजा भी बहुत गौयें रखते थे और राजपुत्र भी कभी-कभी गोचारण किया करते थे। गुरु वसिष्ठ की गौवों को सूर्य्यवंशी राजपुत्र चराया करते थे यह वार्ता श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध में आती है (१) श्रीकृष्णजी की कथा को सब जानते ही हैं।

इस वर्णन से मेरा अभिप्राय यह है कि जो लोग कहते हैं कि गोपालन केवल वैश्यों का कर्म्म है। सो सर्वथा वेद-शास्त्र-विरुद्ध है। और आजकल गोपालक अहीर जाति को लोगों ने इसी हेतु 'शूद्र' बना रखा है यह भी शास्त्र विरुद्ध वार्ता है। गो-पालक आभीर 'द्विज' हैं और इनके यज्ञोपवीत आदि कर्म्म होने चाहिये। इति।

'गौ आदि पशुओं के लिए प्रार्थना'

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुखम्मेषाय मेष्यै॥ यजुः ३। ५९॥

एक ऋषि कहते हैं कि हे परमात्मन्! आप (भेषजम्+असि) सर्वोपद्रव निवारक औषध के समान हैं इस हेतु हमारे

(१) पृषध्रस्तु मनोः पुत्रः गोपालो गुरुणा कृतः।

(गवे+अश्वाय) और अश्व के लिए और (पुरुषाय) मनुष्य के लिए (भेषजम्) सर्वव्याधिनिवारक औषध देवें। (मेषाय+मेष्यै) मेष और मेषी=भेंड़, भेंड़ी के लिए (सुखम्) सुख देवें।

यह मन्त्र शिक्षा देता है कि सबको गौ, बैल, मेष और मेषी रखने चाहिये।

'घोड़े ऊँट आदि'

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासन मुष्ट्राणां विं शतिं शता।
दश श्या वीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥

ऋ० ८।४६।२२॥

षष्टिम्। सहस्रा। अश्वव्यस्त। अयुता। असनम्। उष्ट्राणाम्। विंशतिम्। शता। दश। श्यावीनाम्। शता। दश। त्रिअरुषीणाम्। दश। गवाम्। सहस्रा॥

कोई ऋषि कहते हैं कि मैंने (अश्वव्यस्य) अश्व सम्बन्त्री धन (षष्टिम्+सहस्रा+अयुता) ६०००० साठ सहस्र अयुत (असनम्) प्राप्त किये हैं। और (उष्ट्राणाम्+विशंतिम्+शता) २००० बीस सौ उष्ट्र (ऊँट) (श्यावीनाम्+दश-शता) कृष्णवर्ण १००० शदशत बड़वाएँ। (त्र्यरुषीनाम्+गवाम्+दश-सहस्रा) तीन स्थानों में श्वेत वर्ण वाली १००० दशशत गायें मुझे प्राप्त हैं॥

अर्थात् घोड़े ६००००। ऊँट २००००। बड़वाएँ १०००। और गायें १०००। इससे सिद्ध होता है कि घोड़े ऊँट और गायें बहुत रक्खें। और सब कोई रक्खें।

ऊँट की चर्चा

ता मेऽश्विना सनीनां विद्यातं नवानां यथा चिद् चैद्यः

कशुः । शतमुष्ट्राणां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ८।५।३७॥

(ता+अश्विनौ+मे) मेरे परिश्रमी रात दिन कार्य्य करने वाले पुत्र पौत्र भ्राता आदि जन (नवानाम्+सनीनाम्) नवीन धनों को (विद्यातम्) जाने=उपार्जन करें (यथा=चित्) जिस परिश्रम से हैं (चैद्यः+कशुः) हृदय व्यापी सर्व द्रष्टा ईश्वर (उष्ट्राणाम्+शतम्) एक सौ १०० ऊँट (ददत्) देवें और (गोनाम्+दश+सहस्रा) दश सहस्र गौवें देवें ॥

गदर्भ प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना ।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः॥
ऋ० ८ । ५ । ३ ॥

अर्थ—हे सर्वेश्वर ! (गर्दभानाम्+शतम्) एक सौ गदहे (मे) मुझे आप ने दिये हैं (शतम्+ऊर्णावतीनाम्) प्रशस्त-लोम वाली एक सौ १०० मेषिएँ (भेड़ें) आप ने दी हैं (शतम्+दासान्) एक सौ १०० दास दिये हैं । (अति) इन सबों से बढ़-कर (स्रजः) मालाएँ अर्थात् अनेक भोग वस्तुयें दी हैं ।

'महाभारत और गदहे'

चत्वारस्त्वां गर्दभाः संवहन्तु श्रेष्ठाश्वतर्य्यो हरयो वातरंहाः
तैस्त्वं याहि क्षत्रियस्यैष वाहो ममैव वाम्यौ न तवैतौ हि विद्धि
महाभारत वनपर्व अ० ॥ ९७ । ९३ ॥

राजा शल और वामदेव का सम्बाद है । राजा वामदेव से कहते हैं कि हे वामदेव ! आपके रथ में चार गदहे, अच्छी श्रेष्ठ खच्चरियें और वात के समान चलने वाले घोड़े सदा वर्त-

मान रहैं। इनसे युक्त होकर आप जाँय। ये दोनों घोड़ियें मेरी वाहन रहें।

अनुशासन पर्व महाभारत मातङ्ग की कथा में आता है कि मातङ्ग एक ऋषि के पुत्र थे। इनकी गाड़ी में गदहे जोते जाते थे। इससे सिद्ध होता है कि पिछले समय में भी गदहे को अपवित्र नहीं मानते थे।

रासभ-वाहन

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू।
मध्वः सोमस्य पीतये॥ ८। ८५ ७॥

(वृषण्वसू) धन देने वाले (अश्विनौ) हे राजा और रानो! आप दोनों (वीड्वङ्गे) दृढ़ाङ्ग (रथे) रथ में (रासभम्) गदहे को (युञ्जाथाम्) जोतैं और जोतकर यज्ञों में (मध्वः+सोमस्य) मधुर सोमरस (पीतये) पीने के लिए प्रस्थान करें। अथवा मधु उत्तम पदार्थ की रक्षा के लिए प्रस्थान करें। निरुक्त में राजा और राज्ञी का 'अश्वी' कहा है। यदि अश्विनी देवता ही आप मानते हैं तब भी, जब देवता ही अपने रथ में गदहे जोतते हैं तो मनुष्य किस गणना में है कि वह गदहे से घृणा करे। अब इससे बढ़ कर कौन प्रमाण हो सकता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र और ऊँट गदहे।

उष्ट्रमारोक्ष्यन् अभिमन्त्रयते "त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्टृदेवत्यः स्वस्ति मां संपारयेति" रासभ मारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽसि शूद्रजन्माग्नेयो वैद्विरेताः स्वस्ति मा संपारयेति॥

(पारस्कर गृह्यसूत्र तृतीय काण्ड)

ऊँट पर जब चढ़ने लगे तब यह (त्वाष्ट्रोसि) इत्यादि मन्त्र पढ़े। और जब गदहे पर चढ़ने लगे तब "शूद्रोऽसि" इत्यादि पढ़े। यहाँ रासभ पद का अर्थ "खच्चर" भी कहते हैं।

खच्चर की चर्चा।

पूर्व समय में राजा महाराज और ऋषि मुनि आदि भी खचरों की सवारी किया करते थे। इसकी चर्चा भी आती है। यथा :—

रयिक्क इदं सहस्रं गवाम्। अयं निष्कः। अयम् अश्वतरीरथः! इयं जाया। अयं ग्रामः॥ छा० उ०। ४। २॥

जानश्रुति पौत्रायण 'रयिक्क' ऋषि से कहते हैं कि ऋषे। आपके लिए यह १००० गौएँ हैं। यह कण्ठ भूषण। यह खच्चर संयुक्त रथ है, यह जाया। यह ग्राम है ये सब लीजिये और मुझे ब्रह्मज्ञान सिखलावें॥ इति॥

मैं नहीं कह सकता कि जब पूर्व समय में राजा और मुनि लोग खच्चर बरताव में रखते थे तो इसको पिछले समय में क्यों बुरा मानने लगे। गदहे का रेंकना (चिल्लाहट) निःसन्देह कुछ कर्कश सुनने में लगता है और इसका रूप भी कुरूप है। इसी हेतु पिछले समय में इसका प्रयोग करना लोगों ने छोड़ दिया हो और इससे काम लेने वाले धोबी अथवा कुम्हार को नीच समझने लगे हों। परन्तु मैं पूछता हूँ जब वेद इसके लिये घृणा प्रकट नहीं करता है और ऊपर के वाक्य से सिद्ध है कि धनाढ्य पुरुष गदहे रखते तो किसकी शक्ति है कि इसको अपवित्र और इससे व्यवसाय करने वाले को नीच माने। पुनः मैं पूछता हूँ कि भला गदहे का रूप कुत्सित है अतः यह त्याज्य होवे। परन्तु अश्वतर क्यों कर त्याज्य हो सकता। यह देखने में भी सुन्दर और बड़े

काम का है आज कल भी राज दरबार में यह बहुत काम देता है। पुनः एक उपदिषद् का नाम ही श्वेताश्वरतर है। एक ऋषि भी श्वेताश्वरतर थे। अतः इससे घृणा की चर्चा नहीं हो सकती है। विहार बंगाल में धोबी गदहे को रखते हैं। परन्तु राजपुताना आदि स्थान में कुम्हार गदहों से काम करते हैं।

'चर्म की चर्चा'

शतं वेणून्छतं शुनः शतं चर्म्माणि म्लातानि। शतं ये बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुः शतम्॥

अर्थः—(शतम्+वेणून्) एक सौ बाँस अर्थात् अनेक प्रकार के गृह बनाने के लिये बाँस (शतम्+शुनः) सौ कुत्ते (शतम्+म्लातानि+चर्म्माणि) सौ उत्तम चर्म्म (शतम्+बल्बजस्तुकाः) सौ बल्ब से बने हुए पात्र और (चतुः शतम्+अरुषीणाम्) ४०० चार सौ घोड़ियाँ (मे) मुझे ईश्वर ने कृपाकर दिये हैं।

'चर्म्मरचित-वर्म्मधारी वीर'

यो मे हिरण्यसन्दृशो दशराज्ञोऽअमंहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्म्मम्ना अभितोजनाः॥

ऋ० ८।५।३८॥

अर्थः—कोई राजा कहता है कि (यः) जिस बलवान् सेनापति ने (हिरण्यसन्दृशः) सुवर्णतुल्य (दश+राज्ञः) दशो दिशाओं में वर्तमान् राजाओं को (मे) मेरे अधीन (अमंहत) किया है। निःसन्देह उस (चैद्यस्य) वीरपुत्र नायक की (कृष्टयः) सब प्रजाएँ (अधस्पदाः+इत्) नीचे वर्तमान हैं। और (अभितः) चारों तरफ वर्तमान जितने (जनाः) सिपाही आदि उसके

सहायक जन हैं। वे सदा (चर्म्मम्नाः) चर्म्म के अभ्यास करने वाले हैं। अर्थात् सदा चर्म्म रचित कवच धारण करने वाले हैं।

'संवाहक [बोझ ढोनेवाला] कुत्ते की चर्चा'

उचथ्ये वपुषि यः स्वरालुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदंनुतत्॥८।४६।२८॥

(वायो) हे वायुवत् सतत कार्य्य शील पुरुष! (घृतस्नाः) घृतवत् पिघलने वाला (यः स्वराट्) जो स्वयं विराजमान राजा है अर्थात् प्रजा के परिश्रम जानने वाला जो राजा है वह (उचथ्ये+वपुषि) परिश्रमी शरीर के निकट (अश्वेषितम्) अश्व से प्रेषित (रजेषितम्) गदहे से प्रेषित (शुना+ईषितम्) कुत्ते से प्रेषित करके (प्र+अज्म) धन भेजा करता है (तद्-इदम्+नु+तत्) वह यह सब धन है।

सायण=अश्वेषितं अश्वैः प्रापितम्। रजेषितम् रजःशब्दे-नोष्ट्रो गर्दभो वोच्यते तेनाप्यानीतम्।

भाव इसका यह है कि विज्ञानी राजा कर्म्मचारी प्रजा के परिश्रम देख यथा योग्य पुरस्कार दिया करे। जो शत्रुओं को परास्त करता है दुष्टों को संहार कर प्रजाओं में शान्ति फैलाया है अथवा अपनी विद्या द्वारा उपकार करता है उस पुरुष के निकट राजा घोड़े गदहे और कुत्ते आदि वाहन पर लादकर धन पहुँचाया करे। इससे सिद्ध है कि कुत्ते पर भी लदनी हो सकती है।

'मन्त्री आदि सहित गजस्कंधारूढ़ राजा'

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वी मनुप्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥

हे सेनाध्यक्ष ! आप (पाजाः+कृणुष्व) सेनादि बल को बढ़ाओ । यहाँ दृष्टान्त देते हैं (न) जैसे व्याध बन में । (पृथ्वीम्+प्रसितिम्) विशाल जाल को विस्तीर्ण करता है तत्समान आप भी सब प्रकार के बल को बढ़ावें । और (अवमान+राजा+इव+इभेन) जैसे अमात्य मन्त्री आदि से परिवेष्टित हाथी पर आरूढ़ होकर राजा चढ़ाई करता है । वैसे ही आप भी सेनादि से युक्त हो शत्रुओं पर आक्रमण करें और (तृष्वीम्) शीघ्र-गामिनी (प्रसितिम्) सेना के (अनुद्रुणानः) पीछे-पीछे गमन करते हुए अथवा क्षिप्रकारी सेनारूप जाल से शत्रुओं को मारते हुए । हे सेनाध्यक्ष ! (अस्ता+असि) आप अस्त्र-शस्त्र प्रहर्ता हैं । अतः (तपिष्ठैः) तापक आयुध से (रक्षस+विध्य) राक्षसों को विद्ध करो । पाज = बल (निघण्टु २-९) प्रसिति = जाल, प्रसितिः प्रसयनात्तन्तुर्वा जालं वा (निरुक्त ६-१२) षिञ् बन्धने । जिसमें अच्छी तरह से पक्षी बाँधे जायँ उसे 'प्रसिति' कहते हैं । पृथ्वी = विशाल । अवमान = अमगतौ भजने शब्दे च । अमन्ति भजन्ति स्वामिनः इति अमाःसेवकास्तेऽस्य सन्तीत्यमवान् (महीधरः) अमा राज्ञा सह वर्तत इत्यमोऽमात्यंः । तद्वान् । (सा०) इभ = गज, हाथी । तृष्वी = शीघ्र । द्रुणान = द्रूहिंसायां । इस मन्त्र को यास्काचार्य्य ने भी निरुक्त में दिया है ।

ऋग्वेद मण्डल १०।सू० १०१ के १० मंत्रों का अर्थ ।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्नि मिन्ध्वं वहव सनीडाः । दधिक्रामग्नि मुषसं च देवी मिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥ १ ॥

अर्थः—परस्पर परिश्रमीजन कहते हैं कि (सखायः) हे मेरे प्यारे मनुष्यों ! (उद्बुध्यध्वम्) उठो ! (वह्वः) बहुत (सनीडाः)

समान-निवासी होकर अर्थात् किसी एक ही शाला में बहुत पुरुष इकट्ठे हो और (समनसः) एक मन हो अग्निम् अग्निहोत्र के लिये अग्नि को (सम्+इन्ध्वम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करो। मैं (वः) तुम्हारे कल्याणार्थ (इन्द्रावतः) सूर्य्य वा वायु के सहित (अधिक्राम) ब्राह्म मुहूर्त अग्निम्) अग्नि (च) और (देवीम्+उषसम्) उषा देवी को (अवसे) रक्षा के लिये (नि+ह्वये) आमन्त्रित करता हूँ।

पृथिवी पर प्रायः पशु पक्षी एवं अन्यान्य प्राणी अपने समय पर सोते और जागते हैं। कुक्कुट ठीक अपने समय जाग बैठता है। ब्राह्म मुहूर्त होते ही पक्षिगण कोलाहल मचाने लगते हैं। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने नियम को नहीं पाल सकता अतः इसके लिये बारम्बार सर्व-हितकारी सर्वसुहृद् भगवान् वेद द्वारा चेताते हैं कि तुम अपने समय पर उठकर मेरी प्रार्थना उपासना पूजा करो। इस प्रकार इतना उपदेश देकर आगे अब प्रात्यहिक कर्तव्य बतलाते हैं।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आतनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्। इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः॥२॥

(सखायः) हे मेरे प्यारे समान व्यवसायी मनुष्यों! (मन्द्रा+कृणुध्वम्) उत्तम-उत्तम बुद्धि वर्धक ग्रन्थ बनाओ (धियः+आतनुध्वम्) इस प्रकार अपनी-अपनी बुद्धियों का प्रथम विस्तार करो तब (अरित्रपरणीम्) अरित्र (डांड़ oar) की सहायता से पार जाने वाली (नावम्+कृणुध्वम्) नौका बनाओ। (इष्कृणुध्वम्) विविध प्रकार के नौका सम्बन्धी पदार्थ बनाओ। (आयुधा+अरं कृणुध्वम्) आयुधों को शाणित और अलङ्कृत करो। हे सखायों! (प्राञ्चम्) परम प्रशंसनीय (यज्ञम्) संग्राम रूप महायज्ञ को (प्रणयत) रचो॥ २॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्कमेयात्॥ ३॥

हे सखायो ! (सीरा + युनक्त) खेती के लिये लाङ्गल योजना करो (युगा + वितनुध्वम्) युगों (जुओं) का विस्तारित करो (इह + कृते + योनौ) यहाँ प्रस्तुत क्षेत्र में (बीजम् + वपत) बीज बीआ (गिरा) वाणी से प्रशंसनीय (श्रुष्टिः + च) अन्न (सभरा + असत्) फल फूल से भर जाय । (नः) हमारे (सृण्यः) अन्न के सींस (नेदीयः + इत्) शीघ्र ही (पक्कम् + एयात्) पक जायँ । ऐसी आशा करो और इसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करो ।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ४ ॥

(कवयः) कविगण (सीरा+युञ्जन्ति) लाङ्गल योजना करते हैं (युगा+पृथक्+वितन्वते) युगों (जुओं) की पृथक्-पृथक् विस्तारित करते हैं (देवेषु+धीराः) विद्वानों में भी जो धीर कवि हैं वे (सुम्नया) सुख पूर्वक सर्वगृहस्थ कार्य्य सम्पादन कर रहे हैं । अथवा सुख के लिए विद्वद्गण भी इस कार्य का सम्पादन कर रहे हैं ।

निराहावान् कृणोतन संवरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतउद्रिणं वयं सुषेक मनुपक्षितम् ॥५॥

हे सखायो ! (आहावान्) आहाव अर्थात् पशुओं के जल पान स्थानों को (निः+कृणोतन) अच्छे प्रकार बनाओ (वरत्रा+संदधातन) मोटी मोटी रस्सियों का आयोजन करो (उद्रिणम्) पूर्ण (शुषेकम्) सींचने योग्य (अनुपक्षितम्) क्षय रहित (अवतम्) गर्त को (वयं+सिञ्चाम) हम सब सींचें

अर्थात् इस अगाधजलपरिपूर्ण 'अवत' (कृत्रिमनदी) से जल लेकर भूमि का सेचन किया करें। ऐसा उत्साह करें॥

इष्कृताहाव मवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम्॥ ६॥

(इष्कृताहावम्) जिसमें पशुओं के लिए जलपान स्थान बनाया गया है (सुवरत्रम्) सुन्दररज्जुसंयुक्त (सुषेचनम्) शोभनोदकोपेत (उद्रिणम्) पूर्ण (अक्षितम्) अक्षीण ऐसा जो (अवतम्) कृत्रिम नदी है उससे मैं (सिंचे) पानी लेकर सींचता हूँ। अथवा द्रोण को सींचता हूँ। ऐसा परिश्रम तुम भी किया करो।

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम्॥७॥

हे सखायो! (अश्वान्+प्रीणीत) घोटकों को अच्छे प्रकार तृप्त करो (हितम्+जयाथ) क्षेत्र में संस्थापित धान्यादिकों का ग्रहण करो (स्वस्तिवाहम्+रथम्) जो निरुपद्रव धान्यवहन करे एतादृश रथ (इत् कृणुध्वम्) प्रस्तुत करो। (द्रोणावाहम्) एक द्रोण परिमित पशु निमित्त जलाधार (अवतम्) कृत्रिम नदी (अश्मचक्रम्) प्रस्तरनिर्मितचक्र और (नृपाणम्) मनुष्य के पीने योग्य (अंसत्रकोशम्) जलाधार पात्र इन सबों को (सिञ्चत) सींचो॥७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम्॥८॥

हे सखाओ! (व्रजम्+कृणुध्वम्) गोष्ठ बनाओ (सः+हि+वः) वही व्रज आप मनुष्यों के लिए (नृपाणः) मनुष्य

पानयोग स्थान होगा। हे सखायो ! (बहुला) बहुत (पृथूनि) और स्थूल (वर्म्म+सीव्यध्वम्) वर्म्म सीवन करो। और (अधृष्टाः) अधर्षणीय दृढ़तर (आयसीः+पुरः) लोहमय अनेक नगर (कृणुध्वम्) बनाओ (वः + चमसः) तुम्हारे खाने-पीने के चमस पात्र (मासुस्रोत्) स्रवित न होवे उससे पानी न चूवे वैसा (तम् + दृंहत) उसे दृढ़तर करो।

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह। सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ९ ॥

(देवाः) अब गृहस्थ लोग परस्पर कहें और विद्वानों से निवेदन करें कि हे विद्वानों ! (वः) आप लोगों की (यज्ञियाम् + धियम्) प्रशंसार्ह बुद्धि को (ऊतये) अपनी रक्षार्थ (आवर्ते) अपनी ओर खींचता हूँ। जो बुद्धि (यज्ञियाम् + देवीं+अजताम्) जो बुद्धि आप लोगों को भी प्रशंसनीय यज्ञिय भाग देती है हे विद्वानों ! जैसे (यवसा+इव + गत्वी) अच्छे प्रकार घास खा गोष्ठ में जा (मही + गौः) अच्छी गौ (पयसा + सहस्रधारा) सहस्रधार दूध देती हैं। वैसे ही (सा) आपलोगों की भी वह बुद्धि (नः दुहीयत्) हम को दूध देवें। अर्थात् आप लोग अपनी बुद्धि से ऐसे ऐसी परमोपयोगिनी विद्या निकाला करें जिससे हम प्रजाओं का बहुत कुछ लाभ हो।

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः। परि ष्वजध्वं दशकक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥ १० ॥

पुनः कोई कहता है कि हे मित्रो ! आप (द्रोः + उपस्थे) इस काष्ठ के ऊपर (हरिम् + ईम्) इस हरे काष्ठ को (आ + सिञ्च)

रक्खो तब (अश्मन्मयीभिः वाशीभिः) लोह निर्मित कुठारों से (तक्षत) तुम सब इसको चीरो फाड़ों। और कोई आप में से (उभे + धुरौ) दोनों धुरों को (दश + कक्ष्याभिः) दश रस्सियों से (परि + स्वजध्वम्) बाँधो। तब (वह्नी) ढोने वाले दो बैलों की गाड़ी में (युनक्त) संयुक्त करो॥ १० ॥

अन्त में एक मन्त्र कह कर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ।

अक्षैर्मा दिव्यः कृपिमित्कृपस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्य्यः॥ १० । ३४ । ११ ॥

स्वयं सर्वेश्वर कहता है (कितव०) हे द्यूतादिव्यसनी पुरुषो! व्यसन को त्यागो। गार्हस्थ्यादि शुभ वृत्ति को धारण करो इसी से निखल धन तुम्हें प्राप्त होगा। इति संक्षेपतः॥

यहाँ वेदों से ब्राह्मण रथकारादि अनेक नाम, विविध व्यवसाय और विविध पोष्य पशुओं का वर्णन दिखलाये हैं। इस विषय में अर्थ और टिप्पणिका सहित बहुत सी ऋचायें सुनाई हैं। इन सबों के निरूपण करने का प्रयोजन यहाँ यह है कि वेद का उद्देश अच्छे प्रकार सब पर प्रकट हो जाय। चिन्ता की बात है कि आज कल के संस्कृतज्ञ पण्डित भी वेदों के विषयों से परिचित नहीं हैं। वेद क्या-क्या सिखलाते हैं, उनमें कौन-कौन से पदार्थ निरूपित हैं। हमारे व्यवहार, रीति, सदाचार, प्रबन्ध इत्यादि ऐहलौकिक पारलौकिक विषयों में वेद क्या कहते हैं। इत्यादि वार्ताओं से विद्वद्गण भी आज कल सुपरिचित नहीं हैं। साधारण जनों की तो बात ही क्या। वे लोग, इसमें सन्देह नहीं कि वेदों को पूज्य, ईश्वरीय वाक्य और पवित्र मानते हैं और समझते हैं कि जो वेद पढ़ते पढ़ाते वे हम में श्रेष्ठ, शुद्ध, पवित्र

और ज्ञानी हैं इसी हेतु पण्डितों से साधारण जन व्यवस्था पूछा करते हैं। परन्तु यदि कभी किसी पण्डित के निकट जा कोई पुरुष पूछता है कि पण्डित जी महाराज! कृपाकर इस विषय में वेद क्या कहता है मुझे समझा देवें। इस पर पण्डित लाग इधर-उधर की बात कह के उसे सन्तोष दे देते हैं परन्तु वेद की एक भी बात नहीं बतलाते हैं। क्यों कि स्वयं इसको नहीं जानते। परन्तु इसको वे सिस्पष्ट नहीं कहेंगे कि मैं वेदार्थ नहीं जानता अतः तेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। प्रत्युत उसे सूचित कर देवेंगे कि मैं वेद के ही वचन कहता हूँ। यदि कोई सरल-भाव से पूछे कि किस वेद का यह वचन और कहाँ पर है तो पण्डित महाशय प्रथम अत्यन्त क्रुद्ध होंगे। शान्त होने पर मुखविनिःसृत वचन कहीं का क्यों न हो उसे किसी वेद का नाम ले लेंगे और "इति माध्यन्दिनी श्रुतिः" "इति छन्दोगश्रुति" "इति सामवेदे" इत्यादि पद उच्चारण कर अपने हठ को बढ़ाना आरम्भ करेंगे। इस पर यदि किसी जिज्ञासु ने कुछ और पूछा तो कहेंगे कि तुम क्या जानते हो वेद अनन्त हैं। सहस्रों लक्षों इसकी शाखाएँ हैं। किसी शाखा में यह होगी इत्यादि अनर्गल प्रलाप करते जायंगे परन्तु न सत्य पर स्वयं आवेंगे न मानेंगे और न किसी को अपने पुरुषार्थ भर सत्य ग्रहण करने देवेंगे। यह अजीब दशा आज भारत की हो रही है। इन बातों से देश में बड़ी हानि हुई। वैदिक सिद्धान्त वेदों की पुस्तक में ही रह गये। प्रजाएँ विचारी वंचित हुईं। वे समझती रहीं कि हमलोग वेदों के सिद्धान्त पर ही चल रहीं हैं। परन्तु शोक कि वैदिक पथ से सहस्रों कोश दूर वे कर दी गईं। आज वे इतनी अज्ञानी और अपरिचित हो गईं हैं कि वारम्बार समझाने पर भी न तो समझती और न विश्वास ही करतीं। कुछ दिनों से जो धर्म्माभास उनके ग्राम वा देश में

चले आ रहे हैं उनको ही विश्वास पूर्वक वैदिक धर्म्म मान रही हैं। इस प्रकार देशदशा पर यत् किञ्चित् निरीक्षण करने से महान् अन्याय प्रचलित देख पड़ते हैं। इन अन्यायों को रोकने के अभिप्राय से यहाँ अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं। आपलोगों ने अच्छे प्रकार मन्त्रों को सुना है। आप स्वयं विचारें कि किसी व्यवसाय वा किसी व्यवसायी की कहीं निन्दा वा किसी को व्यवसाय के कारण निन्दित वा नीच कहा गया है। किसी मन्त्र में किसी प्रकार की भिन्नता प्रदर्शित हुई है? आप को अङ्गीकार करना होगा कि यह सब वेद में नहीं है।

अब कोई अज्ञानी यह कहता है कि वेद तो केवल धर्म्म ही सिखलाते हैं। इस गृहस्थाश्रम के बखेड़ों से वेदों का क्या सम्बन्ध। सत्य है कि वेद धर्म्म ही सिखलाते हैं। परन्तु वैदिक धर्म्म क्या है? यह भी तो जिज्ञास्य और विवेचनीय है। क्या हल चला के अन्न उत्पन्न करना कोई पाप है? क्या मिट्टी के विविध बर्तन बनाना कोई नीच कर्म्म है? क्या ईंटें बनाना बनवाना कोई अपराध है? क्या मृत पशु के चर्म्म लेकर अनेक प्रकार के परिधेय वस्त्र वा बैठने के लिये आसन प्रभृति निर्माण करना कोई अधर्म्म है? इसमें सन्देह नहीं कि आजकल के वेदानभिज्ञ पुरुष इनसे घृणा दिखलाते हैं। इनके बोध के हेतु ही मैंने अनेक व्यवसाय परक मन्त्र सार्थक सुनाए हैं। जब वैदिकाऽऽज्ञानुसार परम विज्ञानी, धर्म्मात्मा और अतिशुद्ध ऋषि गण ही कृषि कर्म्म से लेकर सोमाश्वमेध पर्य्यंत सकल वैदिक कर्म्माऽनुष्ठान करते करवाते रहे तो हम लोग उन कर्म्मों के करने में क्यों कर लज्जित होवें। पुनः कोई अवेदज्ञ वेदार्थज्ञानाभिमानी जन कहते हैं कि वेद आदि सृष्टि के ग्रन्थ हैं उनमें आधुनिक सभ्यता का वर्णन कहाँ से हो सकता है। और न उस समय में

ऐसे-ऐसे सभ्य विवेकी पुरुष ही थे। ऐसे कहने वालों के बोध के हेतु मैंने अनेक सभ्यताओं का दिक् प्रदर्शन मात्र दिया है। सभ्यता क्या है? यदि बड़े-बड़े नगरों का होना, समुद्रों में भी विशाल-विशाल जहाजों का चलाना, अनेक प्रकार के पहिनने ओढ़ने के वस्त्रादिकों का बनना बनाना, उच्च-उच्च भवनों का निर्म्माण होना, बहुविध अन्न पशु प्रभृतियों से काम लेना और इनके साथ-साथ विद्या प्रचार, शिष्टता, समाज सङ्गठन, शत्रु दलन, न्यायालयनिर्माण आदि ही सभ्यता सूचक है तो आप बतलावें कि वेदों में किस चीज का अभाव है। क्या वेदों में सामुद्रिक यात्रा का वर्णन नहीं? क्या विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की चर्चा वेद नहीं करते हैं? मैं क्या कहूँ। मैंने आप लोगों को दिखलाया है कि सोने और लोहे के भी बड़े-बड़े नगर बसाए जाते थे। दश-दश सहस्र से भी अधिक कभी-कभी लक्षों घोड़े हाथी गौ आदि पशु एक-एक पुरुष रखता था। १० दश दश घोड़े से युक्त गाड़ी चलती थी। इतना ही नहीं आकाश पाताल और पृथिवी पर बिना घोड़े की सहस्रों गाड़ी चलती थी "अनश्वो जातो अनभीशुः" यह मन्त्र क्या सूचित करता है। पुनः इससे बढ़ कर सम्पत्ति का क्या लक्षण हो सक्ता है॥ मेरी सम्मति से पूर्णतया सभ्यता का लक्षण अथवा मनुष्यता का चिन्ह अथवा विज्ञान का फल अथवा जगत्पिता के परमानुशासन का प्रतिपालन यह है कि मनुष्य मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना किसी को जान कर हानि न पहुँचाना। निःस्वार्थ भाव में कार्य्य का आरम्भ करना और ईश्वरीयज्ञानप्राप्ति के हेतु प्रतिक्षण लाल-सित रहना इससे बढ़ कर कोई अन्य सभ्यता नहीं। वेद इनको अच्छे प्रकार दिखलाते हैं।

"दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि

समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"। "संगच्छध्वं संवदध्वं सम्वो मनांसि जानताम्"। "यो माऽयातुं यातुधानेत्याह" "किंस्विदासी दधिष्ठानम्" "त्रीणि पदा निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्" "क्वेदानीं सूर्य्यः कश्चिकेत" "अनायतो अनिबद्धः कथाय"

इत्यादि अनेक मन्त्रगण उच्चतम सभ्यता के प्रतिपादक हैं।

विशेष कर आप लोगों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जो कुछ व्यवसाय वा वाणिज्य आज कल देखते हैं वेदों में भी इनका अति संक्षेप वर्णन आया है और ऋषि उन सब व्यवसायों को कार्य्य में लाए थे यह भी सतपथादि ग्रन्थों से विदित होता है। ब्राह्मण के कर्म्म से लेकर चर्म्मकार के कर्म्म पर्य्यन्त वेद वर्णन करते हैं। पशुओं में गौ से लेकर गर्दभ पर्य्यन्त पशु पोष्य और कार्य्य बाहक बनाए गए थे गेहूँ से लेकर मसूर पर्य्यन्त अन्नों का व्यवहार हो गया था। इत्यादि सब ही प्रयोजनीय वस्तु की विद्यमानता देखते हैं। परन्तु कहीं भी मनुष्य में भिन्न-भिन्न जाति का वर्णन वा निन्दा वा प्रायश्चित्त आदि का वर्णन वा ब्राह्मण क्षत्रिया से विवाह करे क्षत्रिय ब्राह्मणी से न करे एवं शूद्र ब्राह्मणी वा क्षत्रिया, वा वैश्या कन्या से विवाह न करे, शूद्र-स्पृष्ट अन्न ग्रहण नहीं करे। इस प्रकार का पृथक् जातिसूचक वर्णन वेद में नहीं है इस हेतु वैदिक समय इन रोगों से सर्वथा निर्मुक्तथा यह अङ्गीकार करना ही पड़ेगा। वैदिक समय में कोई जातिभेद नहीं था इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं। अब प्रश्न हो सकता है कि यह आधुनिक जातिभेद कब से चला। आर वैदिक वर्ण व्यवस्था भी कार्य्य में कब से आने लगी। इन सबों का निर्णय आगे के प्रकरण में करेंगे।

प्रश्न—मनुष्य में अनेक वर्ण कैसे उत्पन्न हुए ?

उत्तर—आवश्यकतानुसार विविध व्यवसायों की बुद्धि होने से मनुष्य में अनेक वर्ण बनते गये। देखिये ! इस पर विचारना चाहिये कि क्या सृष्टि की आदि में ही होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा, क्षत्रिय, रथकार, इषुकार, स्थपति, चाण्डाल, सूत, मागध, प्रभृति मनुष्य उत्पन्न हुए। या धीरे-धीरे ये सब बनते गये। इस आशङ्का का समाधान अथवा इसका निर्णय सहज रीति से हो सकता है यदि थोड़ी देर आदि सृष्टि का चित्त में ध्यान करें। यह स्वीकार करना होगा कि आज कल जितने मनुष्य हैं। आदि में इतने मनुष्य उत्पन्न नहीं किये गये। आज कल की अपेक्षा कुछ थोड़े से मनुष्य उत्पन्न हुए होंगे। अब आँख मूँदकर ध्यान कीजिये कि आदि सृष्टि कैसी हो सकती है ? निःसन्देह आज कल के समान उस समय में ग्राम, पल्ली, पुरी, नगर, नगरी भवन, प्रासाद, मन्दिर आदि नहीं बने थे। गौ, बैल, घोड़े, हाथी, ऊँट, भेड़ा, भेंड़, बकरे, प्रभृति पशु मनुष्य के अधीन और पोष्य नहीं हुए थे। खेती आरम्भ नहीं हुई थी। सम्पूर्ण पृथिवी नर नारियों से शून्य थी। परन्तु आज कल के समान ही विविध नदी स्रोत स्वच्छन्दतया प्रवाहित थे। समुद्र देव अपने तरङ्ग कल्लोल से प्रकृति देवी की शोभा बढ़ा रहे थे। फल, फूल, कन्द, मूल, अनेक प्रकार के गेहूँ, जौ, मसूर, धान प्रभृति ओषधियों से भूमि भरी हुई थी पशु पक्षी और मत्स्यादि जलचर आदिकों का ही सम्पूर्ण राज्य था। अर्थात् जब समस्त सामग्री भूमि पर ईश्वरेच्छा से प्रस्तुत हो गई तब मनुष्य सृष्टि का आरम्भ हुआ। जैसे एक गृह में एक ही माता पिता के निज-निज कर्म्म संयुक्त भिन्नाकृति अनेक सन्तान हों वैसे ही आदि सृष्टि में उस परम पिता जगदीश की अचिन्त्य, अकथ्य, अगम्य, अज्ञेय, अलौकिक, लीला के वश

अनेक मनुष्य निज कर्म्मानुसार इस पृथिवी पर उत्पन्न हुए। आप देखते हैं कि सब मनुष्य आकृति में एक दूसरे से यत्किञ्चित् भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं एक ही पिता के अनेक पुत्र आकृति में अवश्य ही कुछ भेद रखते हैं। परन्तु यह भेद यथार्थ में भेद नहीं। जैसे गौ और हाथी में काक और शुक में मत्स्य और कूर्म्म में भेद है वैसा यह भेद नहीं। इसी प्रकार आदि सृष्टि में आकृतिगत यत्किञ्चित् भेद के साथ अनेक विध सैकड़ों मनुष्य उत्पन्न हुए। दिन-दिन इनकी वृद्धि होने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि आदि सृष्टि में ही अग्नि, वायु, आदित्य और आङ्गिरा इन पूर्वसिद्ध चार ऋषियों के हृदय में चारों वेद प्रकट किये गये और इनके द्वारा मनुष्य समाज में भाषा का प्रचार हुआ। अन्यथा मनुष्य भी पशु के समान अव्यक्त भाषा बोलने वाला ही रहा होता। परन्तु इसका भी यह तात्पर्य्य है कि मनुष्य शरीर की रचना भगवान् ने ऐसी प्रकट की कि इस शरीर के द्वारा जीवात्मा विस्पष्ट भाषा प्रकट कर सकता है। और दिन-दिन उन्नति करने में समर्थ हो सकता है। यद्यपि भगवान् ने वेद दिये। तथापि क्या सृष्टि के आदि में सब ही विद्वान् बन गये। और सब ही व्यवसाय एक साथ ही होने लगे। और सब प्रकार के व्यवसायी वर्ण भी तैय्यार हो गये ? नहीं। ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य का निज पुरुषार्थ निष्फल हो जायगा। चार ऋषियों के हृदय में सम्पूर्ण ज्ञान भरा हुआ था। इनके अतिरिक्त और सब अज्ञानी थे। और उन चार ऋषियों को भी ईश्वर सृष्टि के साथ प्रत्येक पदार्थ की तुलना करनी बाकी थी। वेद के द्वारा पदार्थों का बोध था। परन्तु किस पदार्थ को किस नाम से पुकारना होगा इत्यादि उनकी बुद्धि के ऊपर छोड़ा गया था। क्योंकि मनुष्य में जो मनन शक्ति दी है वह भी व्यर्थ न होवे। जैसे एक बुद्धिमान्

बालक को पदार्थ विद्या का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ा दिया जाय। और एक वाटिका में सब पदार्थ अच्छे प्रकार स्थापित कर उससे कहा जाय कि इस ग्रन्थ में जैसे जिसके गुण वर्णित हैं और लक्षणादि कहे हुए हैं इन्हीं के अनुसार इनके नाम रक्खो और इनसे काम लो। वह सुबुद्धिमन् पाठक परीक्षा ले-लेकर ग्रन्थानुसार पदार्थों के नाम और प्रयोग स्थिर करने में समर्थ हो सकता है। इसी प्रकार वेद प्राप्त होने पर भी प्रत्येक पदार्थों के नाम और प्रयोग परीक्षा ले-लेकर ऋषियों ने स्थिर किये। इसमें सन्देह नहीं कि उन चार ऋषियों के मन में समस्त पदार्थों के बोध का संस्कार पहले से ही था। वेद उन संस्कारों के जागृत करने में उद्बोधक होता गया। अतः उन चारों को पदार्थ परिचय में भी कोई कठिनता नहीं हुई।

वेदों में मनुष्य, मनु, मनुष्, मानुष, विवस्वान्, जगत् आदि मनुष्य के नाम से भी यह सिद्ध होता है कि वेद की सहायता और निज मनन से मनुष्यों ने सब उन्नति की है। मनुष्यादि शब्द का अर्थ हमें सूचित करता है और आज प्रत्यक्ष भासित होता है कि मनन, पूर्वापर विवेक-उत्साहादि गुण सहित और विस्पष्ट भाषा के साथ मनुष्य उत्पन्न किया गया (१)। वेदों में कहा गया है कि वैदिक ज्ञान सहित ही ईश्वर ने मनुष्य को प्रकट किया (२) इस हेतु पशु पक्षी प्रभृति के समान एक ही अवस्था

---

(१) मनुष्योःकस्मात् मत्वा कर्म्माणि सीव्यन्ति। मनस्य मानेन सृष्टा मनस्यतिः पुनः मनस्वी भावे। निरुक्त ३।७।

(२) स पूर्वया निविदा कव्यदाऽऽयोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ऋ० १। ९६। २॥ आयु—आने वाले जीव के निमित्त ईश्वर ने पूर्ववत् निविद्=वेद ज्ञान सहित मनुष्य सम्बन्धी इन प्रजाओं को उत्पन्न

में मनुष्य कदापि नहीं रह सकता। जैसे बालक में धीरे-धीरे विज्ञान बढ़ता जाता है वैसे ही आदि सृष्टि में वेद की सहायता से मनुष्यों में सर्वविज्ञान फैलता गया। सबसे पहले स्वभावतः खाने-पीने की आवश्यकता का बोध उत्पन्न हुआ। यद्यपि फल फूल कन्द प्रभृति अनेक पदर्थों से ही प्रथम मनुष्य अपना निर्वाह करने लगा परन्तु उन्नतिमान् होने के कारण अन्न पकाने की भी विधि निकाली। प्रथम अङ्गिरा अथर्वा दध्यङ् आदि ऋषियों ने इन्हें अग्नि को काम में लाने की विद्या अच्छे प्रकार सिखलाई।

इस प्रकार धीरे-धीरे खेती करने की भी आवश्यकता उपस्थित हुई। तदनुसार, कृष्टि, चर्षणि आदि वैदिक नाम रक्खे। परन्तु इस जीवन निर्वाह के साथ-साथ शरीर को वस्त्रादिक से आच्छादन करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई होगी क्योंकि वेद में कहा गया है कि वस्त्र धारण करने वाले श्रेष्ठ सुशोभित होते हैं। संभव है कि प्रथम वल्कल आदि अनायासप्राप्य अकृतिम पदार्थ ही उनके वस्त्र भी हुए हों परन्तु वैदिक ज्ञान के द्वारा कृत्रिम वस्त्र बनाने की भी चिन्ता उन्हें उत्पन्न हुई। (३) अब हम अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय कोई भी कृत्रिम वस्त्रधारी न हो। और न कोई इस विद्या को जानता ही हो अथवा वस्त्र धारण करने की किसी को चेष्टा भी न हो। परन्तु इस अवस्था में यदि कोई ऋषि वेद से इस विद्या को जान वस्त्र वयन (वस्त्र बुनना)

किया। निपद् का अर्थ वैदिक मन्त्र, ज्ञान आदि होता है। "सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः" यह गीता वाक्य भी इसी अर्थ को दृढ़ करता है।

(३) युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसः देवयन्तः। ऋग्वेद।३-८-४।

विद्या की शिक्षा देना आरम्भ करें उस समय आप अनुमान कर सकते हैं कि इसके लिए कितनी सामग्री की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य व्यवसाय की भी दशा जानिए। मनुष्य को अपनी रक्षा की भी चिन्ता लगी। चारों तरफ व्याघ्रादि मांसाहारी पशु भ्रमण कर रहे थे। इनके बच्चों को कभी-कभी खा जाते थे। इस समय इनको अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता बढ़ी। इस प्रकार शनैः शनैः अनेक आवश्यकताएँ मनुष्यों को होने लगीं। आप अनुमान कर सकते हैं कि—

रहने के लिए गृहादि इकट्ठे वास के लिए ग्राम नगरादि, खेती के लिये बैल हल आदि, पहनने के लिए वस्त्र, रक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र नदी में पार उतरने को नौका, आने जाने को रथादि व्यवहार के लिए द्युम्न (विविध प्रकार के सिक्के) इस प्रकार अनेक पदार्थों की आवश्यकता दिन दिन बढ़ती गई। प्रथम सब कोई सब कार्य करने लगे अर्थात् जहाँ तक होता था अपने गृह में वस्त्रादि पदार्थ बना लेते थे जैसे आजकल भी देखते हैं कि कोई कोई परिवार सब ही योग्य कार्य्य अपने से ही कर लेता है। खेती करता है। अन्नादिकों को उत्पन्न करके बेचता है। विविध पशु पालता है अपने हाथ से गाड़ी रथ बना लेता है लोहे के विविध पात्र गढ़ता है। कोल्हू से वा अन्यान्य उपाय से तेल चुआ लेता है। घृतादि तैयार करता है। कई एक वस्तु से नीमक भी गला लेता है। समय पर अपने शत्रु से लड़ता भी है। पूजा पाठ भी नियम से कर लेता है। पञ्च बनकर बड़े-बड़े झगड़ों को निपटाता है। इसी प्रकार एक ही गृह में विविध कार्य्य होते हुए आज भी आप देखते हैं। बहुत समय तक यही रीति चली आती रही कि प्रात्यहिक प्रयोजनीय अन्न, वस्त्र, तेल, घृत, नीमक, लोहादि धातु निर्मित अनेक भोज्य भाजन, भूषण आदि

पदार्थ अपने-अपने गृह पर ही सब कोई तैयार कर लिया करते थे परन्तु दिन-दिन पदार्थों का ज्यों-ज्यों अधिक प्रयोग होने लगा। समाज में पुरुषार्थ के अनुसार धनिक, दरिद्र, दक्ष, आलसी सब प्रकार के मनुष्य होने लगे त्यों-त्यों व्यवसाय की भी उन्नति होती गई। धनिक पुरुष अपने गृह पर अपने हाथ से वस्त्र भूषणादि प्रयोज्य पदार्थ न बना कर दूसरों से खरीद करने लगे। दरिद्र बेचारे अच्छे-अच्छे पदार्थ प्रस्तुत कर उन धनिक पुरुषों के हाथ विक्रय करने लगे। स्त्रियों में भूषण की आवश्यकता बढ़ने पर कोई अलङ्कार गढ़ कर अपनी जीविका करने लगा। कोई रथादि बना कर कोई विविध प्रकार के सांग्रामिक वर्म्म सीकर, कोई लोहों से बाण तैयार कर, कोई भोजनार्थ विविध पात्र पात्र निर्म्मित कर अपना जीवनोपाय करने लगा। परन्तु वैदिक समय में इन सब व्यवसाइयों के पृथक्-पृथक् बंश का वर्ण नहीं बने थे। एक ही बंश में अनेक व्यवसायी होते थे। जैसे आज कल भी देखते हैं कि एक ही ब्राह्मण के घर में कोई पाचक, कोई सिपाही, कोई लेखक, कोई वकील, कोई पुरोहित, कोई पानी पांडे, कोई खेतिहर और कोई क्रयविक्रय करने वाला इत्यादिक अनेक विध पुरुष हैं और वे सब मिल इकट्ठे होने पर ब्राह्मण ही कहाते हैं। इसी प्रकार वैदिक समय में लोह, काष्ठ, मृत्तिका, चर्म्म, सुवर्ण, कपास आदिक पदार्थों से व्यवसाय करने वाले लोहकार, धनुष्कार, तक्षा (बढ़ई) कुम्भकार, सुवर्णकार, चर्म्मकार और तन्तुवाय आदि व्यवसायी एक आर्य्य नाम से मिलने पर पुकारे जाते थे और खान पान शादी विवाह सब ही साथ होते थे। क्योंकि एक वंश के सब होते थे। और इनका पृथक्-पृथक् वंश अभी तक नहीं बना।

आजकल यह एक व्यवहार देखते हैं कि क्या ब्राह्मण क्या

क्षत्रिय किसी वंश का कोई पुरुष क्यों न हो और वह नीच से नीच वर्ण के यहाँ धावक (सिपाही) अथवा पाचक अथवा पानी पिलाने पर नौकर हो अथवा गृह गृह पर मजदूरी लेकर पानी पहुँचाता हो अथवा इस प्रकार के किसी नीच उपाय से भी अपनी जीविका निर्वाह करता हो तो इस अवस्था में भी वह ब्राह्मण वा क्षत्रिय ही कहलाता रहेगा अर्थात् जिस कुल में उसका जन्म हुआ है वही बना रहेगा। इसी प्रकार आज कल विदेशियों के अनेक पुतली घर व्यवसाय के लिए खुले हुए हैं उनमें सब वर्ण के मनुष्य सब काम करते हैं। नीच से नीच कर्म्म झाड़ू लगाना पानी भर कर सबको पिलाना आदि करते हैं। परन्तु वे अपनी जाति वा वर्ण से च्युत कभी नहीं माने जाते और न उन्हे कोई अपने वर्ण से पृथक् ही कर सकता। परन्तु यदि वही पुरुष अपने निज गृह पर लोहार बढ़ई वा सुनार वा कुम्हार आदि के कर्म्म कर जीविका करे तो उसे झट वर्ण से पृथक् कर देवेंगे या नीच समझने लगेंगे और दो चार वंश के पीछे वह अपने व्यवसाय के अनुसार लोहार आदि कहलाने लगेगा परन्तु पुतलीघर में जाके वह भले ही सब कर्म्म कर उसे कोई भी पृथक् नहीं करेगा। और न पुतली घर के व्यवसाय पर उसका कोई नाम ही अलग रक्खा जायगा।

इसका भी कारण क्या है? इसका कारण प्रत्यक्ष है। देश में जिस-जिस व्यवसाय (रोजगार) की सिद्धि के हेतु एक-एक वंश वा वर्ण पहले से बना हुआ है। उस-उस व्यवसाय में उसी-उसी वर्ण वा वंशज पुरुष का अधिकार है क्योंकि माध्यमिक (मध्य काल के पुरुष) लोग समझते थे कि एक-एक वंशज व्यवसाय रहने से कार्य्य उत्तम होगा। उस वंश का उसमें बड़ी निपुणता होती जायगी और उस वंशज को हानि भी न पहुँचेगी। दूसरा—

नवशिक्षित वैसा कर सके वा न कर सके। तीसरा—लाभदायक व्यवसाय को ही सब कोई करना चाहेगा। इससे कितने व्यवसायों के जड़ से विनष्ट होने की सम्भावना हो सकती है। । चौथा—अनवस्थित पुरुष एक में लाभ न देख के दूसरा आरम्भ करेगा, उसमें लाभ न देख के तीसरा व्यवसाय करेगा। इस प्रकार किसी-किसी को बड़ी हानि पहुँचने की सम्भावना है इत्यादि अनेक कारण वश यदि कोई पुरुष निज व्यवसाय को छोड़ अन्य व्यवसाय को करने लगे तो वह पतित माना जायगा। और जाति से निकाल भी दिया जा सकता है। परन्तु पाचक वर्ण अभी तक कोई नहीं बना है धावक, लेखक, वाहक, सेवक आदि भी कोई वर्ण अभी तक नहीं है। इस हेतु इस कार्य्य को जो चाहे सो कर ले वह अपने वर्ण से पतित नहीं होगा।

इसी प्रकार आप समझें कि वैदिक समय में रथकार, लोहकार, स्वर्णकार, प्रभृति का पृथक् वंश नहीं बना था। कि एक ही वंश के पुरुष इस कर्म्म को करे दूसरे वंशज इसे न करे ऐसी कोई नियम नहीं था। इस कारण वैदिक सयम में आवश्यकतानुसार एक ही वंश के पुरुष भिन्न-भिन्न लोहकार, कुम्भाकारादि, होने पर भी मिलने पर सब समान ही समझे जाते थे। और एक ही आर्य्य नाम से पुकारे जाते थे कोई व्यवसाय वंशाऽऽगत नहीं हुआ था। इस प्रकार एक घर वाले भी भिन्न-भिन्न व्यवसायी होने पर भी एक ही आर्य्य थे।

"मानवाऽऽर्य्य सभा"

शनैः शनैः जब मनुष्य-संख्या अधिक बढ़ने लगी संसार में मनुष्य चारों तरफ विस्तीर्ण हो गये परस्पर का प्रेम टूटता गया परस्पर भयङ्कर युद्ध होने लगा, एक दूसरे को अन्याय से दबाने

लगे उस समय आर्य्यों में एक बृहत् सभा स्थापित हुई। एक पुरुष सभा का सभापति होता था। वह "मनु" इस नाम से पुकारा जाता था। वह वेदतत्त्ववित्, परम ज्ञानी, निष्पक्ष, धर्म्मात्मा और पृथिवी पर के प्रायः सब वृत्तान्त जानने वाला होता था। इस 'मनु' के अधीन कई एक ऋषि, ऋत्विक् और कई एक राजा होते थे। ऋषियों के साथ प्रत्येक विषय का परामर्श, और ऋत्विक लोगों से विविध यज्ञ और राजाओं से युद्ध और राज्य प्रबन्धादि कार्य्य लिया करते थे इसी का नाम 'मानवार्य्य सभा' थी। क्योंकि इसमें मनु की प्रधानता होती थी मनु सम्बन्धी को 'मानव' कहते हैं प्रजाओं की सम्मति से राजा वे बनाए जाते थे जो प्रजाओं को सर्वथा प्रसन्न उनके विघ्नों को अच्छे प्रकार नष्ट और शत्रुओं को अपने अधीन कर सकते हों। और इन राजाओं के अधीन बहुत सेनाएँ रहती थीं। परन्तु आपको यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक समय में राजवंश भी कोई पृथक् नहीं हुआ था। जो प्रजाओं में ही बड़े शूरवीर निर्भय शत्रु दलन में सदा तत्पर और प्राण को तृण समान मानने वाले होते थे वेही राजा बनाए जाते थे और न वे जन्म भर राजा ही बने रहते थे। एक 'मनु' के समय में ही अनेक राजा परिवर्तित हो जाते थे। जहाँ दो चार विजय उन्होंने किये वे अन्य कार्य्य में लगाए जाते थे और अन्यान्य युवकों को राज्य भार सौंपे जाते थे। जो सब राजाओं का सरदार बनाया जाता था वह 'इन्द्र' और इसके जो साक्षात् मन्त्री होते थे वे 'बृहस्पति' नाम से पुकारे जाते थे। इस प्रकार आर्य्यों में 'महाराज' अथवा 'सम्राट' की 'इन्द्र' और मन्त्री की 'बृहस्पति' पदवी बहुत दिनों तक रही। देश के प्रत्येक खण्ड में 'राजसभा' और एक-एक 'राजा' नियत होता था। वे सब राजे, सम्राट् के अधीन और वह सम्राट् 'मनु' के

अधीन रहता था। इसी प्रकार उस समय ब्राह्मण का भी कोई पृथक् वंश नहीं था। वंश में जो अधिक पढ़ लिख जाता था वही अपने घर का पुरोहित भी होता था। और समय-समय पर ऋत्विक् आदि बन बड़े-बड़े यज्ञ भी अपने में कर लेता था। जो प्रजाएँ अनभिज्ञ होती थीं वे उन्हीं पढ़े पुरुषों को अपने घर ले जाकर धार्मिक संस्कार करवा लिया करती थीं। इस प्रकार मानों जिसका पिता मूर्ख होने के कारण कर्षक वा तन्तुवाय आदि साधारण व्यवसाय से जीविका निर्वाह कर रहा है यदि उसका पुत्र अनूचान और वेदज्ञ बन गया तो वह यज्ञादि कर्म्म करता करवाता बड़े यज्ञों में ऋत्विक् और ब्राह्मण का आसन ग्रहण करता। और यदि विद्वान् का पुत्र विद्वान् न हुआ तो वह किसी अन्य उपाय से अपनी जीविका निर्वाह करता परन्तु वह कभी ऋत्विक् आदि नहीं बनाया जाता। जो पुरुष केवल अपना समय पढ़ने-पढ़ाने में ही सर्वदा बिताना चाहते थे उनको लोग ब्राह्मण की पदवी देते थे और ये समाज के 'मुख्य' कहाते थे क्योंकि मुख का कार्य्य मुख्यतया पढ़ना-पढ़ाना, स्तुति करना करवाना आदि भाषण है। वैदिक समय में यही नियम चलता रहा। केवल आर्य्य और दस्यु का भेद था परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, में कुछ भेद-भाव नहीं था। जैसे आज कल ऋत्विक् पुरोहित होता अध्वर्यु ब्रह्मा आदि का कोई पृथक् वर्ण नहीं है। ब्राह्मण में से जो विद्या पढ़ जाते हैं वे ही ऋत्विक् आदि बन जाते हैं वैसी ही वैदिक समय का सुसमाचार है जो अध्ययन-अध्यापन करते थे वे ब्राह्मण जो वीर शत्रुसंहारी वे क्षत्रिय जो खेती आदि व्यापार में लगे वे वैश्य जो बहुत न्यून पढ़े परन्तु प्रत्येक शारीरिक कार्य्य में दक्ष वे शूद्र। आज कल भी आप देखेंगे कि अनेक व्यवसाय के पृथक्-पृथक् वर्ण अभी तक नहीं बने हैं। मार्दङ्गिक,

पाणिवाद वेणुध्म, वीणाद, वार्तावह इत्यादि अर्थात् मृदङ्ग बजाकर जो अपना निर्वाह करे वह मार्दङ्गिक, हाथ से ताल बजाने वाला पाणिवाद, बाँसुरी बजानेवाला वेणुध्म, वीणा बजानेवाला वीणावाद, सन्देशा ले जाने वाला वार्तावह। इन सबों का पृथक्-पृथक् अभी तक कोई वर्ण नहीं है। इसी प्रकार नर्तक, कत्थक आदि का भी कोई पृथक् वर्ण नहीं। इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रथकार, तथा, सुवर्णकार, निषाद आदि शब्द रहने से कोई यह न समझे कि ये शब्द वेदों में पाये जाते हैं अतः ये पृथक्-पृथक् वर्ण वंशानुगत होवेंगे परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं। शब्द रहने से ही किसी विषय की सिद्धि नहीं होती। उस समय के समस्त व्यवहार की परीक्षा करना चाहिये। मैंने यहाँ अनेक व्यवसायों के उदाहरण वेदों से दिये हैं जिनसे आपको प्रतीत हुआ होगा कि वैदिक समय में कोई वंशानुगत वर्ण नहीं था अर्थात् खान्दानी कोई वर्ण व्यवस्था नहीं थी।

कई सहस्र वर्षों तक यही वैदिक नियम चलता रहा। उस समय देश में परम बुद्धि रही। धन-धान्य पूर्ण साक्षात् लक्ष्मी, सरस्वती, दोनों देविएँ गृह-गृह विराजमान थीं। दिनों के पश्चात् अर्थात् करीब ६००० छः सहस्र वर्ष बीते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्था कतिपय राजाओं ने स्थापित की। तब से यह अन्याय बढ़ता गया और आज इस भयङ्कर अवस्था तक पहुँच गया है। परन्तु आगे के प्रकरणों से आपको यह विदित होगा कि इस पतित समय में भी बड़े-बड़े विद्वानों ने इस वंशानुगत वर्णव्ययस्था को तोड़ने के लिये बड़े-बड़े प्रयत्न किये हैं। मैं इन सबों का आगे निरूपण करूँगा। इस प्रसङ्ग में यह वर्णन करना आवश्यक समझता हूँ कि बहुधा अज्ञानी मानते हैं कि ब्रह्मा के मुख से आदि सृष्टि में ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और चरण से शूद्र

उत्पन्न हुए, इस हेतु आदि सृष्टि से ही ये चारों वर्ण पृथक्-पृथक् हैं। और इसी कारण एक दूसरा कदापि नहीं हो सकता। शूद्र सदा नीच ही रहेगा क्योंकि पैर से इसकी उत्पत्ति है और ब्राह्मण सदा उच्च ही रहेगा क्योंकि मुख से इसकी उत्पत्ति है। अर्थात् जन्म से ही ब्राह्मणादिक वर्ण हैं कर्म्म से नहीं। और इसमें "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस ऋचा का प्रमाण देते हैं। इस हेतु मैं समझता हूँ कि ऋचा का प्रथम व्याख्यान कर लें तब आगे पुनः चलें।

इति द्वितीयं व्यवसायादिनिरूपणप्रकरणं समाप्तम्।

अथ

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्व्याख्याप्रकरणम्।

प्रश्न—परब्रह्म परमात्मा के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि वर्ण चतुष्टय उत्पन्न हुआ क्या यह वेदों से सिद्ध नहीं होता?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तब "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस ऋचा का अभिप्राय क्या है?

उत्तर—इसका अभिप्राय मैं अनेक प्रमाणों के सहित निरूपण करूँगा जिससे आप लोगों का सन्देह सर्वथा मिट जाय, और आप सत्यता तक पहुँच जायँ। इस हेतु प्रथम आप इस बात पर ध्यान देवें कि यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" ऋचा किस अवसर पर कही गई है। इस मन्त्र के पहले एक प्रश्न किया गया है। उसके समाधान में इस ऋचा को कहा है। अब यह विचारणीय

है कि प्रश्न के अनुसार ही समाधान भी हुआ करता है। प्रश्न तो कुछ हो और उसका उत्तर कुछ और ही हो "आम्रान् पृष्टः कोदारानाचष्टे" ऐसा कथन केवल अज्ञानी और उन्मत्त का होता है। इस हेतु प्रथम प्रश्न के ऊपर ध्यान दीजिये। प्रश्न यह है।

मुखं किमस्यासीत् किंबाहू किमूरू पादा उच्यते।

यजु० ३१। १०॥

इसका अक्षरार्थ यह है। (अस्य) इसका (मुखम्+किम्+आसीत्) मुख कौन है "वेद में लिट् लुङ् सर्वकाल में होते हैं" "छन्दासि लुङ्-लिङ् लिटः। ३। ३। ६। धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः" (किं+बाहू) दोनों बाहु कौन हैं (किम्+ऊरू) दोनों ऊरू कौन हैं। और (पादौ+उच्यते) इसके दो पैर कौन हैं।

ये ही चार प्रश्न हैं। इनमें आप देखते हैं कि किसी प्रश्न में नहीं पूछा गया है कि ब्राह्मण किस अङ्ग से उत्पन्न हुए थे क्षत्रियादि किस अङ्ग से उत्पन्न हुए। अब इसी प्रश्न का उत्तर होना चाहिये। सो सुनिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत। यजु० ३१। ११॥

(अस्य+मुखम्+ब्राह्मणः+आसीत्) इसका मुख ब्राह्मण है। (बाहू+राजन्यः+कृतः) दोनों बाहू क्षत्रिय हैं। (यद्+वैश्यः) जो वैश्य है (तद्+ऊरू) वह इसके दोनों ऊरू हैं। (पद्भ्याम्+शूद्रः+अजायत) दोनों पैर शूद्र हैं।

इस प्रकार अर्थ करने से प्रश्नों का ठीक समाधान हो सकता है। मैं पुनः प्रश्न और उत्तर साथ साथ रखता हूँ। प्रश्न (१) मुखं किमस्यासीत्—इसका मुख कौन है? उत्तर—ब्राह्मणोस्य मुखमा-

सीत्—इसका मुख ब्राह्मण है। प्रश्न (२) किंबाहू इसके दोनों बाहू कौन है? उत्तर—बाहू राजन्यः कृतः—इसके दोनों बाहु राजन्य (क्षत्रिय) है। प्रश्न (३) किमूरू—इसके दोनों ऊरू कौन हैं? उत्तर—ऊरू तदस्य यद्वैश्यः—इसके दोनों ऊरू वैश्य हैं। प्रश्न (४) पादा उच्येते—इसके दोनों पैर कौन हैं। उत्तर—पद्भ्यां शूद्रो अजायत। इसके दोनों पैर शूद्र हैं॥

जो प्रश्न पूछे गये हैं उनके समाधान भी इसी प्रकार हो सकते हैं। अब आप यह विचारें कि "इसका मुख कौन है" ऐसा कोई प्रश्न पूछता है। यदि इसका उत्तर यह कहा जाय कि "उसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है" तो क्या यह उस प्रश्न का समाधन कहलावेगा। कदापि नहीं। यदि ब्राह्मण कहाँ से उत्पन्न हुआ। ऐसा प्रश्न रहता और उसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह उत्तर कहा जाता तो प्रश्न के अनुकूल समाधान समझा जाता परन्तु यहाँ वैसा प्रश्न ही नहीं। फिर वैसा समाधान कैसे किया जाय।

प्रश्न—"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इतिहास पुराणादिकों ने जैसा वेदों का तात्पर्य वर्णन किया हो वैसा ही वर्णन करना चाहिये। सब इतिहास पुराण कहते हैं कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण ब्रह्मा के मुखादिक अङ्गों से उत्पन्न हुए हैं फिर इसके विरुद्ध अर्थ आप कैसे करते हैं।

समाधान—वेद के अनुसार इतिहास पुराणों को वर्णन करना चाहिये अथवा इतिहास पुराण के अनुकूल वेद का लगाना चाहिये। महाशयो! आप यह तो सोचें कि यदि इतिहास पुराण कहीं भूल कर गये हो तो उनकी जाँच कैसे हो सकता है। क्या उसी भूल के अनुसार ही वेद का भी अर्थ कर देवेंगे? नहीं। वेद ही सबका परीक्षक है। वेद से जो अर्थ सिद्ध हो वही मानना

चाहिये। इसके विपरीत सर्वथा त्याज्य है। मीमांसाशास्त्र कहता है कि "विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" वेद से विरुद्ध अर्थ सर्वथा त्याज्य है। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि इन ग्रन्थों में बहुत भूलें इसलिये होती गई हैं कि पीछे से सम्प्रदायी लोग बहुत नवीन नवीन वाक्य मिलाते गये। इन इतिहास पुराण ग्रन्थों का इस हेतु असली स्वरूप का पता सबको नहीं लगता। परन्तु विचार पूर्वक यदि इनका अध्ययन किया जाय तो विद्वानों को बहुत कुछ पता लग जाता है। प्रथम आप यह समझें कि ये भागवतादि पुराण दिन दिन बनते गये हैं यहाँ तक कि बादशाह अकबर के समय तक पुराण लोग बनाते रहे हैं। इस प्रकार महाभारत आदि में भी बहुत से क्षेपक हैं। परन्तु वेदों को यहाँ के लोग अक्षर अक्षर कण्ठस्थ रखते थे, हजारों लाखों ब्राह्मण कण्ठस्थ ही वेदों को पढ़ाया करते थे इस हेतु कोई सम्प्रादायी एक अक्षर भी इनमें मिला नहीं सके। और इसी कारण सब ग्रन्थ और आचार्य्य चेताते आए हैं कि जैसा वेद कहता है वैसा ही करो। क्योंकि ग्रन्थ बनाने वाले स्वयं समझते थे कि इन ग्रन्थों में लोग बहुत कुछ मिला सकते हैं क्योंकि इनको नियम पूर्वक सब कोई कण्ठस्थ नहीं करते वेदों को सम्पूर्ण भारतवासी एक सिरे से दूसरे सिरे तक विधि पूर्वक श्रद्धा विश्वास से अभ्यस्त किया करते हैं। इस हेतु वेदों में क्षेपक होने की कोई भी आशङ्का कदापि नहीं हो सकती। इसी कारण निखिल ग्रन्थकार अपने-अपने ग्रन्थों में चेताते गये हैं कि वेदानुकूल चलो। जब यह बात स्थिर है तो हमें वेदों पर ही पूर्ण विश्वास रख कर सब निर्णय करना चाहिये। मैं आप लोंगो से यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं आगे सिद्ध कर दिखलाऊँगा कि लोगों ने इतिहास पुराणों का भी आशय नहीं समझा है। और किसी पुराण से भी सिद्ध नहीं

होता है कि ब्रह्मा के मुखादिकों से ब्राह्मणादि वर्ण हुए ॥ ऐवमस्तु आगे चलिये।

(१) ब्रह्मा से यह सारी सृष्टि हुई यह वेद का सिद्धान्त नहीं। (२) ब्रह्मा महेश इन तीनों का पौराणिक भाव क्या है इसको "त्रिदेव निर्णय" नामक ग्रन्थ में दिखलाया है वहाँ ही देखिये। (३) वेदों के ऊपर टिप्पणिका करने वाले ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य और गोपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में मुखादिक से उत्पत्ति का वर्णन कहीं भी नहीं है। (४) जैसे आधुनिक ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिये अग्रज, मुखज, आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज आदि, वैश्य के लिये ऊरुज, मध्यज, आदि, और शूद्र के लिये पादज चरणज जघन्यज, अत्यज आदि शब्द पाये जाते हैं प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे शब्द कहीं नहीं मिलते। इत्यादि अनेक कारणों से सिद्ध है कि मुखादिक अंगों से ब्राह्मणादिवर्णों की सृष्टि माननी सर्वथा वेदविरुद्ध है। अब प्रथम इस ऋचा का अर्थ दिखला कर आगे सब निरूपण करूँगा।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इसका अभिप्राय।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ऋग्वेद १०।९०।१२॥

यजुर्वेद और सामवेद में भी इसका पाठ ऐसा ही है। परन्तु अथर्ववेद में कुछ भेद है यथा :—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

अथर्ववेद १९। ६। ६॥

वेदों में अलङ्कार रूप में वर्णन बहुत आता है। यह भी एक आलङ्कारिक वर्णन है। भगवान् का अभिप्राय वा संकेत है कि संसार में जीवनोपाय निमित्त प्रथम मनुष्यों को चार भागों में विभक्त करना चाहिये। जो मुख का काम करे वह ब्राह्मण, जो बाहु का काम करे वह राजन्य, जो शरीर के मध्य भाग का काम करे वह वैश्य और जो पैर का काम करे वह शूद्र नाम से पुकारा जाय।

मुख के काम—गर्दन से ऊपर भाग का नाम यहाँ 'मुख' है। अर्थात् शिर से यहाँ तात्पर्य्य है। इस शिर में दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और मुख के अभ्यन्तर सातवीं एक जिह्वा ये सात इन्द्रिय निवास करते हैं। ये ही सप्तर्षि कहाते हैं। जैसे ऋषि सत्यासत्य निर्णय करते हैं तद्वत् ये इन्द्रिय रूप सातों ऋषि भला बुरा सब कुछ निर्णय कर तब क्षत्रिय आदि को आज्ञा देते हैं। श्रवण, मनन निदिध्यासन विवेक आदि जो कुछ विचार करते हैं सब शिर से ही करते हैं। इसी में सब ज्ञानेन्द्रिय रहते हैं। नयन जब देख लेती है कि यह भयङ्कर व्याघ्र आ रहा है। इसे मारना चाहिये झट वह बाहु को खड्ग वा बन्दूक आदि से मारने की आज्ञा देती है। बाहु भी वैसा ही करना आरम्भ करता है आँख और रसना जब किसी पदार्थ को देख लेती हैं कि यह भोग्य है तब झट कण्ठ के द्वारा मध्यस्थान उदर के भीतर पहुँचा देती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को प्रथम शिर परीक्षा कर लेता है तब उसके ग्रहण वा त्याग के लिये आज्ञा देता है। अपने स्वयं कुछ नहीं रखता है। शिर यदि शरीर पर न हो तो इस शरीर का पहचान भी कठिन है। सबसे बढ़कर मुख का काम पठन पाठन है। परम पवित्र वेद वचनों को मुख से ही पढ़ते पढ़ाते। इत्यादि शिर के कार्य्य ऊहनीय हैं जैसे

इस शरीर में शिर कर्म्म करता है वैसे ही विवेक पूर्वक निःस्वार्थी और परोपकारी बनकर जो मस्तिष्क से समाज की सेवा करे उसे ब्राह्मण कहते हैं। वह मानो इस विराट् जगत् का अथवा मनुष्य समुदाय का मुख सदृश है अतः यह 'मुख्य' है।

बाहु के काम—सम्पूर्ण शरीर की रक्षा बाहु ही करता है। शिर से लेकर पैर तक कहीं भी आपत्ति आने पर झट हाथ दौड़ जाता। युद्धक्षेत्रादिक में भी इसके विना कार्य्य ही नहीं चल सकता। बाहुवत् जो समाज की सेवा अपने बाहुबल से करता है वह 'राजन्य' है।

ऊरु के काम—ऊरु पद से यहाँ 'शरीर के मध्य भाग का' ग्रहण है इसी हेतु अथर्ववेद में 'ऊरु' की जगह में 'मध्य' पद आया है। गर्दन से नीचे और जंघा से ऊपर भाग को यहाँ मध्य भाग कहते हैं। अब देखिये उदर कौन काम करता है। प्रत्येक भुक्त पीत वस्तु उदर में संचित होती है वहाँ से सुन्दर पुष्ट रस बनकर मस्तिष्क हाथ पैर सर्वत्र अङ्गों में पहुँचता है और मलिन पदार्थ को निकाल बाहर कर देता है। ऐसे उदर के समान जो कोई नाना भोज्य, पेय, लेह्यादि पदार्थ अपने यहाँ एकत्रित कर सम्पूर्ण देश में पहुँचाया करता है वह वैश्य है।

पैर के काम=पैर बिना हम कुछ कर ही नहीं सकते। कहीं जाना आना भी पैर से ही होता है। जब शरीर को ढोकर संग्राम में पैर ले जायगा तब ही बाहु युद्ध करेंगे और शिर वहाँ कर्त्तव्या-कर्त्तव्य विचारेंगे। पैर के तुल्य कार्य्य करने वाला 'शूद्र' कहावे। यह इसका भाव है। इसके ऊपर आर्य्यसमाज में अनेक व्याख्यान बने हुए हैं अतः इस अलङ्कार का व्याख्यान विस्तार से नहीं किया गया है।

प्रश्न—हाँ, आपका कथन बहुत सत्य है। वेद का यही आशय

है इसमें भी संशय नहीं। परन्तु "पद्भ्याँ शूद्रो अजायत" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा। वेद के प्रश्न के अनुसार दोनों पैर शूद्र हैं यही अर्थ करना उचित है परन्तु पद वैसा अर्थ नहीं कहता। इसमें हम लोगों का बड़ा सन्देह है। उसको अनुग्रह कर दूर कीजिये।

समाधान=इसमें संशय नहीं कि 'पद' कुछ निकट हैं। सुनिये। चारों प्रश्नों के चार उत्तर हैं। तीन में न तो 'अजायत' पद और न 'पञ्चमी विभक्ति' ही है। अब जो तीन कहें सो करें या एक कहे सो करें। लोक में भी अधिक सम्मति स्वीकर्तव्य होती है और इसके साथ-साथ प्रश्नोत्तर भी बनता है और एक की बात मानने से प्रश्नोत्तर भी नहीं बनता है। अतः इस अन्तिम वाक्य को भी तीन के समान लगाना चाहिये।

पक्षान्तर में मैं यह कहता हूँ कि यदि इसको सृष्टि प्रकरण में ही लगाना अभीष्ट है यद्यपि यह है नहीं क्यों कि ऐसे अर्थ के मानने वाले के शिर पर यह भी एक भार है कि "विराजो अधिपूरुषः" विराट् से 'पुरुष' अर्थात् मनुष्य सृष्टि प्रथम ही कही गई। पुनः एक ही सूक्त में द्वितीय वार मनुष्य-सृष्टि कहने की क्या आवश्यकता हुई। इसका उत्तर वे क्या देवेंगे। यहाँ वे मौन ही धारण करेंगे। तथापि इसका आशय यही लगाना चाहिये कि मनुष्य-सृष्टि में कोई विद्याभिलाषी, कोई युद्धाभिलाषी, कोई व्यापारी, कोई आलसी, कोई तीक्ष्ण चतुर दक्ष, कोई मूढ़ कोई ज्ञानी, कोई तपस्वी व्रती, कोई अकर्म्मण्य ओर स्वयं वेद में विद्याध्ययन, संग्राम, वाणिज्य आदि का विधान इत्यादि अनेक प्रकारता देखी जाती है। मनुष्य-सृष्टि ही ऐसी भगवान् ने की है। मनुष्य में जितनी आवश्यकताएँ लगाई हैं पशु पक्षियों को वस्त्रों, खेतों, व्यापारादिकों की आवश्यकता नहीं। मनुष्य समान पशु-

पक्षिगण दिग्विजय की आकांक्षा कराने वाले नहीं। अर्थात् कोई सिंहादिक पशु नहीं चाहता है कि मैं सारे पशुओं को मार अपने अधीन कर राजा बनूँ; परन्तु मनुष्यों में अनेक पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्होंने लाखों पुरुषों, स्त्रियों बच्चों को कतल कर सहस्रों नगर ग्रामों को भस्म कर सम्पूर्ण पृथिवी का अधीश्वर बनने की इच्छा की इसी प्रकार कोई-कोई विद्वान् भी जगद्विजयी बनना चाहते थे। इत्यादि अनेकाभिलाषग्रस्त मनुष्य सृष्टि देखी जाती। भगवान् ने इसको ऐसी ही बनाई। इस हेतु इस सृटि में प्रबन्ध की भी बड़ी आवश्यकता है। इस कारण भगवान् की ओर से यह उपदेश है कि मनुष्यों में चार भाग करो। जो विद्वान् उत्पन्न हों उन्हें मुख के निमित्त अर्थात् मुख के कार्य्य निमित्त समझो। वाणी का स्थान मुख हैं। भाषण मुख से होता है सो जो कोई कोई विद्याध्ययन करें करवावें जगत् में शिक्षा फैलावें यज्ञ करें करवावें उन्हें मुख्य ब्राह्मण मानो और उनसे यही काम लेने का प्रबन्ध करो। जो बलिष्ठ निर्भय उत्पन्न हों उन्हें बाहु के निमित्त समझो। भुजा बल की जगह है। भुजा से युद्ध करते हैं। सो जो कोई सेनारूप बल और निज बल लेकर रक्षा करें करवावें उन्हें 'राजन्य' मानो। और इनसे यही काम लो। जो धन संचय में रुचि दिखलावें उन्हें उदर के निमित्त समझो। उदर प्रथम सब भुक्त पीत कोश अपने में रख यथायोग्य स्थान में पहुँचाता है। सो जो कोई वाणिज्याभिलाषी हो उन्हें वैश्य समझो और उनसे यही कार्य्य लो। जो बड़े साहसी कठिन से कठिन शारीरिक कार्य्य करने वाले हों उन्हें पैर के निमित्त समझो पैर ही कठिन से कठिन स्थान में चलता है। सम्पूर्ण देह का भार पैर ही सम्हालता है। इस हेतु साहसी कठिन कार्य करने वाले को शूद्र मानो और इससे यही काम लो। भाव यह है कि "पद्भ्यां

शूद्रो अजायत" यहाँ पञ्चमी का अर्थ निमित्त करना चाहिये। पैरों के निमित्त अर्थात् पैर के कार्य्य के निमित्त। अन्यत्र भी जहाँ-जहाँ ऐसे पद आवें कि 'मुखाद् ब्राह्मणोऽजायत बाहुभ्यां राजन्योऽजायत' इत्यादि स्थल में भी मुख के कार्य्य निमित्त ब्राह्मण, बाहु के कार्य निमित्त क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है इत्यादि अर्थ करने से कहीं भी दोष नहीं आता है। इसी सूक्त में इसी निमित्त अर्थ में पञ्चमी का प्रयोग देखिये यथाः—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्या असीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१३॥

मनोविनोद के लिये चन्द्रमा को, नेत्रों में ज्योति पहुँचाने के निमित्त सूर्य को, कान में शब्द पहुँचाने के निमित्त वायु और प्राण को, मुख में बल पहुँचाने के कारण अग्नि को, नाभि कुण्ड में रक्षा के लिये अन्तरिक्ष को, शिर को प्रज्वलित करने के हेतु द्युलोक को, पैर के रखने के लिए भूमि को, श्रोत्र में अवकाशार्थ दिशाओं को, इत्यादि वस्तुओं को तत्तत्कार्य्य निमित्त ईश्वर ने प्रकट किया। *चन्द्रमा*—कभी बढ़ता कभी घटता कभी सब ही लुप्त कभी पूर्ण होता रहता है। एक छोटा बच्चा भी देख चन्द्रमा को अपने हाथ में लेना चाहता है। सूर्य्य की तीक्ष्णता के कारण बच्चे अच्छी तरह से उसे देख भी नहीं सकते। पुनः चान्द्रमसी रात्रि में कैसा विनोद होता। हमारा मास भी प्रायः चान्द्र है। ज्योतिषी भी अश्विनी भरणी आदि चन्द्र की पत्नी से आजकल निर्वाह करते हैं। दर्शपौर्णमास यज्ञ भी चान्द्र हैं इत्यादि अनेक

प्रकार से चन्द्रमा बच्चे से लेकर बड़े विद्वानों से लेकर बड़े विद्वानों को भी विनोद स्थान है। अतः कहा गया है कि चन्द्रमा मन के लिये है। अन्यान्य पदों का भावार्थ स्पष्ट है। मुख के लिए अग्नि-जितने ही खाद्य पदार्थ को चबा चबा खाते हैं उतने ही शीघ्र पचता है पचना अग्नि की शक्ति है यहाँ सर्वत्र पञ्चम्यर्थ निमित्त ही देखते हैं। जो कोई "मन से चन्द्रमा और नयन से सूर्य्य उत्पन्न हुआ" इत्यादि अर्थ करते हैं उनसे पूछना चाहिये कि आप के सिद्धान्त में सत्कार्य्यवाद कहाँ रहा। क्या प्रकृति से उनको बनाया या स्वयं भगवान् ने अपने शरीर से मांस नोंच-नोंच कर इस सृष्टि को बनाया। ऐसा करने से भगवान् निर्विकारी कैसे रहेगा। एवमस्तु, यहाँ प्रकरणान्तर में जाना अच्छा नहीं। मैंने जो अर्थ आप लोगों को सुनाया उस पर ध्यान देकर विचार करें। वेदों के अर्थ सीधे हैं। लोगों ने खींचातानी कर विवादास्पद बना सत्यासत्य छिपा दिया है।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् और शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ।

यदि वेद का तात्पर्य्य मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि की सृष्टि का रहता तो इसके विपरीत शतपथ आदि वर्णन नहीं करता। अतः मैं यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण आप लोगों को सुनाता हूँ।

भूरिति वै प्रजापतिः इमा मजनयत भुव इत्यन्तरिक्षं स्वरिति दिवमेतावद्वा इदं सर्वं यावदिमे लोकाः सर्वेणैवा-धीयते ॥ ११ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माऽजनयत भुव इति क्षत्रं स्वरिति विश मेतावद्वा इदं सर्वं यावद् ब्रह्म क्षत्रं

विट् सर्वेणैवधीयते ॥ १२ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः आत्मान मजनयत भुव इति प्रजां स्वरिति पशूनेतावद्वा इदं सर्वं यावदात्मा प्रजा पशवः सर्वेणैवाधीयते ॥ १३ ॥ शतपथब्रा० २ । १ । ४ । १२ ॥

अर्थ—प्रजापति ने 'भू' शब्द पूर्वक इस पृथिवी को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक अन्तरिक्ष और 'स्वः' शब्द पूर्वक द्युलोक को सम्पूर्ण विश्व इन्हीं तीन के अन्तर्गत हैं। पुनः निश्चय, 'भू' शब्द पूर्वक प्रजापति ने ब्राह्मण को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक क्षत्रिय और 'स्वः' शब्द पूर्वक वैश्य को सब मनुष्य इन ही तीन के अन्तर्गत हैं जो यह ब्रह्म, क्षत्र, और विट् हैं। पुनः प्रजापति 'भूः' शब्द पूर्वक अपने को प्रकाशित किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक सन्तान और 'स्वः' शब्द पूर्वक पशुओं को। इनके ही अन्तर्गत सब हैं। जो यह, आत्मा, प्रजा और पशु है। इन सबों के साथ अग्नि स्थापित किया।

देखते हैं कि यहाँ मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि सृष्टि का वर्णन नहीं है यदि वेद का अभिप्राय यह रहता कि 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ' तो ब्राह्मण भी वैसा ही लिखता। अतः वेद का आशय आलंकारिक वर्णन से है। यहाँ कुछ क्रम पूर्वक सृष्टि का वर्णन नहीं है। यज्ञ के विधानार्थ यह सृष्टि दिखलाई गई है। भाव यहाँ केवल यह है कि ज्ञान सहित मनुष्य की सृष्टि हुई है। ऐतरेय, ताण्ड्य और गोपथ में भी मुखादि अङ्ग से सृष्टि का वर्णन नहीं है। प्रसिद्ध और वेदानुकूल १० दशो उपनिषदों में भी मनुष्य सृष्टि का विवरण नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् में केवल 'ततो मनुष्या अजायन्त' (१-४-३) तब बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए इतनी ही मनुष्य सृष्टि कही गई।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् और मनुस्मृति ।

सब धर्म्म शास्त्रों में मुख्य मनुस्मृति ही है। अतः सृष्टि के विषय में यह शास्त्र क्या कहता है इस प्रकरण में जानना आवश्यक है। क्या मनुस्मृति से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि वर्ण ब्रह्मा के मुखादि अङ्गों से उत्पन्न हुए। समाधान नहीं, देखिये। मनुस्मृति में सृष्टि प्रकरण किस प्रकार वर्णित है। यथा—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षु र्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥ अध्याय १
तदण्ड मभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मि ञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवान् उषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वय मेवात्मनो ध्याना त्तदण्ड मकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥

अनेक महर्षियों ने मनुजी के निकट जा प्रश्न किये हैं। उनही महर्षियों से मनुजी कहते हैं परमात्मा ने अपने शरीर से विविध प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा करता हुआ प्रथम आप (जल वा आकाश) उत्पन्न किया। और उसमें बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥ वह बीज सूर्य्य समान सौवर्ण अण्ड (अण्डा) हो गया। उस अण्डे में सर्व लोक पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ आपको

'नार' कहते हैं। क्योंकि 'नर' नाम परमात्मा का भी है। उस 'नर' का पुत्र तुल्य 'आप' है। अतः "आप" को 'नार' कहते हैं "नरस्यापत्यं नारः" वह 'आप' प्रथम परमात्मा का निवासस्थान हुआ अतः उस परमात्मा को 'नारायण' कहते हैं ॥ १० ॥ जो वह परमात्मा सबका कारण अव्यक्त, नित्य, सदसदात्मक है। उससे प्रथम जो पुरुष सृष्ट (उत्पन्न) हुआ लोक में वह 'ब्रह्मा' कहाता है ॥ ११ ॥ उस अण्डे में एक वर्ष निवास कर उस ब्रह्मा ने निज ध्यान से उस अण्डे को दो भाग किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टा वपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥
उद्धबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणाणिच ।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणिच ॥ १५ ॥
कालं कालविभक्तींश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान् समानि विषमाणिच ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोध मेवच ।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टु मिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

उस ब्रह्मा ने उस अण्डे के उन दोनों खण्डों से द्युलोक और भूमि बनाई और इन दोनों के मध्य में व्योम और आठ दिशाएँ और शाश्वत समुद्र के स्थान बनाए। यहाँ से लेकर ३० वें श्लोक पर्य्यन्त मन अहङ्कार पञ्चेन्द्रिय काल नक्षत्र, ग्रह, सरिता, सागर तप, वाणी, रति, काम, क्रोध, आदि, विविध प्रकार की सृष्टि की

रचना का विस्तार से वर्णन है। अर्थात् द्युलोक से लेकर भूमि पर्यन्त सब पदार्थ उत्पन्न किये। केवल जङ्गम जीवों की सृष्टि बाकी रही इसके लिये आगे कहते हैं।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देह मर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराज मसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्ताऽस्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजाना मसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारद मेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्ताऽन्यानसृजन्भूरितेजसः ।
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्च मितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्ष रक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणाञ्च पृथक् गणान् ॥३७॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषिच ।
उल्का निर्घात केतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानिच ॥ ३८ ॥
किन्नारान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान् ।
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥३९॥
कृमिकीट पतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
सर्वंच दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥

एतमेतै रिदंसर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म्म तपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम् ॥ ४१ ॥

अर्थः—मनुजी महर्षियों से कहते हैं वह ब्राह्मा अपने देह को दो भाग कर आधे से पुरुष और आधे से नारी हुए। उस नारी में उस प्रभु ने विराट् नामक पुरुष को उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ उस स्वयं विराट् पुरुष ने तपस्या करके जिसको प्रथम सृष्ट किया हे द्विजसत्तमो ! वह सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा मैं ही मनु हूँ। यह आप लोग जाने। अर्थात् विराट् ने जिसको उत्पन्न किया वह मैं ही मनु हूँ ॥३३॥ मैंने विविध प्रजाओं की सृष्टि करने को इच्छावान् हो सुदुश्चर तप कर आदि में १० दश महर्षि प्रजापति सृष्ट किये ॥३४॥ मरीचि १। अत्रि २। अङ्गिरा ३। पुलस्य ४। पुलह ५। क्रतु ६। प्रचेकस ७। वसिष्ठ ८। भृगु ९। नारद १०। (क) इन भूरितेजा दशों (१०) मरीचि आदि प्रजापतियों ने अन्य सात (७) मनु उत्पन्न किये देव, देवनिवासस्थान और महर्षि सृष्ट किये ॥३६॥ और यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्य, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुवर्ण, और पितृगण उत्पन्न किये ॥३७॥ विद्युत्, अशनि, मेघ रोहितेन्द्र धनु, उल्का, निर्घात, केतु और अन्यान्य ज्योति उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ किन्नर, वानर, मत्स्य, विविध विहङ्गम, पशु, मृग, मनुष्य, व्याल, और ऊपर नीचे दाँतवाले पशु ॥ ३९ ॥

(क) महाभारत में ब्रह्मा के छः मानस पुत्र माने गये हैं। "ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्यः पुलहः क्रतुः। वन ॥५५॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्य, पुलह, और क्रतु ये छवो ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। मनुस्मृति में ४ अधिक बढ़ाये गये हैं। और यहाँ मरीचि आदि मनु पुत्र कहे गये हैं यह भी विपरीत प्रतीत होता है।

कृमि, कीट, पतङ्ग, यूका मक्षिक, मत्कुण, दंश, मशक, और विविध प्रकार के स्थावर ॥ ४० ॥ इस प्रकार मेरी आज्ञा के अनुसार उन महात्मा महर्षियों ने तपोयोग से स्वस्वकर्म्मानुसार सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् को रचा ॥ ४१ ॥

इन श्लोकों पर विचार ।

यहाँ पर आप देखते हैं कि मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदिक दश ऋषियों ने समस्त पशु, पक्षी, मत्स्य, यक्ष, राक्षस, आदि चेतन और विद्युत् अशनि आदि अचेतन भी इस प्रकार स्थावर जङ्गम सब पदार्थ उत्पन्न किये और "पशून् मृगान् मनुष्यांश्च" (३९) मनुष्यों को भी उत्पन्न किया इस ३९वें श्लोक से सिद्ध है कि मनुष्यों के सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी नहीं हैं। किन्तु मरीचि आदि दश महर्षि हैं। केवल मनुष्यों ही के नहीं किन्तु अण्डज, पिण्डज ऊष्मज और उद्भिज्ज इन सबों के सृष्टिकर्ता ये दश ऋषि हैं। अब ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह बात नहीं रही। एवमस्तु। अब इसके ऊपर ध्यान दीजिये। सबका भाव यह है कि प्रथम परमात्मा ने जल वा आकाश बनाया। उसमें बीज स्थापित किया। वह बीज अद्भुत अण्डाकार हुआ। उसमें से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी ने उस अण्डे को दो भागों में बाँटकर स्वर्ग से लेकर भूमि तक सारी पाँच भौतिक सृष्टि बनाई। सब बनाकर अपने देह को दो भागों में बाँटा आधे से वह ब्रह्मा पुरुष हुआ और आधे से नारी। उस नारी में विराट् को सृजा। उस विराट् से मनु हुए। मनु से १० प्रजापति हुए। इन दश प्रजापतियों ने अन्य सात मनु उत्पन्न किये और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम सिरजे। इतना ही सृष्टि प्रकरण मनुस्मृति में वर्णित है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुस्मृति में वर्णित है। इसमें सन्देह नहीं कि

मनुस्मृति में सृष्टि-प्रकरण सर्वथा असङ्गत है यह कह सकते हैं। क्योंकि प्रथम तो "ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की" यह वेद विरुद्ध है। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में बाँटा यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि यदि ब्रह्मा ने अपने सम्पूर्ण शरीर को दो भागों में बाँट दिया तो ब्रह्मा स्वयं नष्ट हो गये। जो पुरुष और स्त्री हुए वे ही ब्रह्मा रह गये जैसे दूध जब दही हो जाता है तब स्वयम् दूध नहीं रहता। फिर उस पुरुष और नारी का क्या नाम हुआ। इसका वर्णन मनुस्मृति में नहीं है। यदि कहो कि जो पुरुष हुआ वह मनु और जो नारी हुई वह शतरूपा तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि आगे कहा है कि इस जोड़ी से विराट् हुआ और उस विराट् से मनु। अन्य पुराणादिकों में मनु की स्त्री शतरूपा मानी गई है। यदि यहाँ ब्रह्मा ने जिसको प्रथम अपने शरीर से विभक्त किया उसे "शतरूपा" मानोगे तो "मनु की पितामही" सिद्ध होगी। शतरूपा की चर्चा मनुस्मृति में कहीं नहीं है। पुनः यदि ऐसा कहो कि ब्रह्मा ने पुरुष नारी बन विराट् को उत्पन्न कर पुनः दोनों को संहार अपना निजरूप धारण कर लिया। यह भी कथन उचित नहीं क्योंकि प्रथम तो इसकी आवश्यकता ही क्या थी। और ब्रह्मा ने जिस पदार्थ से आकाश, पाताल, पृथ्वी, आप, तेज, नदी, समुद्र, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, आदि सृष्ट की क्या उसी से मनुष्य नहीं बना सकते थे। जैसे विराट्-पुरुष ने अपने सामर्थ्य से मनु को और मनु ने दश महर्षियों को सृष्ट किया क्या यह सामर्थ्य ब्रह्माजी में नहीं था। अच्छा! ब्रह्माजी ने तो अपने शरीर के दो भागों में बाँट स्त्री पुरुष बन विराट् को उत्पन्न किया परन्तु मनुजी ने किस सामर्थ्य से दश महर्षि उत्पन्न किये। इन्होंने अपने देह को दो नहीं किये और न उन्हें स्त्री ही मिली थी। फिर उन्होंने सृष्टि कैसे की।

इसके पश्चात् दश महर्षियों ने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम रचे। किस अङ्ग से रचे। जब इन सबों में यह शक्ति थी तो क्या ब्रह्माजी में ही वह शक्ति नहीं रही जो इनको अपना शरीर दो भाग करना पड़ा। यह सब वेद विरुद्ध बात है। अब आगे चलिये। मनु ने प्रथम १० प्रजापति उत्पन्न किये। उन दशों ने मनुष्यादि स्थावर जङ्गम सब उत्पन्न किये। अब पूछना चाहिये कि जब इन दशों ने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम मनुष्यादि बनाये तो ब्रह्मा के उत्पन्न किए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्ण कहाँ गये? इन दशों से जो मनुष्य उत्पन्न हुए वे क्या उन चारों वर्णों से पृथक् थे? परन्तु पृथक् नहीं हो सकते हैं। क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार जगत् में चार ही वर्ण हैं। पञ्चम नहीं। पुनः मनुजी स्वयं विराट् पुरुष से हुए किस अङ्ग से हुए इसका वर्णन नहीं है। इस अवस्था में वे क्या थे ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्र। इन चारों में से किसी में इनकी गणना नहीं हो सक्ती। पुनः मनुजी ने जो दश प्रजापति उत्पन्न किये वे किस वर्ण के थे? इसका भी वर्णन कुछ भी नहीं। ये सब भी किस-किस अङ्ग से हुए यह भी कथित नहीं है। इनमें से कोई शूद्र थे या नहीं। फिर इन ही दशों से सारे मनुष्य हुए। अतः सारे मनुष्य की कोई जाति भिन्न-भिन्न नहीं हो सकती। इस प्रकार देखते हैं कि मनुस्मृति में क्रम नहीं हैं। यदि यह क्रम मान लिया जाय कि ब्रह्मा से विराट्-विराट् से मनु, मनु से मरीचि आदि दश प्रजापति और इनसे सारी सृष्टि तो इस अवस्था में ब्रह्मा के बनाए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का निर्माण व्यर्थ हो जाता है यदि कहो कि प्रथम चार वर्ण बनाकर तब ब्रह्माजी ने विराट् मनु और मरीचि आदि को बनाया तो इसमें पुनः वही शङ्का होगी कि क्या वे चार वर्ण मनु और मनु के सन्तान से भिन्न हैं। फिर मनु और महर्षि मरीचि

आदि के वंश कौन-कौन हुए। और कौन वर्ण के हुए। इत्यादि शङ्का बनी ही रहती है। इस कारण प्रकरण के देखने से भी सिद्ध है कि मुखादि सृष्टि मनुस्मृति नहीं मानती। यदि मानती तो यह भी वर्णन रहता अमुक ऋषि मुख से हुए और उनका वंश ब्राह्मण कहलाया इसी प्रकार अमुक ऋषि बाहु से, अमुक पुरुष ऊरु से और अमुक पुरुष पैर से उत्पन्न हुए उनको अमुक-अमुक नाम दिये गये। परन्तु यह वर्णन नहीं है। अतः सिद्ध है कि मनुस्मृति भी मुखादि सृष्टि नहीं मानती है। बीच में जो दो-चार श्लोक आए हैं वे क्षेपक हैं। अथवा पूर्वोक्त शैली पर उनका अर्थ कर निर्वाह हो सक्ता है धर्म्म शास्त्र का प्रयोजन सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करने का नहीं ह। अतः प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि प्रकरण क्षेपक है पुनः आगे चलकर मनुस्मृति कहती है कि:—

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥६१॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुव मनु के वंश में महात्मा और महातेजस्वी छः मनु और हुए जिन्होंने अपनी अपनी प्रजाएँ सृष्ट कीं। वे छवों ये हैं। स्वारोचिष, उत्तम, तामस रैवत, चाक्षुक, और वैवस्वत, इस पर शङ्का होती है कि इनकी सृष्टि कब हुई? और जब ये मनु स्वसृष्टि कर लेते हैं तो ब्रह्माजी के मुखादि से उत्पन्न ब्राह्मणादि वर्ण कहाँ रहते हैं? पुनः आगे मनुस्मृति में लिखा है कि:—

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्म्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥

तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् ।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ ९४ ॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥

ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने, और क्षत्रियादिकों में से ज्येष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण धर्म्मतः इस सम्पूर्ण जगत का स्वामी ब्राह्मण है। स्वयंभू ब्रह्माजी ने तप कर सब के प्रथम अपने मुख से हव्यकव्यग्रहणार्थ और इस समस्त जगत की रक्षार्थ ब्राह्मण को उत्पन्न किया। स्थावर जङ्गमों में कीटादि प्राणी श्रेष्ठ, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ, बुद्धिजीवियों में नर श्रेष्ठ और नरों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में कृतबुद्धि, कृतबुद्धियों में कर्ता और कर्ताओं में ब्रह्म वेदी श्रेष्ठ हैं।

इसमें पूछना चाहिये कि भगवान् ने पशुओं में सिंह को बलिष्ठ और श्रेष्ठ बनाया। क्या वह कभी शृङ्गाल भी हो सकता है। यदि नहीं तब जब स्वभावतः ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ बने तो सदा उन्हें श्रेष्ठ ही रहने चाहिये। वे निकृष्ट, नीच, क्यों बन जाते? फिर सब ब्राह्मण एक ही प्रकार के होने चाहिये। इनमें ऊँचता नीचता क्या और इनका गिरना क्यों? पुनः आगे कहते हैं।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥अ०२

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् । ३ । १४२

जैसा काष्ठमय हाथी, जैसा चर्म्ममय मृग, वैसा ही अनपढ़ ब्राह्मण है । ये तीन केवल नाममात्र धारण करते हैं जैसे ऊपर खेत में बीज बोकर बोने वाला कुछ फल नहीं पाता । वैसे ही अवेदज्ञ ब्राह्मण में हवि देकर कुछ लाभ नहीं होता ।

यहाँ देखते हैं कि कर्म्म के ऊपर ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता है । यदि स्वभावतः सिंहादिवत् ब्राह्मण श्रेष्ठ है तो अनपढ़ भी श्रेष्ठ बना रह सकता है । फिर अध्ययन से श्रेष्ठता क्यों ? यदि अध्ययन से श्रेष्ठता है तो जो मनुष्य अध्ययन करे वह सब ही श्रेष्ठ है । क्याही शोक की बात है । यदि एक शूद्रपुत्र चारों वेद पढ़कर अपने आचरण से भी श्रेष्ठ बनता है तो क्या वह अनपढ़ ब्राह्मण से भी नीच ही बना रहा । जब देश में ऐसे-ऐसे अत्याचार फैलते हैं तब भगवान् का अवश्य कोप होता है । अतः हे विद्वानो ! निःसन्देह अध्ययन से मनुष्यमात्र की श्रेष्ठता होती है । ब्राह्मण वही है जो वेद अध्ययन करे । मैं आगे मनुस्मृति के विषय में लिखूँगा यहाँ अन्य प्रकरण में जाना उचित नहीं । ये ग्रन्थ सब जब ब्राह्मणादिकों की वंशपरम्पराप्रणाली चलने लगी तब रचित हुए हैं । इस कारण इनमें वेदविरुद्ध बहुत सी बातें पाई जाती हैं । इस हेतु सब त्याग एक वेद की शरण में आना चाहिये ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और महाभारत ।

वैशम्पायन—हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ।
सुरादीना महं सम्यक् लोकानां प्रभवाप्ययम् ॥६॥

ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१०॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाःप्रजाः ।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥११॥
अदितिर्दिति र्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः ॥१२॥
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत ।
एतासां वीर्य्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥आदि० ६५

राजा जनमेजय से वैशम्पायन कहते हैं कि हे राजन् ! मैं प्रथम परमात्मा को नमस्कार कर देवादि सब लोगों के जन्म और प्रलय कहूँगा। ब्रह्मा के छः (१) मानस पुत्र हुए। मरीचि १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। कश्यप से यह सब प्रजाएँ हुई हैं। दक्ष की १३ कन्याएँ हुईं। अदिति १ दिति २ दनु ३ काला ४ दनायु ५ सिंहिका ६ क्रोधा ७ प्राधा ८ विश्वा ९ विनता १० कपिला ११ मुनि १२ कद्रू १३। इन कन्याओं के अनन्त पुत्र पौत्र हैं।

अदिति से—द्वादश, आदित्य, (२) धाता, मित्र, अर्य्यमा,

---

(१) प्रजापति के मनस पुत्रों की संख्या भिन्न भिन्न कही गई है। एक स्थल में ७ दूसरी जगह २१ कही हुई है। आगे की टिप्पणी देखिये। और रामायण ३—१४—६ और मनुस्मृति विष्णु पुराणादि को भी इस विषय में देखिये।

(२) धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एवच। भगो विवस्वान्

शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु ये द्वादश आदित्य कहाते हैं।

दिति से—एक ही पुत्र हिरण्यकशिपु।

दनु से—४० पुत्र हुए हैं, विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, विश्वपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपाद, एकचक्र, विरूपाक्षी, महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य्य और चन्द्र। इत्यादि इसी अध्याय में देखिये सिंहिका से—राहु। कद्रू से सर्पगण। विनता से—गरुड़ इत्यादि।

अब यहाँ विचार कीजिये कि ब्रह्मा के छः मानस पुत्र हुए न तो ये मुख से न बाहु आदि से। फिर ये कौन जाति कहलावेंगे। और इन छःवों से ब्राह्मण तथा राजवंश प्रभृति चले हैं। इनसे जो वंश चले हैं इनको किसी जाति में नहीं गिन सकते हैं। पुनः महाभारत कहता है।

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च सम्वर्तश्च धृतव्रतः ॥ ५ ॥
अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयन्ते मनुजाधिप।
सर्वे वेदविदः सिद्धाः शान्तात्मानो महर्षयः॥६॥ आदि० ६६

अङ्गिरा के बृहस्पति, उतथ्य और सम्वर्त, ये तीन पुत्र हुए। और अत्रि के अनेक पुत्र हुए। सब ही वेदवित्, शान्तात्मा महर्षि हुए। अत्रि के जो पुत्रादिक हुए वे क्या कहलावेंगे। क्योंकि ये सब मुखादिक से उत्पन्न नहीं हुए।

पूषाच्च सविता दशमस्तथा ६५। एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते। आदिपर्व ६५।

'दक्ष और उनकी भार्या की उत्पत्ति'

दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठा द्दक्षिणाद् भगवानृषिः ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपाः ॥ १० ॥
वामादजायताङ्गुष्ठाद् भार्या तस्य महात्मनः ।
तस्यां पञ्चशतं कन्या स एवाजनयन्मुनिः ॥ ११ ॥

आ० प० । ६६ ॥

ब्रह्माजी के दक्षिण अङ्गुष्ठ से प्रजापति दक्षजी उत्पन्न हुए हे पृथिवीपाल ! वे बड़े शान्त, महातपस्वी, और महर्षि हुए । और ब्रह्मा के वामअङ्गुष्ठ से दक्ष की भार्या उत्पन्न हुई । इन दोनों के संयोग से ५० कन्याएँ हुई ।

ददौ स दश धर्माय सप्तविंशति मिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन् कश्यपाय त्रयोदश ॥ १२ ॥

धर्म को १० कन्याएँ । कश्यप को १३ कन्याएँ । सोम को २७ कन्याएँ दीं ।

अब आप एक आश्चर्य देखें कि दक्षजी अङ्गुष्ठ से उत्पन्न हुए । और इन्होंने १३ कन्याएँ कश्यप को दीं जिनसे यह सब मनुष्य हुए । कश्यपजी मरीचि के पुत्र हैं । अतः इनको मानस पुत्र कहेंगे और अङ्गावयव से उत्पन्न होने से दक्ष शारीरिक पुत्र हुए । ये दोनों ही एक प्रकार से मानसिक हैं । इन दोनों वंशों के योग से यह सारी मनुष्य सृष्टि हुई फिर आप लोग कैसे कह सकते हैं कि मुख से ब्राह्मणादि हुए । इत्यादि ।

भृगु की उत्पत्ति ।

ब्रह्मणो हृदयं भित्वा निःसृतो भगवान् भृगुः ॥४१॥

भृगोः पुनः कविर्विद्वान् शुक्रः कविसुतो ग्रहः ॥४२॥
अन्य मुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥४३॥
च्यवनं दीप्ततपसं धर्मात्मानं यशस्विनम् ॥४५॥

ब्रह्मा के हृदय से भगवान् भृगु उत्पन्न हुए। भृगु से शुक्राचार्य, और च्यवन हुए। मनु की कन्या अरुषी से च्यवन का विवाह हुआ उनके और्व पुत्र हुए। और्व के ऋचीक। और ऋचीक के जमदग्नि। जमदग्नि के चार पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुराम हैं। इस प्रकार भृगु वंशोत्पत्ति है। यह वंश भी ब्रह्मा के मुख से नहीं हुआ इस हेतु इसको भी ब्राह्मण जाति नहीं कह सकते। पुनः।

दश प्रचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः ॥४॥
तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिमाः प्रजाः ॥५॥
सहस्रसंख्यान् सम्भृतान् दक्षपुत्रांश्चनारदः।
मोक्षमध्यापयामास सांख्यज्ञानमनुत्तमम् ॥७॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसन्दधे।
प्रजापतिः प्रजादक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥८॥
ददौ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
कालस्य नयने युक्ताः पञ्चविंशतिमिन्दवे ॥९॥
त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत् ॥१०॥
आदि पर्व० ७५॥

भाव सबका यह है कि प्रचेता के १० दश पुत्र हुए। उनसे

दक्ष प्रजापति और दक्ष से यह सब प्राणी। दक्ष के जितने पुत्र हुए उनको नारद ने मोक्ष धर्म सांख्य शास्त्र सिखलाया। पुनः दक्ष के ५० कन्याएँ हुईं। धर्म को १० कश्यप को १३ और इन्दु को २७कन्याएँ दीं। दक्ष की ज्येष्ठा कन्या से कश्यप ने १२आदित्य उत्पन्न किये।

इन्द्रादीन् वीर्य्यसम्पन्नान् विवस्वन्तमथापि च।
विवस्वतः सुतो जज्ञ यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥११॥
मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतः प्रभुः ॥१२॥
यमश्चापि सुतोयज्ञ ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः।
धर्म्मात्मा स मनुर्द्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ॥१३॥
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ॥१४॥
ब्राह्मणामानवास्तेषां साङ्गंवेदमधारयन्॥१५॥आदिपर्व७५

विवस्वान् आदित्य के यम और मनु दो पुत्र हुए और मनु से ये सब मनुष्य हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र आदि सब ही मनुष्य मनु से उत्पन्न हुए इस हेतु ये 'मानव' कहलाते हैं उनमें ब्राह्मणों ने साङ्ग वेदों का ग्रहण किया।

इस लेख से भी सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि की सृष्टि की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि यहाँ कहा गया है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के पुत्र कश्यप। उस कश्यप का विवाह दक्ष की कन्या से हुआ। उससे विवस्वान् हुए और विवस्वान् के पुत्र मनु और मनु से ये सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वंश चले। फिर ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण हुआ यह बात कहाँ रही। पुराण के अनुसार 'मानव' शब्द ही बत-

लाता है कि 'मनुके' सब पुत्र हैं 'मनोरपत्यं मानवः' क्योंकि मनु के पुत्र को ही मानव, मनुष्य वा मनुज आदि शब्दों से व्यवहार करते हैं।

श्रूयतां भरतश्रेष्ठ यन्मां त्वं परि पृच्छसि ।
प्रजानां पतयो येऽस्मिन् दिक्षु ये चर्षयःस्मृताः ॥२॥
एकः स्वयम्भूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः ।
ब्रह्मणः सप्त वै पुत्रा महात्मानः स्वयम्भुवः ॥३॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महाभागः सदृशो वै स्वयंभुवा ॥४॥
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयंगयाः ।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानेव प्रजापतीन् ॥५॥
अत्रिवंशे समुत्पन्नः ब्रह्मयोनिः सनातनः ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्तस्मात्प्रचेतसो दश ॥६॥
दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः ।
तस्य द्वे नामनी लोके दक्षः क इतिचोच्यते ॥७॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी स्मृते ।
अरिष्टनेमिरित्येके कश्यपेत्यपरे विदुः ॥८॥शा०प०२०८॥

यहाँ महाराज युधिष्ठर से भीष्म पितामह कहते हैं कि हे भरत श्रेष्ठ ! आपने जो पूछा है सो सुनो। जो प्रजापतियों के नाम से सुप्रसिद्ध हैं उनका वर्णन करता हूँ। आदि में एक ही स्वयम्भू सनातन ब्रह्माजी हुए। इनके सात मानस पुत्र हुए। मरीचि, अत्रि,

अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, और वसिष्ठ, (१) अत्रि ऋषि के वंश में प्राचीनबर्हि हुए। प्राचीनबर्हि के प्रचेता एक नाम धारी दश पुत्र हुए। उन दशो प्रचेताओं के एक पुत्र दक्ष हुए। इनके दो नाम हैं। एक दक्ष दूसरा क। मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। इनके भी दो नाम हैं अरिष्टनेमि और कश्यप।

भर्गोऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
सविता चैव धाताच विवस्वाँश्च महाबलः ॥१५॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥१६॥
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतामष्टमस्य महात्मनः ॥१७॥
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥१८॥
आदित्याः क्षत्रियास्तेषांविशश्च मरुतस्तथा ॥२३॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥२३॥
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम् ॥२५॥

शा० प० २०८ ॥

---

(१) आदिपर्व अध्याय ६५ वें में ब्रह्मा के छः ही मानस पुत्र कहे गये हैं। परन्तु यहाँ वसिष्ठ को बढ़ाकर सात मानस पुत्र माने है। इसी शान्ति पर्व के एक स्थल में २१ एक विंशति प्रजापतियों का लेख है। ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तथायमः। मरीचिरंगिराऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ वसिष्ठः परमेष्ठीच विवस्वान् सोम एव च। कृतककर्दमश्चापि परेः प्रोक्तः क्रोधोविक्रम एव च एक विंशतिरुत्पन्नास्ते प्रजापतयः स्मृताः ॥

कश्यप के भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान् त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, और विष्णु, ये बारह पुत्र हुए जो आदित्य कहाते हैं। काश्यप अष्टम विवस्वान् के नासत्य और दस्र दो पुत्र हैं और त्वष्टा के विश्वरूप पुत्र। इत्यादि। अब आगे देवों में भी ब्राह्मणादि वर्ण कहते हैं। आदित्यगण क्षत्रिय हैं मरुद्गण वैश्य हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। और अङ्गिरा ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवों में चार वर्ण हैं।

यहाँ पर भी पूर्ववत् ही प्रायः वर्णन है। यहाँ विशेष यह देखते हैं कि देवों में वर्ण हैं। ये सब तो मुखादिक से नहीं उत्पन्न हुए हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। परन्तु यज्ञ में बराबर बुलाये जाते हैं। यज्ञ में पूजा पाते हैं तब मनुष्य शूद्र पूजा क्यों न पावे। इस प्रकार महाभारत से भी यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि मुखादिक अङ्ग से ब्राह्मणादिकों की सृष्टि हुई। सृष्टि प्रकरण पर ध्यान देना चाहिये। यदि इससे चारों वर्णों की उत्पत्ति मुखादि से सिद्ध न हो तो कदापि नहीं मानना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और रामायण।

प्रश्न—क्या वाल्मीकि रामायण से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि हुई है।

उत्तर—नहीं! देखिये और ध्यान से विचारिये।

सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥३॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पत्रैः कृतात्मभिः ॥४॥

कश्यप के भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान् त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, और विष्णु, ये बारह पुत्र हुए जो आदित्य कहाते हैं। काश्यप अष्टम विवस्वान् के नासत्य और दस्र दो पुत्र हैं और त्वष्टा के विश्वरूप पुत्र। इत्यादि। अब आगे देवों में भी ब्राह्मणादि वर्ण कहते हैं। आदित्यगण क्षत्रिय हैं मरुद्गण वैश्य हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। और अङ्गिरा ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवों में चार वर्ण हैं।

यहाँ पर भी पूर्ववत् ही प्रायः वर्णन है। यहाँ विशेष यह देखते हैं कि देवों में वर्ण हैं। ये सब तो मुखादिक से नहीं उत्पन्न हुए हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। परन्तु यज्ञ में बराबर बुलाये जाते हैं। यज्ञ में पूजा पाते हैं तब मनुष्य शूद्र पूजा क्यों न पावे। इस प्रकार महाभारत से भी यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि मुखादिक अङ्ग से ब्राह्मणादिकों की सृष्टि हुई। सृष्टि प्रकरण पर ध्यान देना चाहिये। यदि इससे चारों वर्णों की उत्पत्ति मुखादि से सिद्ध न हो तो कदापि नहीं मानना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और रामायण।

प्रश्न—क्या वाल्मीकि रामायण से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि हुई है।

उत्तर—नहीं! देखिये और ध्यान से विचारिये।

सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥३॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥४॥

आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतोनित्यअव्ययः ।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥५॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥ ६ ॥

अयोध्याकाण्ड ११० वें सर्ग में इस प्रकार से सृष्टि का वर्णन है। प्रथम सब जल था। उस पर पृथिवी बनी। तब देवता सहित ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वराह हो पृथिवी उद्धार किया और अपने पुत्रों के साथ सब सृष्टि रची। और इस प्रकार वंश चला। ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, बाण, अरण्य, पृथु, त्रिशङ्कु, धुन्धुमार, युवनाश्व, मांधाता, सुसन्धि, ध्रुवसन्धि, भरत, असित, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, कल्माषपाद (सौदास) शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रुव, अम्बरीष, नहुष, नाभाग, अज, दशरथ, राम इत्यादि उत्तर-उत्तर पुत्र जानना अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र मरीचि मरीचि के पुत्र कश्यप और कश्यप के पुत्र विवस्वान् और विवस्वान् के पुत्र मनु इत्यादि। यहाँ मुखादि के ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। और एक आश्चर्य यह है कि यहाँ मरीचि के प्रपौत्र 'मनु' कहे गये हैं। परन्तु मनुस्मृति में मनु के पुत्र 'मरीचि' माने गये हैं। (१) यह उलटी बात और मनुस्मृति में विराट् के पुत्र मनु हैं। परन्तु यहाँ विवस्वान् के। यदि कहो कि कल्प-कल्प की बात है तो मैं पूछता हूँ कि रामायण में श्री रामचन्द्र की कथा किस कल्प की बात है और मनुस्मृति किस कल्प की है। कल्प का झगड़ा अनभिज्ञ लोगों ने लगाया है।

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। मनु० १। ३५।

यहाँ ब्रह्मा ही वराह होकर पृथिवी ले आए हैं। भागवत में ब्रह्मा से वराह भगवान् उत्पन्न हो उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया ऐसा वर्णन है। पुनः—

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन्।
तन्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥
कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम्।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेता पुलहस्तथा ॥ ८ ॥
दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव।
कश्यपश्च महातेजास्तेषा मासीच्च पश्चिमः ॥ ९ ॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः।
षष्ठिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥ १० ॥
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः।
अदितिं च दितिंचैव दनूमपिच कालकाम् ॥ ११ ॥
ताम्रां क्रोधवशांचैव मनुंचाप्यनलामपि।
तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥

अर० १४

जटायु गृध्र रामचन्द्र से कहते हैं कि हे राम! पूर्व काल में जो प्रजापति हुए हैं उन सबों के नाम सुनो। ६। कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और कश्यप ये १७

प्रजापति हुए (१) । ६ । प्रजापति दक्ष की ६० कन्याएँ हुईं । उनमें से कश्यप ने आठ कन्याएँ लीं । अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु (२) और अनला ।

१—अदिति से, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्वी दोनों । २—दिति से—दैत्यगण ३—दनु से दानवगण । ४—कालका से नरकादि । ५—ताम्रा से पाँच कन्याएँ इत्यादि वर्णन रामायण में देखिये । अब मनुष्य की उत्पत्ति सुनिये ।

मनुर्मनुष्यान् जनयत् कश्यपस्य महात्मनः ।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥२६॥

कश्यप की स्त्री मनु ने मनुष्यों को उत्पन्न किया है । नरेश राम ! ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों को मनु नाम की स्त्री ने ही उत्पन्न किया । यहाँ पर देखते हैं कि कश्यप जी ने अपनी स्त्री मनु से मनुष्यों को क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य शूद्र सबों को उत्पन्न किया । यहाँ मैथुनी सृष्टि का वर्णन है । इस वर्णन से भी यहाँ सिद्ध होता है कि मुखादि से सृष्टि नहीं हुई यदि कहो कि स्त्री के मुखादिक अङ्गों से ही कश्यप ने ब्राह्मणादिक चारो वर्णों को उत्पन्न किया हो तो यह भी कहना उचित नहीं । क्योंकि प्रथम तो यह घृणित और विरुद्ध बात है और इसका इसमें वर्णन होना चाहिये था कि मनु के वा कश्यप के मुख से ब्राह्मण हुए ।

---

(१) मनुस्मृति में दश प्रजापति कहे गये हैं । उनमें मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य आदि हैं ।

(२) यहाँ आश्चर्य प्रतीत होता है कि 'मनु' नाम की एक स्त्री मानी गई हैं । और इसी मनु स्त्री से आगे मनुष्य की उत्पत्ति कहा है । जिस कारण 'मनुष्य' मनुज-मानव आदि नाम मनुष्य के हुए हैं । परन्तु अन्य ग्रन्थ 'मनु' को पुरुष मानते हैं और उससे मनुष्य की सृष्टि ।

और अन्य ग्रन्थ में ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति मानी है। यदि यहाँ कश्यप से मानों तो भी अनिष्ट ही होगा। प्रकरण के देखने से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा से १७ प्रजापति हुए। दक्ष और कश्यप दोनों भ्राता ही थे। दक्ष की कन्याओं से कश्यप ने विवाह किया। उनमें मनु नाम की एक स्त्री थी। उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए। जब ये सब उत्पन्न हो गये तब पुनः कौनसी आवश्यकता रही कि मुखादिक अङ्गों से पुनः ब्राह्मणादिकों की सृष्टि करते। अतः जहाँ जहाँ मुखादिक से सृष्टि का वर्णन है वह ग्रन्थानुसार ही मिथ्या और क्षेपक सिद्ध होता है। उत्तर काण्ड के वर्णन से भी यही सिद्ध होता है यथा—

अमरेन्द्र मया बुद्धया प्रजाः सृष्टास्तथाप्रभो।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः॥ १९॥
तासांनास्तिविशेषोहि दर्शने लक्षणेपि वा॥२०॥

उत्तरकाण्ड ३०॥

ब्रह्मा जी इन्द्र से कहते हैं कि हे अमरेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि से ऐसी मानवी सृष्टि की कि सब ही एक वर्ण थे। एक ही भाषा थी एक रूप था। दर्शन और लक्षण में कोई भेद नहीं था।

यह भी सिद्ध करता है कि आदि सृष्टि में सब एक प्रकार के थे और मुखदि से सृष्टि नहीं हुई। धीरे धीरे वर्ण बनते गये।

यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो रामायण में अप्रासंगिक सृष्टि प्रकरण प्रतीत होता है श्री रामचन्द्र को क्रुद्ध देख वसिष्ठ महाराज रामचन्द्र को सृष्टि प्रकरण सुनाने लगे। यह अयोध्या काण्ड की वार्ता है क्रोधावस्था में ऐसे कठिन विषय को सुनाना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है और बिना प्रश्न कहना भी वसिष्ठजी के लिये शोभित नहीं है। और जब गृध्रराज मिले तब बिना पूछे प्रजा-

पतियों की वंशावली कहने लगे। यह भी कोई प्रसंग नहीं था यह अरण्य काण्ड की वार्ता है। उत्तर काण्ड यथार्थ में वाल्मीकि लिखित नहीं है। रामायण छः ही काण्ड थे पीछे से उत्तर काण्ड किसी ने रचकर रक्खा है। वाल्मीकीय रामायण एक अद्भुत काव्य है काव्य में प्राकृतिक दृश्य चित्रित किये जाते हैं। न कि न्याय वा सांख्य शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों की कठिन फक्किकाएँ हल की जाती हैं। इस हेतु यह सब अमन्तव्य हैं। परन्तु इस अवस्था में भी ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न हुआ यह प्रकरणानुकूल सिद्ध नहीं होता।

'भागवत और सृष्टि प्रकरण'

प्रश्न—क्या भागवत से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि से ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए।

उत्तर—नहीं। क्योंकि सृष्टि प्रकरण देखने से विदित होता है कि भागवत भी ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि नहीं मानता है। देखिये—

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥
तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्म्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥

भागवत ३ ।१२॥

तृतीयस्कन्ध श्रीमद्भागवत में लिखा है कि मनुष्य सृष्ट्यर्थ प्रथम ब्रह्मा ने सनक, सनन्द, सनातन, और सनत्कुमार, चार मानसपुत्र उत्पन्न किये और उनसे कहा कि प्रिय पुत्रो ? प्रजाओं की सृष्टि करो। परन्तु उन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया तब ब्रह्माजी को अति क्रोध हुआ। इसी अवस्था में ललाट देश से

रुद्र उत्पन्न हुआ। इसने ब्रह्मा की आज्ञा से तामसी सृष्टि की। इससे भी ब्रह्माजी प्रसन्न नहीं हुए तबः—

अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे ।

भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तान हेतवः ॥२१॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।

भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

प्रजा वृद्धि के लिये ध्यान करते हुए भगवान की शक्ति से युक्त ब्रह्माजी के १० दश पुत्र हुए। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, और दशम नारद, (१) आगे पुनः कहते हैं कि एक कर्दम भी ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न हुए। इससे भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब—

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा

कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥५२॥

ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।

यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥५३॥

स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महीष्यस्य महात्मनः ।

तदा मिथुनधर्म्मेण प्रजाह्येधांबभूविरे ॥५४॥

स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ।

---

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठ च भृगुं नारदमेव च ॥मनु० १।३५॥

यहाँ दक्ष के स्थान में प्रचेतस है। परन्तु मनुस्मृति में ये १० दशों मनु पुत्र कहे गये हैं।

प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥५५॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ।
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितंजगत् ॥५६॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए और दैवपर विश्वास करते हुए ब्रह्माजी का शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। उन दोनों भागों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ उसमें जो पुरुष था वह मनु स्वायंभुव और स्वराट् नाम से प्रसिद्ध हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा कहाने लगी (१) जो मनुजी की धर्म्म पत्नी हुई। तब मिथुन धर्म्म से प्रजाएँ बढ़ने लगीं। शतरूपा में पाँच सन्तान हुए। प्रियव्रत, उत्तानपाद ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति और प्रसूति ये तीन कन्याएँ। रुचि को आकूति, कर्दम को देवहूति और दक्ष को प्रसूति दी। पुनः आगे कहते हैं।

---

(१) नोट—मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्माजी अपने शरीर को दो भागों में बाँट स्त्री-पुरुष हो उसमें प्रथम विराट् नामक पुत्र को उत्पन्न किया है और उस विराट् ने मनु को। और मनु ने १० प्रजापतियों को यथाः—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥३२॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
मां वित्तास्य सर्वस्यस्रष्टारंद्विजसत्तमाः ॥३३॥
अहं प्रजाःसिसृक्षुस्तुतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजानामसृजंमहर्षीनादितोदश ॥३४॥ इत्यादि। प्रथमाध्याय ॥

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृप ।
पुत्रिकाधर्म्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥२॥
प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥
चतुर्थस्कन्ध १ ॥

यद्यपि आकूति के दो भाई भी थे तथापि विवाह के समय मनुजी ने यह कहा कि इसमें जो पुत्र होंगे उनमें से एक पुत्र मैं लूँगा। रुचि ने आकूति में दो सन्तान उत्पन्न किये। एक यज्ञ और दूसरी कन्या दक्षिणा। युवा होने पर यज्ञ का अपनी बहिन दक्षिणा से विवाह हुआ। भागवत में कहा गया है जो यज्ञ था वह साक्षात् विष्णु ही थे और जो दक्षिणा थी वह लक्ष्मीजी का स्वरूप था। इस हेतु भाई बहिन में ही विवाह हुआ है। इन दोनों के योग से तोष, प्रतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, खड्ग, सुदेव, और रोचन, ये बारह पुत्र हुए ये तुषित नाम देव कहाते हैं।

प्रियव्रत और उत्तानपाद के अनन्तपुत्र पौत्र हुए। कर्दम और देवहूति से कपिल आदि सन्तान हुए "पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत्" कर्दम कन्या कला ने मरीचि ऋषि के योग से कश्यप और पूर्णिमा दो सन्तान उत्पन्न किये जिनसे यह सम्पूर्ण जगत पूर्ण हुआ। अत्रि के अनुसूया से तीन पुत्र हुए। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इत्यादि कथा श्रीमद्भागवत में देखिये।

यहाँ केवल यह दिखलाना है कि भागवत से भी पूर्वोक्त विषय सिद्ध नहीं होता। क्योंकि प्रथम ब्रह्मा के जो सनकादि चार पुत्र हुए उन्हें आप क्या कहेंगे। क्योंकि ये किसी अङ्ग से उत्पन्न नहीं हुए। पुनः मनुजी की भी यही बातें हैं इनको भी

चारों वर्णों में से किसी में नहीं गिन सकते हैं। मनुजी से ही आगे सब वंश चले हैं। इसी कारण मनुष्य 'मानव' कहलाये हैं। अतः सम्पूर्ण मनुष्य सृष्टि को भी ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं कह सकते। फिर आप बतलावें कि मुखादि से कौन-सा वंश चला।

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात् स्वयंभुवः।
प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः ॥२३॥
पुलहो नाभितोजज्ञे पुलस्त्यःकर्णयोर्ऋषिः।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥
छायायाःकर्दमोजज्ञे देवहूत्याःपतिः प्रभुः ॥२७॥

भा० ३।१२॥

यहाँ भागवत कहता है कि ब्रह्माजी की गोदी में से नारदजी, अँगूठे में से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ त्वचा में से भृगु, हाथ में से क्रतु ॥ २३ ॥ नाभि में से पुलह कर्ण से पुलस्त्य, मुख में से अङ्गिरा, नेत्रों से अत्रि, और मन से मरीचि हुए ॥ २५ ॥ ब्रह्मा की छाया से देवहूति के पति प्रभु कर्दम उत्पन्न हुए इत्यादि ॥ २७ ॥

यद्यपि यहाँ अङ्गों में से उत्पत्ति का वर्णन है। परन्तु ये ब्रह्मा के १० दशों मानसपुत्र हैं। और इनकी प्रतिष्ठा ऋषियों में है। इनका न आप ब्राह्मण न क्षत्रिय न वैश्य और न शूद्र कहेंगे। ये प्रजापति और मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि इनमें कौन शूद्र हैं ? और नारदादिक दशों में से किसका सन्तान शूद्र हुआ है। प्रत्युत ये दशों ब्राह्मण के ही नाम से पुराणों में उक्त हैं। फिर उत्पत्तिस्थान भिन्न होने पर भी कुछ सिद्ध नहीं हुआ। प्रत्युत आज कल भी देखते हैं इन सबों से सब वर्ण उत्पन्न

हुए हैं। अतः भागवत का सिद्धान्त भी ब्राह्मणादिकों को मुखादिकों से उत्पत्ति माननेवाला सिद्ध नहीं होता।

विष्णुपुराण और सृष्टि।

अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४॥
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमंगिरसं तथा।
मरीचिं दक्ष मत्रिञ्च वसिष्ठं चैव मानसान् ॥ ५ ॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसाः ॥ ३ ॥
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते।
सर्वे ते चागतज्ञाना वीतरागाविमत्सराः ॥ ७ ॥
ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वायंभुवं प्रभुः।
आत्मान मेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥ १४ ॥
शतरूपांच तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः ॥ १५ ॥
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रकृत्याकृतिसंज्ञितम् ॥ १६ ॥
कन्याद्वयं च धर्म्मज्ञं रूपौदार्यगुणान्वितम्

॥ विष्णुपुराण १ ७ ॥

ब्रह्माजी ने अपने समान मानस पुत्र उत्पन्न किये। भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, और वसिष्ट।

ये नव मानस पुत्र ब्रह्माही कहाते हैं। (१) अर्थात् ये नवों ब्राह्मण ही हैं और जो प्रथम सनकादिक सृष्ट हुए वे प्रजोत्पादन में आसक्त नहीं हुए। तब ब्रह्माजी ने मनु और शतरूपा को प्रकट किया मनु ने पत्नी के लिए शतरूपा का हस्तग्रहण किया। इन दोनों के योग से प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और प्रकूति और आकूति दो कन्याएं हुईं।

आगे लिखा है कि इनमें से सारी सृष्टि हुई। विष्णुपुराण में भी कहीं नहीं कहा है कि अमुक मनुष्य वा प्रजापति पैर से उत्पन्न हुए और उनका वंश शूद्र हुआ। आप यहां पर भी देखते हैं कि ब्रह्माजीने अपने शरीर से उनको उत्पन्न किया और मनु से यह सारी सृष्टि हुई। अब आप विचार करें कि ब्रह्माजी ने कब मुखादिक से ब्रह्मणादिक वर्ण सृजे। यदि सृजे भी तो वे कौन थे उनका क्या नाम था। और भृगु आदिकों से जो आदि सृष्टि में मनुष्य उत्पन्न हुए वे किस वर्ण के हुए इत्यादि पता यदि लगाइए तो किसी पुराण से भी यह सिद्ध नहीं होगा कि अमुक पुरुष ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुआ इति। संक्षेपतः।

दुर्जन सन्तोष न्याय को अवलम्बन कर किञ्चित काल के लिए मान भी लिया जाय कि मुखसे ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए। फिर इससे ब्रह्मा जी का क्या मनोरथ सिद्ध हुआ? नहीं। क्योंकि उन्होंने इनमें कोई विशेष चिन्ह नहीं निर्माण किया। जैसे पशु पक्षी मत्स्यादि को में भिन्नता सूचक एक २ चिन्ह विशेष स्थापित किया है वैसा इन मनुष्यों में कोई नहीं। गौ के सिर पर सींग होती है। घोड़े

नोट—भागवत में दस मानस पुत्र कहे गये हैं। अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे। ३। १२।

वा गदहा के सिर पर सींग कदापि नहीं। और उनकी आकृति प्रभृति में भी बहुत भिन्नता है जिससे मनुष्य झट पहचान लेता है कि यह घोड़ा है और यह गाय है। इसके पहचान के लिए शास्त्र में कोई झगड़ा नहीं। इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि में भी कोई विशेष चिन्ह लगा देते जिससे शास्त्रीय द्वन्द्व नहीं होता, जब ब्रह्मा ने इन मनुष्यों में कोई विशेष चिन्ह स्थापित नहीं किया तो ब्राह्मणादिकों को मुखादिक अंगों से उत्पन्न करना भी व्यर्थ ही है।

पुनः क्या मुख से मलिन पदार्थ नहीं निकलता है? मुख से उत्पत्ति होने से ही केवल किसी की श्रेष्ठता नहीं हो सकती है। ब्रह्मा के सब ही अंग पवित्र हैं। जो पुरुष श्रेष्ठ है उसका चरण भी पूज्य ही होता है। लोग चरण का ही पूजा करते हैं। चरण को ही छू कर प्रणाम करते हैं। पुनः देखिए भगवान् के चरण से निकल हुई गंगा कैसी पवित्र मानी जाती है। इसके दर्शन से अपने को लोग कृतकृत्य समझने लगते हैं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के चरण से शूद्र उत्पन्न है तो वह नीच कैसे हुआ। बल्कि गंगा के समान शूद्रों को आदर सत्कार करना चाहिये। क्योंकि दोनों की उत्पत्ति पैर से है। पुनः पुराणों में इस पृथ्वी की पैर से उत्पत्ति मानी है। वह पृथिवी माता के नाम से पुकारी जाती है और धरिणी देवी की पूजा होती है। अतः पृथिवीवत् शूद्रों को भी पिता की पदवी मिलनी चाहिये। क्योंकि दोनों पैर से हैं उनमें से एक को माता कहें और दूसरे को निरादर करें यह कौनसी मर्यादा है।

मुखाद्यवयव से उत्पत्ति मानना बड़ी अज्ञानता का विषय है। मैंने यहाँ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सब ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि इन ग्रन्थों से भी यह विषय सिद्ध नहीं होता।

इस कारण आदि सृष्टि से ही और जन्म से ही यह वर्ण व्यवस्था है ऐसे कहने वाले अपने पक्ष को कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। अतः यह सर्वथा त्याज्य है। और "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का तात्पर्य्य भी वे लोग यथार्थ प्रकट नहीं करते। एतदर्थ मैंने इसके आशय को भी यहाँ प्रकाशित किया है।

मुखज और बाहुज आदि शब्द।

"ब्रह्मा के अथवा ईश्वर के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादिक वर्णों की उत्पत्ति हुई है" ऐसा मत देश में कब से उत्पन्न हुआ। इसका पता लगाना भी कुछ कठिन नहीं। यदि आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों में थोड़ा सा भी हम लोग परिश्रम करें। प्रथम तो आर्षग्रन्थों में चतुर्मुख ब्रह्मा की कहीं भी चर्चा नहीं। और दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा विष्णु आदि कोई व्यक्ति विशेष नहीं। वायु के स्थान में ब्रह्मा एक कल्पित देव पौराणिक समय में माना गया है। इस हेतु आर्ष ग्रन्थ जिस समय बने थे उस समय तक यह मत देश में प्रचलित नहीं हुआ था यह सिद्ध होता है। अन्य प्रकार से भी इसकी परीक्षा कर सकते हैं। बहुत से इतिहासों का पता केवल शब्दों के द्वारा ही लग सकता है। उदाहरण के लिए 'हिन्दू' और 'स्कूल' शब्द को लीजिये। वेद से लेकर कालिदास के ग्रन्थ पर्य्यंत 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है परन्तु मुसलमान के आगमन के पश्चात् के ग्रन्थों में 'हिन्दू' शब्द का और अंगरेज के आने के पिछले ग्रन्थों में 'स्कूल' शब्द का बहुत प्रयोग है। इससे सिद्ध होता है कि मुसलमान के आगमन के पीछे यहाँ के लोग 'हिन्दू' कहलाने लगे और अङ्गरेज के राज्य में 'स्कूल' शब्द का प्रचार हुआ है। इसी प्रकार 'मुखज' 'बाहुज' आदि शब्दों से उस विषय का निर्णय हम सहजतया कर सकते हैं। आजकल

ब्राह्मणवर्ण के लिये मुखज, अग्रज, अग्रजन्मा आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज बाहुजन्मा आदि, वैश्य के लिये ऊरव्य, ऊरुज, ऊरुजन्मा, मध्यम, आदि और शूद्र के लिये पज्ज, पादजन्मा, चरणज, अन्त्यज आदि शब्दों के प्रयोग देखते हैं यथा "आश्रमोऽर्ध्वा द्विजात्यग्रजन्म भूदेव वाड़वाः" द्विजाति, अग्रजन्मा, भूदेव, और वाड़व इत्यादि ब्राह्मणों के नाम "मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्" मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय के नाम "ऊरव्या उरुजा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः" ऊरव्य, ऊरुज, अर्य, वैश्य, भूमिस्पृक् और विट् आदि वैश्य के नाम "शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज शूद्रों के नाम हैं। यह अमरकोश का वचन है। यहाँ अग्रजन्मा, बाहुज, ऊरुज, और जघन्यज अर्थात् पादज, शब्द के प्रयोग हैं। "अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः" मनुः। अग्रजन्मा (अग्रेजन्म यस्य सः अग्रजन्मा) सबसे आगे जन्म है जिसका उसे अग्रजन्मा कहते हैं) अर्थात् ब्राह्मण के अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह ये छः कर्म्म हैं। 'वत्स-वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभां। तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः' यह बचन भावप्रकाश का है। हे वत्स काशी जाओ। वहाँ 'बाहुज' अर्थात् जिसकी उत्पत्ति बाहु से हुआ है अर्थात् क्षत्रिय, दिवोदास राजा रहता है। "रजकश्चर्म्मकारश्च नटो वरुड एव च। कैवर्त मेद भिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः" ॥ इति यमवचनम् ॥ "प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः" मनु० "अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि" प्रायश्चित्ततत्त्व। रजक, चर्म्मकार, नट, वरुड़, कैवर्त, मेद, भिल्ल, ये सातों अन्त्यज। इत्यादि अनेक स्थानों में अग्रजन्मा, बाहुज आदि शब्द

मिलते हैं इससे सिद्ध होता कि इन ग्रन्थों की रचना के समय में मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त चल पड़ा था क्योंकि उस अर्थ के सूचक अग्रजन्मादि शब्द भी विद्यमान हैं। परन्तु न तो चारों वेदों में और न उपनिषद् पर्य्यन्त वैदिक आर्षग्रन्थों में अग्रजन्मा वाहुज ऊरुज और अन्त्यज ये चारों शब्द अथवा इस प्रकार के कोई शब्द हैं। इससे स्वतः सिद्ध है कि वेद से लेकर आर्ष ग्रन्थ की रचना के समय तक मुखादि से उत्पत्ति मानने का मत देश में नहीं चला था इस प्रकार शब्द का प्रयोग भी हमें इतिहास सूचित करता है कि मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त कब से चला और इससे यह भी सिद्ध होता है कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का अर्थ मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति है ऐसा नहीं करते थे। जब से वैसा अर्थ करने लगे तब से तदर्थ सूचक शब्दों के भी प्रयोग होने लगे।

प्रश्न—क्या भगवान् के किसी अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति वेद वर्णन करते हैं?

उत्तर—नहीं। देखिये। इस शरीर में जो जीवात्मा है वह अनादि है। इस को किसी ने नहीं बनाया। यह अजर अमर है। जो यह शरीर है वह पाञ्चभौतिक है। और पञ्चभूत प्रकृति के विकार हैं। वह प्रकृति भी अनादि है। प्रकृति और जीवात्मा के संयोग से यह चराचर विश्व बना है। इसमें परमात्मा केवल निमित्त कारण है। जैसे मृत्तिकादि सामग्री लेकर कुम्भकार बिविध पात्र रचता है वैसे ही सर्वनियन्ता सर्वान्तर्यामी सर्वजनयिता परब्रह्म परमेश्वर अनादि जीव और प्रकृति को लेकर भूर्भुवादि ब्रह्मण्ड रचा करता है। अपने शरीर के माँस रुधिर मज्जा आदि नोंच कर सृष्टि करने की आवश्यकता ईश्वर को नहीं है। इसमें ये कारण हैं वेद शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म निरवयव

निर्विकार और सर्वव्यापी है। जब उसका कोई अवयव नहीं है तो किस अङ्ग (अवयव) से सृष्टि बनावेगा। पुनः वह निर्विकार है। यदि वह किसी अङ्ग से मिट्टी आदि निकाल कर सृष्टि रचे तो वह सविकार हो जायगा। परन्तु वेद कहता है कि वह निर्विकार है। इस हेतु वह किसी अङ्ग से भी सृष्टि नहीं रचता है। यदि कहो कि जैसे दूध से दही हो जाता है वैसे ही ब्रह्म स्वयं सृष्टि बन जाता है तो यह भी कथन ठीक नहीं है। क्योंकि इससे तो ब्रह्म स्वयं दुग्धवत् नष्ट हो जायगा क्योंकि दूध के अस्तित्व नष्ट होने से ही दही बनता है। और यदि सब ब्रह्म ही है तो वेद-विहित सर्व साधन भी व्यर्थ हो जायँगे। क्योंकि ब्रह्म स्वतः प्राप्त है अथवा स्वयं ही ब्रह्म है अथवा ब्रह्म कोई सृष्टि से भिन्न वस्तु ही नहीं रही जिसकी प्राप्ति का परमोपाय किया जाय। अतः यह मत सर्वथा वेद विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है। "कृत्स्नप्रसक्ति र्निरवयवशब्दकोपोवा। वेदान्तसूत्र अ० २। पा० १ सू० २६। इस सूत्र में इसी विषय का कृष्णद्वैपायन ने निर्णय किया है ईश्वर के निरवयवत्व और निर्विकारत्व में सहस्रशः प्रमाण वेद और शास्त्रो में आते हैं परन्तु यहाँ सृष्टिप्रकरण का निर्णय करना नहीं है। केवल मनुष्यसृष्टि का वर्णन ही अभीष्ट है। तथापि दो एक प्रमाण ये हैं—यथाः

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" इत्यादि यजुः। "निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि कठोपनिषद्। "इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव" इत्यादि बृहदारण्यकोपनिषद्

२—क्या वेदों में मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन है? उत्तर—है। अन्यान्य सृष्टि के वर्णन के समान मनुष्य सृष्टि का भी वर्णन आता है। परन्तु आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान

देना चाहिये कि मनुष्य के लाभ सम्बन्धी विषयों का वर्णन वेदों में अधिक है। जिनसे विशेष लाभ नहीं वैसे विषयों का वर्णन वेदों में बहुत न्यून है। मान लीजिये कि आपको मनुष्य-सृष्टि का भेद विदित भी हो जाय फिर इससे आपको क्या लाभ पहुँचेगा। निःसन्देह कर्म्म करने से मनुष्य को लाभ पहुँचा करता है। उनका विस्तार पूर्वक वर्णन वेद करते हैं। तथापि मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के हेतु भगवान् ने इसका भी संक्षेप निरूपण अपनी वाणी में किया है यथा :—

स पूर्वया निविदा कव्यताऽयोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १।९६।२

पूर्वा=पहला। निवित्=मंत्र, ऋचा, ज्ञान। कव्यता=कव्य+ता+ज्ञानविस्तारक। आयुः=जीवात्मा। मनु=मनुष्य। विवस्वान्=सूर्य। चक्ष=चक्षु, नेत्र। द्रविणोदा=सकल पदार्थ देनेवाला (सः+कव्यता) परम ज्ञानी वह परमात्मा (पूर्वया+निविदा) पूर्व ज्ञान के साथ अर्थात् पूर्ववत् विज्ञान के साथ (आयोः) जीव के निमित्त (मनूनाम्) मनुष्य सम्बन्धी (इमाः+प्रजाः) इन प्रजाओं को (अजनयत्) उत्पन्न किया करता है। और (विवस्वता चक्षसा) सूर्य्यरूप नेत्र के साथ (द्याम्) द्युलोक (अपः+च) अन्तरिक्ष पृथिवी आदि की सृष्टि करता है ऐसे (अग्निम्) देदीप्यमान परमात्मा को (द्रविणोदाम्) सकल पदार्थ दाता जान हे मनुष्यो! (धारयन्) स्तुति प्रार्थना के द्वारा धारण करो।

इसका भाव यह है कि पूर्व सृष्टि में जिस ज्ञान के साथ और जिन सामग्रियों से इस मनुष्य जाति को उत्पन्न किया था। वैसा

ही किया करता है। इस मन्त्र में किसी अवयव से सृष्टि का वर्णन नहीं है किन्तु ज्ञान वा वेद के साथ मनुष्य सृष्टि का कथन है इसी हेतु मनुष्य सर्वजीवापेक्षया ज्ञानी है। यह प्रत्यक्ष ही है। निविद् में नि और विद् शब्द है। नि = विशेष। अधिक। विद् = ज्ञान। प्राणीमात्र यत्किञ्चित् ज्ञान के साथ उत्पन्न किया गया है। परन्तु मनुष्य अधिक ज्ञान के साथ प्रकट किया गया है। इससे अधिक वेद नहीं बतलाता। यदि मुखादिक से मनुष्योत्पत्ति माननेवाला वेद रहता तो यहाँ अवश्य इसका वर्णन करता।

यजुर्वेद और सृष्टि।

३ क्या यजुर्वेद मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन करता है? उत्तर-हाँ। करता है परन्तु यजुर्वेद केवल यह हम जीवों को उपदेश देता है कि परमात्मा ने ही सबको रचा है। इसी की स्तुति, प्रार्थना, उपसना किया करो। इससे अधिक नहीं परन्तु किस सामग्री से मनुष्य रचा और किसको पहले उत्पन्न किया किस प्रकार से किया इत्यादि विशेष वर्णन नहीं करता है।

१ एकयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापति रधिपति रासीत्। २ तिसृभिरस्तुवत ब्रह्माऽसृज्यत ब्रह्मणस्पति रधिपतिरासीत्। ३ पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानांपति रधिपतिरासीत्। ४ सप्तभिरस्तुवत सप्तऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत्॥ २८॥ यजु०॥ १४॥

अर्थः—हे मनुष्यो! (एकया) एक सत्य वाणी से उसी परमात्मा की (अस्तुवत) स्तुति करो। क्योंकि इसी ने (प्रजाः

अधीयन्त) हम तुम प्रजाओं को विद्या पढ़ाई है अर्थात् जिसने स्तुति प्रार्थना के लिये वेद वाणी को मनुष्यों में दिया है उसकी स्तुति प्रार्थना करो। अथवा जिन्होंने सब प्रजाएँ उत्पन्न की हैं 'अधीयन्त' का उत्पन्न करना भी अर्थ है। और वही (प्रजापतिः+अधिपति+आसीत्) प्रजाओं का पति और अधिपति भी है ॥ १ ॥ (तिसृभिःअस्तुवत) हे मनुष्यो ! ऋग, यजु, और साम इन तीनों से उसकी स्तुति करो क्योंकि उसी ने (ब्रह्म+असृज्यत) वेद अथवा वेद के तत्त्वज्ञ अध्ययन—अध्यापन कर्ता पुरुष को उत्पन्न किया है और वही (ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्) वेद और ब्राह्मण दोनों का पति और अधिपति है ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! (पञ्चभिः+अस्तुवत) पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूत के द्वारा उसकी स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (भूतानि असृज्यन्त) पञ्च महाभूतों को प्रकाशित किया है और वही (भूतानाम्+पतिः+अधिपतिः+आसीत्) महाभूतों का पति और अधिपति है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! (सप्तभिः+अस्तुवत) दो आँख, दो कान, दो घ्राण और एक जिह्वा इन सातों के द्वारा उसी की विभूति आँखों देखो, कानो सुनो, घ्राणों सूँघो और जिह्वा से गाओ। उसी ने (सप्तऋषयः) चक्षुरादि सातों ऋषियों को प्रकट किया है और वही (धाता+अधिपतिः+आसीत्) उनका धाता और अधिपति है। 'सप्तर्षि' नाम इन्द्रियों का बहुधा आया करता है।

५ नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्त ऽदितिरधिपत्न्यासीत् ।
६ एकादशभिरस्तुवत ऋषयोऽसृज्यन्ताऽऽर्त्तवा अधिपतय-

अस्तुवत = मैंने कई एक स्थान में कहा है कि वेद में लिट्लङ्लुङ सर्व काल में होता है। और वचन का भी व्यत्यय होता है।

आसन् । ७ त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त सम्बत्सरोऽधिपतिरासीत् । ८ पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रो ऽधिपतिरासीत् । ९ सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पति रधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

यजु० ॥ १४ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (नवभिः+अस्तुवत) इस शरीर में दो आँखें दो कान दो घ्राण, एक मुख, एक मूत्रोत्सर्गेन्द्रिय और एक पुरीषोत्सर्गेन्द्रिय ये नव द्वार हैं इन पर शरीर निर्भर है। इन नवों द्वारों से संयुक्त शरीर के द्वारा उसी की सेवा करो। क्योंकि (पितरः+असृज्यन्त) उसी ने इन द्वारों को बनाया है। "इन नव द्वारों का नाम पितर है क्योंकि इस शरीर की रक्षा ये सब करते हैं"। इन पितरों की माता (अदितिः) अखण्डनीय परमात्मा ही है और वही अदिति (अधिपत्नी+आसीत्) अधिपत्नी=अधिपति है ॥ ५ ॥ (एकादशभिः अस्तुवत) हे मनुष्यो ! पृथिवी पर कहीं कहीं ११ ऋतु होते हैं इन एकादश ऋतुओं की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (ऋतवः+असृज्यन्त) ऋतु प्रकट किये हैं। और वही (आर्तवाः+अधिपतयः+आसन्) ऋतुव्यापक अधिपति है ॥६॥ (त्रयोदशभिः अस्तुवत) १३ त्रयोदश मासों के द्वारा भी उसी के गुण का अध्ययन करो। क्योंकि इसी ने (मासाः+असृज्यन्त) मास प्रकट किये हैं और वही (सम्बत्सरः) मासों में निवास करनेवाला उनका अधिपति है ॥ ७ ॥ (पञ्चदशभिः+अस्तुवत) पन्द्रह प्रकार के बलों के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि (क्षत्रम्+असृज्यत) बल, वीर्य्य, शक्ति और बलवीर्य्यादिसम्पन्न

मनुष्य को उसी ने सिरजा है और वही (इन्द्रः+अधिपतिः+आसीत्) परमैश्वर्य्यशाली परमात्मा उस बलधारी पुरुष का भी शासनकर्ता अधिपति है ॥ ८ ॥ (सप्तदशभिः+अस्तुवत) १७ सप्तदश प्रकारों के पशुओं की रचनाकौशल के द्वारा उसी की स्तुति करो क्योंकि उसने (ग्राम्याः+पशवः+असृज्यन्त) ग्राम्य पशु उत्पन्न किये हैं और वही (बृहस्पतिः+अधिपतिः आसीत्) बृहस्पति परमात्मा उन पशुओं का अधिपति है ॥ ९ ॥

१०—नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपती आस्ताम् ११—एकविंशत्याऽस्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्। १२—त्रयोविंशत्याऽस्तुवत क्षुद्राःपशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। १३—पञ्चविंशत्याऽस्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्तवायुरधिपतिरासीत्। १४—सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥

यजु० ॥ १४ ॥

(नवदशभिः+अस्तुवत) १९ नवदश प्रकार की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और अर्य्य अर्थात् वैश्य दोनों को प्रकट किया है। इनके (अहोरात्रे+अधिपती+आस्ताम्) दिन और रात अधिपति हैं इत्यादि।

यहाँ पर आप देखते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन तो नहीं है किन्तु ईश्वर की विभूति का विवरण है। इसके साथ साथ कथित हुआ है कि क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या सम्पूर्ण जगत् इस सबका अधिपति और स्रष्टा परमात्मा ही है। वही

प्रार्थनीय उपासनीय है। यहाँ पर भी मुखादि से उत्पत्ति का वर्णन नहीं है।

प्रश्न—क्या अथर्ववेद में मनुष्य की सृष्टि का कुछ वर्णन है?

उत्तर—है! प्रसंगतः कई एक स्थलों में सृष्टि का वर्णन आया है कि उसी परमात्मा की कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् आविर्भूत हुआ। यहाँ उन मन्त्रों को भी दरसाऊँगा जिनको लोग सृष्टि-प्रकरण में लगाते हैं परन्तु यथार्थ में सृष्टि बोधक हैं नहीं। यथा :—

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥

अथर्व अ० ११। ७।२७॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा ये सब उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए और उसी के आश्रित सब हैं।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥

अथर्व० ४। ६। १॥

(प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (दशशीर्षः) दशमस्तिष्क (दशास्यः) दशमुख (ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (जज्ञे) उत्पन्न होता है (सः+प्रथमः) वह ब्रह्मवित् सर्वश्रेष्ठ पुरुष (सोमं+पपौ) सब पदार्थ का भोग करता है वह (विषम्+अरसम्+चकार) विषमय पदार्थ को अरस अर्थात् निर्वीर्य्य करता है।

भाव इसका यह है कि वेद, ईश्वर और ईश्वरीय पदार्थों के तत्त्व के जाननेवाला 'ब्राह्मण' कहलाता है। वह अन्यान्य क्षत्रिय वैश्यादि मनुष्यों की अपेक्षा कम से कम दश गुणा शिर अर्थात्

बुद्धि रखता है अतः ऐसे ब्रह्मवित् पुरुष को 'दशशीर्ष' और 'दशास्य' कहते हैं। यथार्थ में ऐसा ही ब्रह्मवित् सर्वपदार्थाधिकारी है और वह विषमय पदार्थ को भी अपनी बुद्धि से अच्छा बना लेता है। यहाँ केवल ब्रह्मवित् पुरुष की प्रशंसा मात्र का कथन है। यथार्थ में सृष्ट्युत्पत्ति कथन से तात्पर्य्य नहीं।

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ अथर्व० १५। ८। १

(सः) वह (अरज्यत) प्रजाओं के साथ सर्वथा रक्त अर्थात् सर्वथा मिश्रित होता है (ततः) अतः वह (राजन्यः+अजायत) राज्यन्य होता है। अर्थात् राजन्य वा राजा वही बनाया जाता है जो प्रजा के साथ मिलकर राज्य-कार्य्य साधन करता है। यह भी सृष्टि का निर्णायक नहीं। प्रसंगतः राजा कौन होता है इसका निरूपण है।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥१॥ श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते। तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२॥ अतो वै ब्रह्म च क्षत्रंचोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३॥ अथर्व० ।१५।१०॥

इस प्रकार ब्रह्म को जानता हुआ व्रतोपेत अतिथि यदि राजा के गृह पर आवे तो उसको अपने से श्रेष्ठ माने, मनवावे। जिससे कि उसके क्षात्रबल और राज्य के लिये कोई क्षति न पहुँचे। इसी से ब्रह्म और क्षत्र अर्थात् ब्रह्मबल और क्षत्रबल उत्पन्न हुए हैं। भाव यह है कि वेदाध्ययन, सत्यग्रहण और धर्म्मरक्षादि के लिये ही ब्राह्मण क्षत्रिय होते हैं। यदि उसी की रक्षा नहीं हुई तो पुनः इनका होना ही किस काम का। अतः जो व्रती अथिति गृह पर आवें उनका पूरा सत्कार करना चाहिये। यहाँ (उदतिष्ठताम्) का अर्थ यथार्थ में उत्पन्न होना नहीं है।

इस प्रकार वैदिक मन्त्र हमें अनेक स्थलों में उपदेश दे रहे हैं कि उसी परमात्मा से मनुष्य की भी सृष्टि हुई है। परन्तु मुखादिकों से ब्राह्मणादिक उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं पाते हैं। इस हेतु "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" का भी वैसा अर्थ करना उचित नहीं है। यहाँ मैंने तीनों वेदों के प्रमाण दिखलाये हैं। सामवेद ऋग्वेद के ही प्रायः अन्तर्गत है। अतः उसके उदाहरण की आवश्यकता नहीं। पुनः मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूँ कि वेद केवल लाभदायक पदार्थ का निरूपण करता है। यह सारी सृष्टि भगवान् के अङ्ग से या किसी अन्य पदार्थ से बनी, इससे मनुष्यों को कुछ विशेष लाभ नहीं अतः इस विषय को विशेष रूप से निर्णय वेद नहीं करता।

दूसरा कारण इसमें यह है कि मनुष्यजाति को ज्ञानविज्ञान-सहित ही ईश्वर ने प्रकट किया है यह निर्विवाद है। इस हेतु यदि सब भेद प्रथम ही ईश्वर इसको बता देता तो दिए हुए ज्ञान-विज्ञान व्यर्थ हो जाते। मनन के लिये इसको कोई पदार्थ ही नहीं रहते। अतः ऐसे-ऐसे विषयों को अपनी बुद्धि से मनुष्य निर्णय करे जिससे उसका पुरुषार्थ का परिचय हो और बुद्धि की उन्नति हो लोक में यशस्वी और बुद्धिमान् गिना जाय। ईश्वर की भी महिमा प्रकट हो। इत्यादि गूढ़ अभिप्राय से ईश्वर ने सृष्टि के भेद को सर्वथा नहीं खोला। परन्तु इसके जानने के लिये मनुष्य में बड़ी अभिलाषा उत्पन्न की है और वेदों में आज्ञा भी दी है कि अपने पुरुषार्थ से अपने मनन निदिध्यासन के बल से ऐसे-ऐसे विषयों को खोज करो और जानो और अतिसंक्षेप से इसका भेद किञ्चित्मात्र खोल भी दिया है, मैं यहाँ दो एक उदाहरण देता हूँ जिन पर आप लोग विचार करें।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
ऋग्वेद १० ।: १२६ ॥

परमार्थ रूप से इस सृष्टि को कौन जानता कौन व्याख्यान कर सकता है कहाँ से यह विविध सृष्टि आई ? विद्वान लोग भी इस सृष्टि के पीछे हुए हैं तब वे इसको कैसे जान सकते हैं ? कौन जानता है कि यह कहाँ से आया ॥ ६ ॥ जहाँ से यह विविध सृष्टि होती है जो इसको धारण करता वा नहीं करता । जो इसका अध्यक्ष है वही जानता वा नहीं जानता । जो इसमें व्यापक हो कर रमा हुआ है इत्तादि अर्थात् सृष्टिज्ञान अति कठिन है इस को तत्त्वतः वही जानता है अन्य कोई नहीं । उसी ने इसको धारण कर रक्खा है दूसरा कोई इसको धारण नहीं कर सकता । यहाँ पर सृष्टि की दुर्बोधता कही है और दूसरी जगह इसके जानने को उत्सुकता दरसाते हैं ।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा विद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः ॥१८॥ किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्ठतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन् ॥१६॥

सृष्टि रचने के समय उस ईश्वर को बैठने के लिये कौन सा अधिष्ठान अर्थात् निवासस्थान था ? और आरम्भ करने के हेतु कौन सी सामग्री थी ? जिससे विश्वकर्म्मा विश्वद्रष्टा परमात्मा

ने इस भूमि और द्युलोक को उत्पन्न कर सबको अच्छादित किया है ॥ १८ ॥ कौन वन और कौन वह वृक्ष है जिससे इस द्यावा-पृथिवी को ईश्वर ने अलंकृत किया है। हे मनीषी विद्वानों! आप यह भी मन से विचार कर पूछो कि भगवान् इस भुवन को धारण करता हुआ जिसके ऊपर स्थिति है वह कौनसा स्थान है। इत्यादि अनेक मन्त्रों के द्वारा सृष्टि को जानने के लिये मनुष्य में उत्सुकता प्रकट की है और:—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वत-स्पात्। सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥१६॥ यजु० १७ ॥

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" ॥ ऋ०१०।१०६।३ ॥

"ब्रह्मणस्पतिरेता संकर्म्मार इवाधमत्।

देवानां प्रथमे युगेऽसतः सदजायत" ॥१०।७२।३

इत्यादि ऋचायों से सूचित किया है कि प्रकृतिजन्य यह सम्पूर्ण जगत् है। इसको अच्छे प्रकार अन्वेषण करो। तुम्हें इतनी बुद्धि दी है कि तुम इसके तत्त्व को स्वयं जान सकते हो। इत्यादि। यहाँ केवल मनुष्य सृष्टिका ही वर्णन करना है इस हेतु इन ऋचाओं का व्याख्यान नहीं किया है।

इस प्रकार परमकल्याणकरी मातृपितृ वेद सिखलाते हैं कि परमात्मा ही मनुष्यजाति का उत्पन्न करने वाला है अन्य कोई नहीं। अतः इसीको माता पिता मान सदा उपासना किया करो। कतिपय अज्ञानी वेद शास्त्रों के यथार्थ अभिप्राय को न जान सुन अनेक विवाद उपस्थित करते हैं। कोई कहते हैं मनु और शतरूपा देवी से सारी सृष्टि हुई। कोई प्रलाप करते हैं कि सूर्य्य और

चन्द्र से ये क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं इस कारण सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा पृथिवी पर बड़े पवित्र हैं। कोई यह भाषण करते हैं कि प्रथक कश्यप हुए और उन की अदिति, दिति, दनु, कद्रू, विनता, आदि कई एक भार्याएं हुईं इन्हीं से यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ, इसी हेतु "काश्यपा इमाः प्रजाः" यह वाक्य अभी तक सुप्रसिद्ध है। अन्यान्य पुरुष यों प्रमाण देते हैं कि हम लोग अग्निवंशी हैं। हमारे पूर्वज अग्नि से उत्पन्न हुए इस हेतु हम सब से पवित्र हैं। दूसरे कहते हैं कि हम नागवंशी हैं। शेषनाग से हमारी उत्पत्ति है इत्यादि अनेक प्रवाद यहाँ विद्यमान हैं इन की संक्षिप्त समालोचना आप लोगों के विस्पष्ट बोधार्थ करता हूँ।

शतरूपा और मनु ॥

प्रथम यह प्रश्न होता है कि "मनु और शतरूपा की कथा कहाँ से उत्पन्न हुई है "उत्तर—पुराणों से। प्रायः सब पुराण शतरूपा की आख्यायिका का वर्णन करते हैं यहाँ दो एक पुराणों से इसको दिखलाते हैं:—

एतत् तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजीजनत् ॥३२॥
सावित्री लोकसिद्ध्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः।
ततः संजपतस्तस्य भित्वा देहमकल्मषम् ॥ ३३ ॥
स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धं पुरुषरूपवत्।
शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥३३॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप।
ततः स ब्रह्मदेवस्तामात्मजामित्यकल्पयत् ॥३५॥

....

दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामबाणार्दितोविभुः ।
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम् ॥४६॥
ततःकालेन महता ततःपुत्रोऽभवत् मनुः ।
स्वायम्भुव इतिख्यातः सविराडिति नः श्रुतम् ॥५०॥
मत्स्यपुराण अ० ३ ॥

कथा का भाव यह है कि जब ब्रह्माजी तत्त्वात्मक दो प्रकार की सृष्टि कर चुके तब लोक की सिद्धि के लिये सावित्री को हृदय में रखकर समाधिस्थ हुए। तब तप करते हुए ब्रह्माजी ने अपने पवित्र शरीर को दो भागों में बाँट आधे को स्त्री रूप और आधे को पुरुष रूप बनाया। जो स्त्री हुई उसके नाम शतरूपा, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, और ब्रह्माणी आदि हुए, उस सावित्री की सुन्दरता पर मोहित हो उससे विवाह किया। बहुत दिन व्यतीत होने पर शतरूपा में ब्रह्माजी के एक पुत्र मनु उत्पन्न हुए। जो "स्वायम्भुव" कहलाते हैं और हम लोग सुनते आते हैं कि वह विराट् भी कहलाते हैं। इस कथा का तात्पर्य्य मैंने त्रिदेवनिर्णय में ब्रह्मा के प्रकरण में किया है। देखिये! यहाँ स्मरण रखना कि शतरूपा ब्रह्मा की स्त्री और मनु की माता मानी गई है परन्तु भागवत विष्णु पुराण और अन्यान्य पुराण भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं और शतरूपा को मनु की स्त्री कहते हैं। आगे देखियेः—

या सा देहार्धसंभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी ।
जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥२६॥
रतिर्मनस्तपो बुद्धिर्महदादिसमुद्भवा ।
तथाचशतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥२७॥

ये मरीच्यादयः पुत्राः मानसास्तस्यधीमतः ।
तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥२८॥
ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।
सनत्कुमारञ्च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥२६॥

सो जो अर्धदेह संभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी है और मनु की जननी है वह शतरूपधारिणी और शतेन्द्रिययुक्ता है। वही रति, मन, तप आदि भी है। उसी शतरूता में अन्यान्य सात पुत्र हुए। इत्यादि कथा मत्स्यपुराण चतुर्थाध्याय में देखिये:—

विष्णु पु० भागवत पु० और शतरूपा ।

ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वयम्भुवं प्रभुम् ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥१४॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः ॥१५॥
विष्णु पु० १ । ७ ॥

ब्रह्माजी ने आत्मसंभूत आत्मस्वरूप मनुजी को प्रजापालक किया है। और मनु ने तपोनिर्धूतकल्मषा "शतरूपा" नारी को पत्न्यर्थ ग्रहण किया। यहाँ विसपष्ट है कि शतरूपा मनु की धर्म-पत्नी है। पुनः—

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ।
कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥५१॥
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनंसमजायत ।
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ॥५२॥

स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ।
तया मिथुनधर्म्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥५३॥

इस प्रकार ब्रह्मा को कार्य करते हुए और देव को देखते हुए उनके शरीर दो भाग हो गये। इन दोनों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। जो पुरुष हुआ वह मनु स्वायम्भुव और स्वराट् कहलाया और जो स्त्री हुई वही शतरूपा नाम से प्रसिद्ध होकर मनु की महिषी अर्थात् धर्मपत्नी हुई। तब मिथुन धर्म से प्रजाएँ बढ़ने लगीं। यहाँ पर भी मनु की स्त्री शतरूपा कही गई है।

आश्चर्य यह है कि जब ब्रह्मा जी का शरीर दो हिस्सों में विभक्त होकर एक मनु और दूसरा शतरूपा बन गया तो स्वयं ब्रह्मा जी कहाँ रहे। अर्थात् जब तक्षा (बढ़ई) किसी एक लकड़ी को दो टुकड़े करता है तो वह पहली लकड़ी अपने स्वरूप में विद्यमान नहीं रहती। इसी प्रकार ब्रह्मा जी का शरीर जब दो टुकड़ा हो गया तो स्वयं ब्रह्माजी विचारे तो नष्ट हो गये उनकी जगह में मनु और शतरूपा रह गई। तब पुनः सृष्टि करने वाला कौन रहा ? इस प्रकार देखते हैं तो पौराणिक सिद्धान्त सर्वथा वेदविरुद्ध होने से त्याज्य है। अब 'शतरूपा' पर मीमांसा कीजिये। मत्स्यपुराण कहता है कि मनु की माता शतरूपा है। परन्तु विष्णु और भागवत पुराण कहते हैं कि मनु की पत्नी शतरूपा है। इन दोनों में कौन सत्य ? वास्तव में लोग जैसा समझ रहे हैं वैसा "शतरूपा" शब्द का भाव नहीं। पुराण पदे-पदे भूल करते हैं इन पुराणों के देखने से एक बात मालूम होती है कि पुराणों के पूर्व ही 'शतरूपा' की आख्यायिका देश में चल पड़ी थी और इसका कुछ अन्य ही आशय था। पुराणों ने इसको न समझ कर भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार से कह दिया

है। 'शतरूपा' यह नाम प्रकृति का है। "शतं रूपाणि यस्याः सा शतरूपा" जिसके सैकड़ों रूप हैं उसे शतरूपा कहते हैं। "शतरूप धारिणी प्रकृति कैसे है" इसको इस प्रकार जानना चाहिये। यह सम्पूर्ण विश्व जड़ प्रकृति और चेतन जीवात्मा के योग से हुआ है। ईश्वर इसका उत्पादक है अर्थात् प्रकृति जीव और ब्रह्म ये ही तीन पदार्थ हैं। इनमें जीवात्मा और परमात्मा अविकारी हैं। ये दोनों सदा एकरूप से ही विद्यमान रहते हैं। केवल प्रकृति ही विकारिणी है। इसी एक प्रकृति का यह सारा जगत् परिणाम है। अर्थात् एक ही कोई पदार्थ है उसका परिणाम कहीं आग है, कहीं पानी है, कहीं श्वेत है कहीं कृष्ण है। वही प्रकृति कहीं परम सुन्दर मेघ घटा और मयूर-शरीर बनी हुई है और कहीं कुरूप उलूक और भयङ्कर व्याघ्र देह है। इस प्रकार एक ही प्रकृति विविधरूप वाली है। अतः इसी प्रकृति का नाम शतरूपा है। इसी कारण मत्स्यपुराण कहता है कि "जननी या मनोर्देवी शत-रूपा शतेन्द्रिया"। मालूम होता है कि मत्स्यपुराण अलङ्कार को समझता था और अलङ्कार में सर्व विषय का वर्णन किया है। अब रह गये मनु। ऐसे-ऐसे स्थलों में 'मनु' नाम जीवात्मा का है जो मनन करे उसे 'मनु' कहते हैं। अब जो मत्स्य पुराण में शतरूपा को मनु की माता मानी है एक प्रकार से घट सकता है। क्योंकि प्रकृति देवी ने ही जीवात्मा को भी प्रकट किया है। प्रकृतिजन्य लिङ्ग अथवा स्थूलशरीर के साथ ही यह जीवात्मा दृश्य होता है। इस हेतु मनु जो जीवात्मा उसकी माता जननी शतरूपा है। ऐसे यह घट सकता है और कहीं जो शतरूपा को मनु की पत्नी कही है यह भी एक प्रकार से हो सकता है क्योंकि पत्नी नाम सहायक अथवा पालयित्री शक्ति का है। अथवा यहाँ उपमार्थ लेना चाहिये। जैसे लोक में स्त्री पुरुष के योग से सन्तान

होता है। वैसे ही जीवात्मा और प्रकृति के संयोग से यह सृष्टि होती है। इस कारण जीवात्मा मनु को पति और प्रकृति शतरूपा को पत्नी कही है यही इसका तात्पर्य पूर्व था। इसको न समझ कर पुराणों ने इन दोनों को सचमुच दो व्यक्तिएँ मानली हैं और लोग आजकल वैसा ही मानते भी हैं। यह पुराणों की अथवा समझने वालों की सर्वथा भूल है। विद्वानो! इस प्रकार समीक्षा करने से मनु और शतरूपा कोई व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता, किन्तु अज्ञानी पुरुषों को समझाने के लिये एक अलङ्कार मात्र कहा है। जब मूल पुरुष मनु और शतरूपा ही कोई पुरुष स्त्री सिद्ध नहीं होते तो इनके वंश की सिद्धि कैसे हो सकती है। इति संक्षेपतः।

मनु और वेद।

इसी प्रसंग से 'मनु' शब्द पर भी विचार करना आवश्यक समझता हूँ। 'शतरूपा' पद वेदों में नहीं है परन्तु वेदों में 'मनु' शब्द के प्रयोग बहुत हैं। मनु के विषय में अनेक वाद-विवाद हैं। यथार्थ में क्या कोई 'मनु' नामक पुरुष हुआ है यह प्रश्न यहाँ उपस्थित होता है। लोग कहते हैं कि जो सबसे पहला मनुष्य उत्पन्न हुआ ईश्वर ने उसका नाम 'मनु' रक्खा और इसी कारण मनुष्य को 'मनुज, मानव, मनुष्य' आदि कहते हैं। मनु के नाम पर एक परम प्रसिद्ध धर्म्म शास्त्र भी है जिससे भारतवर्षीय लोगों का ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों कार्य्य सिद्ध होते हैं। प्रथम वेदों से मनु सम्बन्धी अनेक उदाहरण सुनाते हैं।

'वेद और मनु'

(१) या मथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।१।८०।१६

(अथर्वा) अथर्वा (पिता+मनुः) पिता मनु और (दध्यङ्) दध्यङ् ये सब (याम्+धियम्) जिस कर्म्म वा बुद्धि को (अत्नत) लोकोपकारार्थ विस्तारित करते हैं। उसका अनुकरण सब कोई करें।

यहाँ "अथर्वा" "दध्यङ्" ये दोनों नाम ऋषि, आचार्य्य, विद्वान् आदि के हैं। थर्वा=हिंसा। अ=नहीं। "न विद्यते थर्वा हिंसा यस्य" अर्थात् अहिंसाव्रत-प्रचारक ऋषि का नाम "अथर्वा" है। "दधातीति दधिः परमेश्वरः दधि मञ्चति पूजयति तत्त्वतोजानाति वा स दध्यङ्" जो सचराचर जगत् का धारण करने वाला है वह 'दधि' अर्थात् धाता विधाता उसकी जो पूजा करे करवाये वा तत्त्वतः उसको जाने उसे 'दध्यङ्' कहते हैं अर्थात् एक ईश्वर की उपासना का प्रचारक (१) "मनु" यह नाम "आर्य्यसभापति" का है। मैं प्रथम कह चुका हूँ कि आवश्यकता आने पर आर्य्यों को एक महतीसभा बैठानी पड़ी। वेदों में लक्षण देख के उस

---

(१) "तमुत्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्" बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि इस ऋचा से प्रतीत होता है कि अथर्वा ऋषि के पुत्र दध्यङ् ऋषि हैं। इस हेतु अथर्वा और दध्यङ् ये दोनों नाम किन्हीं विशेष ऋषियों के हैं। उसका समाधान यह है कि जब मीमांसा शास्त्र वेदों में इतिहास नहीं मानता है तब हम लोग कैसे मान सकते हैं। दूसरी बात यह है कि ये सब ऋषि वेद के प्रचारक हुए हैं। इन के प्रथम वेद विद्यमान थे फिर इनके नाम उनमें कैसे आ सकते हैं। इस हेतु मैंने बारम्बार कहा है कि वेदों में यौगिकार्थ लेना चाहिये। वैदिक शब्दों के नाम पर ही पीछे लोग अपना अपना नाम रखने लगे और वैदिक शब्दों के ऊपर गाथा बनाने लगे इस हेतु आज पदे-पदे भ्रम प्रमाद उपस्थित होता है।

सभा का एक पुरुष अधिपति बनाया गया। और उसको 'पिता-मनु' की पदवी दी गई। इसके अनेक लक्षण वेदों में पाए जाते हैं। इसका आगे वर्णन भी होगा। इसी भाव को ले के पुराणों में मन्वन्तर, की कथा आती है। 'मन्वन्तर' शब्द का अर्थ दूसरा मनु है। 'अन्यो मनुर्मन्वन्तरम्' अर्थात् एक मनु के बाद जो दूसरा मनु हो वह 'मन्वन्तर' कहलाता है। जो सबों में वृद्ध, वेदतत्त्ववित्, धीर, गम्भीर और सकलमानवीयगुणसमन्वित होते थे वे ही इस सभा के अधिपति बनाए जाते थे। जिस हेतु ये परम वृद्ध होते थे अतः 'इनको' पिता कहकर सब कोई पुकारते थे। और सकल प्रजा की ओर से वे चुने जाते थे इस कारण 'वैवस्वत' कहलाते थे क्योंकि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य का है। 'मनुष्याः'। नरः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः पृतनाः। निरुक्त २। ३। मनुष्य नर पञ्चजन विवस्वान् आदि मनुष्य के नाम हैं। "विवस्वतामयं वैवस्वतः विवस्वद्भिर्नियुक्तो वैवस्वतोवा"। परन्तु शोक की बात है कि इस भाव को न समझ कर 'मनु' को एक विशेष पुरुष मानने लगे और 'विवस्वान्' यह नाम सूर्य्य के भी होने के कारण 'सूर्य्य के पुत्र मनुजी हैं" ऐसी गाथा बनाली। सूर्य एक अग्निमय पदार्थ है उसका पुत्र कोई नहीं हो सकता। बड़ी-बड़ी अज्ञानता की बात देश में सर्वत्र फैली हुई है। जब तक लोग वेदों के ऊपर पूर्णतया विचार न करेंगे तब तक ये प्रमाद नहीं जा सकते। इसमें संशय नहीं कि 'मनु' के विषय में भूरि-भूरि गाथाएँ हैं। और परीक्षा से विदित होता है भिन्न-भिन्न अर्थ में इसके प्रयोग हैं। वेद में मनुष्य ईश्वर जीवात्मा मनन करने वाला अतिश्रेष्ठ आदि अर्थों में आया है।

पिता—इस शब्द के ऊपर और भी कुछ विचार करना है। यह मन्त्र निरुक्त अध्याय १२ खण्ड ३४ वें में आया है। वहाँ

'मनुश्च पिता मानवानाम्' 'मनु मानवों के पिता हैं' ऐसा कहा गया है। सायण अपने भाष्य में लिखते हैं "पिता सर्वासां प्रजानां पितृभूतो मनुः" सब प्रजाओं का पितृस्वरूप मनु। ऋग्वेद १०। ८२। ३। में 'यो नः पिता जनिता' जो हम सबों का पिता और उत्पन्न करने वाला परमेश्वर है। यहाँ पिता शब्द ब्रह्म के लिये कहा है 'द्यौ' के लिये पिता और "पृथिवी" के लिये माता शब्द के प्रयोग वेदों में आते हैं। यथा 'द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुमग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः'। ६। ५१। ५। पुनः—द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। इत्यादि। परन्तु यहाँ जन्यजनकभावसम्बन्ध नहीं है अर्थात् अलङ्कार से पृथिवी माता कही गई है। यद्यपि अथर्व वेद में एक मन्त्र आता है जिससे प्रतीत होता है कि स्थावर जंगम सब पदार्थ पृथिवी से ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु वहाँ पर भी यह भाव समझना चाहिये कि पृथिवी से अन्न उत्पन्न होते हैं और अन्नों की ही सहायता से जीवात्मा विविध शरीर रचता है अतः कहा जाता है कि पृथिवी से ही सब पदार्थ उत्पन्न हुए 'त्वज्जातास्त्वयि चरन्तिमर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपद-स्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः उद्यन्सूर्य्योरश्मिभिरातनोति' अथर्व। १२। १। १५॥ अर्थः—मर्त्य जीव तुम से उत्पन्न हुए और तुम्हारे ऊपर विचरण करते हैं। तुम द्विपद और चतुष्पद दोनों का पालन करती हो। हे पृथिवी! आप के ही ये पाँचों प्रकार के मनुष्य हैं। जिन मर्त्य-जीवों के लिये उगता हुआ सूर्य्य अपने रश्मियों से अमृत ज्योति फैलाता है 'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा बीरवन्तो वयं स्याम पतयोरयीणाम्॥ ऋ० ४। ५०। ६॥ पुनः—पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति। ६। ७३। १। इत्यादि अनेक मन्त्रों में बृहस्पति इन्द्र आदि भी पिता

कहे गये हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'प्रजापति को' पिता बारम्बार कहा है "य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व दृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः। १०।८१।१। चक्षुषः पिता मनसो हि धीरः। १०।८१। १। योनः पिता जनिता' इत्यादि अनेक ऋचाओं में अनेक वस्तुओं को पिता माता कहा गया है। परन्तु उनमें जन्य-जनक भाव का सम्बन्ध नहीं है। आदरार्थ उन शब्दों का प्रयोग है। इसी प्रकार 'मनु' के सम्बन्ध में भी 'पिता' शब्द आदरार्थक है। इससे बढ़कर आदर स्थान कौन है कि जो सम्पूर्ण प्रजाओं का धार्मिक अधिपति बनाया जाता हो। इसके लिये जो 'पदवी' दी जाय वह सब छोटी है। यास्काचार्य का भी यही आशय प्रतीत होता है।

(२) यच्छञ्च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ऋ० १।१।१४ २॥

(पिता+मनुः) पितामनु (यत्+शम्) रोगों का शमन अर्थात् शारीरिक रोगों के निवारणार्थ विविध औषधि (च) और (योः+च) भयों का यावन अर्थात् पृथक् करण इन दोनों वस्तुओं को (आ+येजे) हम सबों को दिया करते हैं (रुद्र) हे रुद्र ! (तब+प्र+नीतिषु) आपके प्रकृष्ट न्याय वा नीतियों के होने पर (तद्) उन दोनों को (अश्याम) हम लोग प्राप्त करें। शम = शमन = रोग शमन। योः = यु मिश्रणामिश्रणायोः। इससे यो बनता है अश्याम+अशू व्याप्तौ।

(३) यानि मनुरवृणीता पिता न स्ता शंच योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ ऋ० २।३३।१३॥

(नः) हम सबों के (पिता+मनुः) पिता पालक मनु (यानि) जिन औषधों को (अवृणीत) लोकोपकारार्थ इधर-उधर से चुनते हैं (ता) उन औषधों को (वश्मि) मैं चाहता हूँ और उनसे

(शम्+च) रोगों का शमन और (योः+च) भय का पृथक् करण (रुद्रस्य) रुद्र से चाहता हूँ। अर्थात् ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मनु से आविष्कृत औषध सर्वत्र फैले मुझे भी प्राप्त हो और उन औषधों के प्रयोग से निखिल रोग निर्मूल हो जाय और भविष्यत् में पुनः उस रोग के होने का भय भी न रहे।

(३) यः पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे। यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥८।५२।१॥

(यः) जो परमात्मा (पूर्व्यः) सबका पूर्वज और (वेनः) परम ज्ञानी है और (महानाम्) पूज्य पवित्र मनुष्यों के (क्रतुभिः) विविध यज्ञादि कर्मों के द्वारा (आनजे) पूज्य होता है और (यस्य+द्वारा) जिस परमात्मा के द्वारा (पिता+मनुः) पिता मनु=धर्माधिपति (देवेषु) विद्वानों में (धियः) कर्म्मों को (आनजे) प्राप्त करते हैं। वही परमात्मा पूज्य हैं।

(४) यज्ञो मनुः प्रमति र्नः पिता ॥१०।१००।५॥

हमारा पिता मनु यज्ञः अर्थात् पूजनीय और परम बुद्धिमान् है। यज्ञ=यजनीय, माननीय, पूज्य। प्रमति="प्रकृष्टामतिर्यस्य स प्रमतिः"

(५) ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधिवोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावत ॥८।३०।३॥

(ते) हे विद्वद्गण (नः) हमको (त्राध्वम्) रक्षा करें (ते+अवत) वे पालन करें (ते+उ) वे ही (नः) हमको (अधि+वोचत) शिक्षा देवें। (पित्र्यात्+मानवात्) पिता मनु से आते हुए (पथः) मार्ग से (नः) हम लोगों को (अधि+दूरं+परावतः) अत्यन्त दूर देश (मा+नैष्ट) मत ले जाओ।

यहाँ "पित्र्य मानव" पद आया है। और प्रार्थना है कि पित्र्य-मानव पथ से हमको दूर मत ले जाओ। इसमें क्या सन्देह है कि सर्ववेदतत्त्वविद् पुरुष से जो उभयलोकसुखकारक मार्ग चलाया गया हो। उससे हमें पृथक् नहीं होना चाहिये। 'मनु' उसी पुरुष को कहते हैं जो वेदों के मनन के द्वारा कल्याण प्रद मार्ग लोगों को सिखलाया करता है। और उस समय के निखिल ऋषि, मुनि, आचार्य्य, विद्वानों से सम्मति लेकर प्रजाहितकारा अर्थ को स्थिर किया करता है ऐसे महात्मा की आज्ञानुसार चलने की शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है।

(६) होता निषत्तोमनोरपत्ये स चिन्न्वासां पाती रयीणाम् ॥ १ । ६८ । ४ ॥

जो परमात्मा (मनोः+अपत्ये) मनु अर्थात् आर्य्य सभाध्यक्ष के अपत्य अर्थात् सन्तान के मध्य (निषत्तः) निवास करके (होता) प्रेरक होता है (सः+चित्+नु) वही (आसाम्) इन प्रजाओं के (रयीणाम्) धनों का भी (पतिः) स्वामी है। इस प्रकरण में जैसे 'पिता' शब्द आदरार्थक है वैसे ही 'अपत्य' शब्द करुणा सूचक है। और जब सभाध्यक्ष के लिये पिता शब्द प्रयुक्त होता है तब उस सम्बन्ध में प्रजा के लिये अपत्यादि शब्द का प्रयोग होना उचित ही है।

(७) उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः । यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वासु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ ४ । ३७ । ७ ॥

(वाजाः) हे वाज=विज्ञानी (देवाः) देव (ऋभुक्षाः) तक्षा आदि व्यवसायिजनों के संरक्षक पुरुषों ! (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गों से (नः+अध्वरम्) हमारे यज्ञों में (उप+यात)

आवें (रण्वाः) रमणीय पुरुषों ! आप (यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मनु की (आसु+विक्षु) इन प्रजाओं में (अह्नाम्+सुदिनेषु) अच्छे दिनों में (यज्ञम्) (दधिध्वे) यज्ञ धारण कर सकें वैसे आइये। यज्ञ की रक्षा के लिये आप लोग यहाँ आवें। यहाँ सायण "मनुषःमनोः" मनुष्य का 'मनु' अर्थ करते हैं।

(८) अग्निं होतारमीलते यज्ञेषु मनुषोविशः ॥६।१४।५२॥

(मनुषः विशः) मनु की प्रजाएँ (यज्ञेषु) यज्ञों में (होता-रम+अग्निम्+ईलते) होता अग्नि की स्तुति करते हैं।

(९) यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ । २३ । १३ ।

(यद्वा+उ) जब ही (विश्पतिः) (१) प्रजापालक (अग्निः) तेजस्वरूप (शितः) परम सूक्ष्म परमात्मा (सुप्रीतः) सुप्रसन्न हो (मनुषः+विशि) मनु की प्रजा में निवास करता है। तब ही वह (विश्वा+इत्+रक्षांसि) सब ही विघ्नों को (प्रति+सेधति) प्रतिषेध अर्थात् दूर भगाता है। यहाँ सायण 'मनुषो मनुष्यस्य विशि निवेशनेगृहे' 'मनुषो विशि' का 'मनुष्य का गृह' अर्थ करते हैं। इत्यादि अनेक ऋचाओं में 'मानवी प्रजा' की चर्चा आती है, अब आगे की ऋचाएँ मनु की विविध कर्म को

---

(१) विश्पति 'विश्वासां गृहपति विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ६ । ४८ । ८ । (विश्वासाम् मानुषीणां विशाम्) सम्पूर्ण मानुषी प्रजाओं के (त्वम्+अग्ने+गृहपतिः+असि) हे अग्ने ! आप गृहपति हैं। पुनः 'अग्निं विश ईलते मानुषीर्या अग्निं मनुषी नहुषो विजाताः । १०।८०।६। मानुषी प्रजाएँ अग्नि स्वरूप परमात्मा की स्तुति करती हैं इत्यादि मन्त्रों में 'मानुषी विश शब्द आता है। और अग्नि को गृहपति भी कहा है।

सूचित करती हैं। जो आर्य्यसभाध्यक्ष मनु हो उसे यह भी उचित है कि प्रजाओं में अग्निहोत्रादि कर्म्म के लिये प्रेरणा करे करवावे।

(१०) नि त्वा अग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ॥१।३६।१८॥

हे अग्ने प्रकाशस्वरूप देव! सब मनुष्य के कल्याण के लिये आपको मनु ने ज्योतिः स्वरूप जान सर्वत्र स्थापित किया है अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना के सुविधा के लिये सर्वत्र मन्दिर स्थापित करे करवावे।

(११) एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माता ऋणुत व्रजं गोः। यथा मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यथा वणिक् वङ्कुरापा पुरीषम् ॥५।४५।६॥

(सखायः) हे मित्रो! (एत) आओ (धियम्+कृणुवाम) विज्ञान वा कर्म्म का साधन करें (या+माता) जो धी माता है। और जो (गोःव्रजम्) वाणी के समूह को (अप+ऋणुत) आच्छादित करता है और (यथा) जिस विज्ञान से (मनुः) मनु (विशिशिप्रम्) प्रजा में उपद्रवकारी शत्रु को (जिगाय) जीतता है और (यथा) जिससे (वङ्कुः) व्यापार वृद्धि की इच्छा करने वाला (वणिक्) बनिया (पुरीषम्) पूर्णता को (आप) पाता है। पुरीष का अर्थ जल भी होता है। यहाँ मनु का कृत्य युद्ध दिखलाया गया है।

(१२) यद्वा यज्ञं मनवे सं मिमिक्षथुः ॥८।१०।२॥

रात्रिदिन दोनों ने (मनवे) मनु के लिये (यज्ञम्) यज्ञ प्रकाशित किया है यहाँ मनुष्य मात्र का नाम मनु है। रात दिन मनु के कर्म्म करने के लिये हैं।

(१३) यथा पवथा मनुषे वयोधा अमित्रहा ॥९।८६।१२॥

आप मनु (मनुष्य) के लिये प्रवाहित होते हैं। आप बल के धारण और शत्रु के हनन करने वाले हैं।

(१४) येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१०।६३।७॥

(समिद्धाग्निः) प्रदीप्त किया है अग्नि को जिसने ऐसे (मनुः) मनु (मनसा) मनसे (सप्तहोतृभिः) सात होताओं के साथ (येभ्यः) जिनके लिये (प्रथमाम्+होत्राम्) प्रथम यज्ञ को (आयेजे) अच्छे प्रकार से किया करते हैं (ते+आदित्याः) वे आदित्य के समान देदीप्यमान ब्रह्मचारी अथवा राजगण (अभयम्+शर्म्म) अभय और सुख (यच्छत) देवें और (स्वस्तये) जगत्कल्याण के लिये (सुगा) सुखपूर्वक गमनयोग्य (सुपथा) सुन्दर मार्ग (कर्त) बनावें।

(१५) यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः। स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इहश्रवोधाः ॥

अर्थः—हे अग्ने! प्रकाशस्वरूप देव! (सुमित्र) सबका सुमित्र (मनुः) मनु अर्थात् मनुष्य (ते) आपके (यद्+यद्+अनीकम्) जिस-जिस अनीक=सेना समूह रश्मि को (समीधे) प्रदीप्त किया करता है। (अग्ने) हे अग्ने! (तद्+इदम्+नवीयः) वह-वह नवीनतर होता जाता है। (सः) वह आप (रेवत्) धनयुक्त जिस प्रकार होवे वैसा (शोच) प्रदीप्त होवें (सः+गिरः+जुषस्व) वह आप सब प्रजा की वाणी सुनें (सः वाजम्+दर्षि) वह आप शत्रु दल को विदर्ण करें और (सः+इह+

श्रवः+धाः) वह आप विविध यश को धारण करें। यहाँ पर भी मनु शब्दार्थ मनुष्य ही है।

(१६) अग्ने सुखतमे रथे देवाँइलित आ हव। असि होता मनुर्हितः ॥ १।१३।४॥

(१७) त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ । १४ । ११ ॥

(१८) त्वं होता मनुर्हितो वह्विरासा विदुष्टरः। अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ६ । १६ । ७ ॥

(१९) ईले गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे। यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ ८ । १६ । २१ ॥

(२०) आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यज दिवावसो ॥८।३४।८।

(अग्ने) हे सर्वव्यापक देव ! आप (ईलितः) परमपूज्य हैं। आप (सुखतमे+रथे) सुन्दर रथ के ऊपर (देवान्+आवह) विद्वानों को भेजिये। क्योंकि (होता+असि) आप सब सुख देने वाले हैं और (मनुर्हितः) मनुष्य से स्थापित हैं अथवा मनुष्य के हितकारी हैं। भाव यह है कि हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मेरे यज्ञोत्सव पर अच्छे-अच्छे वाहन पर चढ़ कर विद्वद्गण आवें और उन्हें आप की दया से कोई क्लेश न पहुँचे।

"मनुर्हितः"=इस ऋचा में और अग्रिम ऋचाओं में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। *सायण* इसका इस प्रकार अर्थ करते हैं यथा—"मनुना मन्त्रेण मनुष्येण वा यजमानादिरूपेण हितोऽत्र-स्थापितः मन्यत इति मनुः मन ज्ञाने। मनुना हित इति समासे

तृतीयायाः स्थाने सुपां सुलुगित्यादिना सु इत्यादेशः । तस्य रुत्वं लुगभावश्छान्दसः" मनु अर्थात् मन्त्र अथवा यजमानादि रूप मनुष्य । ज्ञानार्थक मन धातु से 'मनु' सिद्ध होता और हित माने स्थापित । मनु से स्थापित को 'मनुर्हित' कहते हैं । यह वैदिक प्रयोग है । आप देखते हैं कि ऐसे-ऐसे स्थल में *सायण* आदि को भी मनु शब्द का अर्थ मनुष्य करना पड़ा है । आगे की ऋचाओं में भी 'मनुर्हित' प्रयोग आया है अर्थ इनके बहुत सरल हैं इस हेतु इनका अर्थ नहीं लिखते ।

(२१) नि त्वा यज्ञस्य साधन मग्ने होतार मृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ १।४४।११

(२२) मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥५।२१।१॥

(२३) मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम७।२।३

(२४) सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः।८।२७।७।

(२५) उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुतः । अङ्गिरस्वद्धवा-
महे ॥ ८ । ४३ । १३ ॥

इन कतिपय ऋचाओं में 'मनुष्वत्' शब्द का प्रयोग देखते हैं सायण अर्थ करते हैं "मनुष्वत् तथा मनुर्यागदेशे निदधाति तद्वद्वयं त्वां निदधमहि मनुष्वत् औणादिक उसि प्रत्ययान्तो मनुस्शब्दः । तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिरिति वतिप्रत्ययः इत्यादि" । भाव इसका यह है कि मनुस्शब्द मनु वाचक है । और 'मनुस्' से 'मनुष्वत्' बन जाता है । मनु के समान को 'मनुष्वत्' कहते हैं । मनु यह नाम ज्ञानी पुरुष का है यह सिद्ध हो चुका है ।

अर्थात् ज्ञानी विज्ञानी पुरुष के समान हम प्रजाएँ भी आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना और यज्ञादिक क्रिया किया करें।

मैंने यहाँ ऋग्वेद से २५ ऋचाएँ कहीं है जिनमें 'मनु' शब्द के प्रयोग हैं। अब आप लोग स्वयं विचार सकते हैं कि क्या यह 'मनु' शब्द किसी व्यक्ति विशेष का सूचक है ?। यहाँ यह भी आप लोग देखते हैं कि पुराणों के समान कहीं नहीं कहा है कि यह 'मनु' अमुक के पुत्र हैं। और अमुक-अमुक इनके मानसिक वा औरस पुत्र हैं। या मनु से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुए हैं। या मनु को ब्रह्मा ने प्रकट किया। ऐसी एक भी बात नहीं है। हाँ इतनी बात देखते हैं कि 'पिता मनु' 'पित्र्य मानव' 'मनु का अपत्य' 'मनुर्हित' 'मनुष्वत्' आदि शब्द आए हैं। 'मनु' के विशेषण में पितृ शब्द का क्यों प्रयोग हुआ हैं इसका कारण प्रथम ही ऋचा में सूचित किया गया है। इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि इन्हीं वैदिक शब्दों को लेकर पुराणों में अनेक आख्यायिकाएँ लोगों ने गढ़ी हैं और इसी 'पितृ' शब्द के प्रयोग के कारण ही मनु को आदि पुरुष भी कहा है। परन्तु वैदिक मनु शब्द यह भाव नहीं रखता है। वेद में ज्ञानीमनुष्य वाचक है ॥ पुराणों में वैदिक शब्दों के अर्थ बहुत उलट पुलट गये हैं। इसी कारण सम्पूर्ण पुराणों में एक व्यवस्था नहीं देखते हैं। कभी-कभी ऋषियों के सामयिक प्रचलित व्यवहार को भी गाथा में गाकर सत्यार्थ को सर्वथा ढाँक देते हैं। ऋषियों के समय में 'मनु' और 'मन्वन्तर' का जो भाव था इसको सर्वथा पुराणों ने छिपा दिया। इस वैदिक प्रमाण से एक बात यह सिद्ध हो सकता है कि पीछे ऋषियों ने 'मनु' के नाम पर अपने वंश का भी नाम रक्खा हो। और इस प्रकार भार्गववंश वसिष्ठवंश आदि के समान 'मानव' वंश भी भारतवर्ष में चला हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं।

अथवा वेदों में लक्षण देखकर अङ्गिरा प्रभृति ऋषि प्रथम वृद्ध पुरुष को "पिता मनु" कह कर पुकारने लगे हों अथवा जो पहला पुरुष उत्पन्न हुआ उसकी संज्ञा मनु की हो तो यह भी संभव है। इत्यादि मनु शब्द की प्रसिद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं। मनु नामक एक सुप्रसिद्ध ऋषि भी हुए हैं। इनकी चर्चा आगे मैं करूँगा। परन्तु वेद में मनु शब्द मनुष्यादि वाचक हैं। इति

शतपथादि ब्राह्मण और मनु।

शतपथ ब्राह्मण के त्रयोदश काण्ड में 'मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशः। तइमे आसते' मनु को वैवस्वत और राजा कहा है। और इनकी प्रजाएँ मनुष्य कहा गई हैं। मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य का है। विवस्वानों से जो नियुक्त हो अर्थात् जिसको सब प्रजाएँ चुन कर राजा बनावें उसे "वैवस्वत राजा" मनु कहते हैं। पुनः इसी ब्राह्मण के प्रथम काण्ड चतुर्थ ब्राह्मण में मनु के सम्बन्ध में एक आख्यायिका आई है उसमें "श्रद्धा देवो वै मनुः" मनु को श्रद्धादेव अर्थात् परम विश्वासी कहा है। और यहाँ पर बड़ी प्रशंसा है। पुनः शतपथ ६। ६। १९ में "प्रजापतये मनवे स्वाहा। प्रजापतिर्वै मनुः" मनु को प्रजापति कहा है। पुनः ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चम पञ्चिका १४ चतुर्दर्श खण्ड में "नाभानेदिष्टं शंसति नाभानेदिष्टं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन्" इत्यादि। मनु के पुत्रों की चर्चा आई है। उनमें नाभानेदिष्ट एक था। छान्दोग्योपनिषद् में "तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे। मनुः प्रजाभ्यः" इस ज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति को कहा। प्रजापति ने मनु को। मनु ने प्रजाओं को। यहाँ 'मनु' आचार्यवत् प्रतीत होते हैं। अथवा आर्य्यसभापति यहाँ मनु हैं क्योंकि इनसे प्रजाओं का

घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। इस प्रकार मनु की चर्चा वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यंत है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहाँ विशेष विचार नहीं करते हैं तथापि जाति निर्णय का भी इससे बहुत सम्बन्ध है इस कारण इस पर कुछ विशेष कहना पड़ा।

मनु और मत्स्य (मछली)

अब मनु के सम्बन्ध में एक आश्चर्य्यद्योतक आख्यायिका ब्राह्मणादिक ग्रन्थों में भी आती है उसपर अवश्य विचार करना है क्योंकि लोक समझते हैं कि जल प्रलय के अनन्तर भगवान् मत्स्यरूप धारणकर मनु को सब पदार्थों के बीज सहित और सप्तर्षि सहित रक्षा करते हैं। उसीसे पुनः 'मनुष्य' होते हैं। इस कारण भी मनुष्य वा मानव वा मनुज आदि कहलाते हैं। प्रथम इस आख्यायिका को शतपथ ब्राह्मण और महाभारत से उद्धृत करते हैं पश्चात् इस पर विचार करेंगे।

मनवे ह वै प्रातः। अवनेज्य मुदक माजह्रुः। यथेदं पाणिभ्या मवनेजनायाऽऽहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणीआपेदे ॥१॥ स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पार-यिष्यामि त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघ इमाः

वे लोग प्रातः काल मनु जी के स्नान के लिये स्नान योग्य जल ले आए वे लोग हाथों से स्नान के लिये उसको लाया करते थे। इस प्रकार उस जल से स्नान करते हुए मनु जी के हाथ में एक मत्स्य आ पड़ा ॥ १ ॥ उसने कहा कि मेरा भरण पोषण करो मैं तुमको पार उतारूँगा। मनु जी बोले आप किससे मुझे पार उतारेंगे?। मत्स्य ने कहा कि औघ अर्थात् समुद्र की बाढ़ इन

सर्वाःप्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति । कथं ते भृतिरिति ॥ २ ॥ सहोवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवति उत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति । कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामति वर्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा विभारासि । स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्र मभ्यवहरासि । तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥ शश्वद्ध झष आस । स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासैथीं ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥ तमेवं भृत्वासमुद्र मभ्यव-

---

सब प्रजाओं को बहाकर ले जाने वाली है उससे मैं आपको पार करूँगा। मनु जी ने कहा कि आपका भरण पोषण कैसे हो सकता है ॥ २ ॥ मत्स्य ने कहा कि जब तक हम क्षुद्र अर्थात् छोटे-छोटे रहते हैं तब तक हमारे नाश करने वाले अनेक जीव होते हैं क्योंकि मत्स्य मत्स्य को ही निगल जाता है। अतः प्रथम मुझको किसी एक घड़े में रखकर पालें। जब मैं घड़े से बड़ा हो जाऊँ तब एक खाई खोदकर उसमें रख पालें। जब उससे भी बड़ा हो जाऊँ तो मुझको समुद्र में ले जाँय। तब मैं निर्विघ्न निरुपद्र हो जाऊँगा ॥ ३ ॥ क्योंकि सर्वदा मत्स्य उसमें सुख से रहते और बढ़ते हैं। तब उसने बाढ़ आने की तिथि बतलाई और कहा कि जिस वर्ष में बाढ़ आने वाली हो आप एक नौका तय्यार कर मेरी राह देखें बाढ़ उठने पर मैं नौका के निकट आऊँगा और उससे आपको पार उतारूँगा ॥ ४ ॥ उसको इस प्रकार पालन कर समुद्र में पहुँचा दिया उस मत्स्य ने जो तिथि जो

जहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नाव-मुपकल्प्योपासांचकार । स औघ उत्थिते नावमापेदे तंसम-त्स्यउपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरंगिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥ सहोवाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदक मन्तश्छैत्सीद् यावदुदकंसमवायात्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येत दुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पण-मित्यौघो ह ताः सर्वाःप्रजा निरुहाव । अथेहमनुरेकः परिशिशिषेः ॥ ६ ॥ सोऽर्चञ्छ्राम्यंश्चचार प्रजाकामः तत्रापि

सम्वत्सर कहा था उस तिथि और वर्ष में नौका तय्यार कर मनु जी उस मत्स्य की प्रतीक्षा करने लगे। औघ (बाढ़) उठने पर वह मत्स्य नौका के निकट आया। उसके सींग में नौका का पास (रस्सी) बाँध दिया। उस नौका को लेकर वह मत्स्य उत्तर पर्वत = गिरि की ओर दौड़ा। ॥ ५ ॥ वह बोला कि मैंने अब आपको पार उतार दिया। इस वृक्ष में नौका बाँध दीजिये। जब तक पानी रहे तब तक इसी गिरि पर रहें यहाँ रहते हुए आपको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँच सकती। जब पानी घट जाय तब आप इस गिरिपर से उतरें। मनु ने वैसा ही किया औघ के जाले पर मनु जी उतरे। आजतक उत्तर गिरि के निकट मनु जी का अवसर्पण उतराव प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् समुद्र का ओघ उन सब प्रजाओं को बहाकर ले गया केवल अकेले मनु जी ही बच गये ॥ ६ ॥ तत् पश्चात् प्रजा की इच्छा से पूजा और परिश्रम करते हुए मनु जी विचरण करने लगे। वहाँ पर भी पाकयज्ञ

पाकयज्ञेनेजे । स घृतं दधि मस्त्वामिक्षा मित्यप्सु जुहुवांश्च-
कार ततःसम्वत्सरे योषित्सम्बभूव साह पिब्दमानेवोदेयाय
तस्यै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते तया मित्रावरुणौ संजग्माते
॥ ७ ॥ तां होचतुः कासीति । मनोर्दुहितेत्यावयोर्ब्रूष्वेति
नेति होवाच यएव माऽजीजनत् तस्यैवा हमस्मीति तस्यामपि
त्व मीषिते तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञाविति त्वेवेयाय सा मनु-
माजगाम ॥ ८ ॥ तां ह मनुरुवाच कासीति तव दुहितेति
कथंभगवति ममदुहितेति या अमूरप्स्वाहुतीरहौषं घृतं दधि
मस्त्वामिक्षांतता मामजीजनथाः साऽऽशीरस्मि तां मां यज्ञऽ-

से यज्ञ किया। घृत, दधि, मस्तु और अमिक्षा को लेकर जल में
आहुति डाली। तब एक वर्ष में एक योषित् (स्त्री) उत्पन्न हुई।
वह धीरा गम्भीरा के समान उदित हुई। उसके चरण घृत लगा
हुआ था। मित्र और वरुण उस (स्त्री) से मिले ॥ ७ ॥ उससे
इन दोनों ने कहा कि आप कौन हैं? वह स्त्री बोली कि मैं मनु
की दुहिता (कन्या) हूँ। उन्होंने कहा कि ऐसा मत कहो किन्तु
"आप दोनों की मैं दुहिता हूँ" ऐसा आप कहा करें। उस स्त्री ने
उत्तर दिया नहीं। ऐसा मैं नहीं कहूँगी। मैं उसी की कन्या हूँ
जिसने मुझे उत्पन्न किया है। उन दोनों ने उसमें भाग लेना
चाहा। उसने प्रतिज्ञा की अथवा नहीं परन्तु वह मनु के निकट
आई। मनु ने कहा कि तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि मैं
आपकी बेटी हूँ। मनु ने कहा कि भगवती! तू मेरी कन्या कैसे
है? उसने कहा आपने जो ये आहुतिएँ आप (जल) में डाली
हैं घृत दधि मस्तु और आमिक्षा की उनसे आपने मुझे उत्पन्न

वकल्पय यज्ञे चेद्वै मावकल्पयिष्यसि बहुः प्रजयापशुभिर्भ-
विष्यसि याऽमुया कां चाशिष माशासिष्यसे सा ते सर्वा
समर्धिष्यत इति ता मेतन्मध्ये यज्ञस्यावाकल्पयन् मध्यं ह्येत-
दयज्ञस्य यदन्तरा प्रयाजाऽनुयाजान् ॥९॥ तयाऽर्चञ्छ्राम्यं-
श्चचार प्रजाकामः। तयेमां प्रजातिं प्रजज्ञे येयंमनोः प्रजा-
पतिर्याम्वेनया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समार्ध्यत
॥ १० ॥ सैषा निदानेन यदिडा। स यो हैवं विद्वानिडया
चरत्येतांछ्हैव प्रजातिं प्रजायते यां मनुः प्राजायत या म्वे-
नया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समृध्यते ॥ ११ ॥
शतपथ ब्राह्मण ॥ १ । ८ । १ ॥

किया है। मैं वह 'आशी' (आशीर्वाद) हूँ। मुझे यज्ञ में कल्पित
कीजिये। यदि मुझको आप यज्ञ में स्थापित करेंगे तो आप प्रजा
और पशुओं से बहुत होवेंगे। जिस आशा को आप मेरे द्वारा
चाहेंगे आपको सब प्राप्त होगी। उसने अपनी दुहिता को जो
मध्य यज्ञ होता है उसमें कल्पित किया क्योंकि वही यज्ञ का मध्य
है जो प्रयाज और अनुयाज के मध्य में आता है ॥ ९ ॥ वह मनु
प्रजा की इच्छा से उसके साथ पूजा और श्रम करते हुए विचरण
करने लगे। उसके द्वारा मनु ने इस प्रजा को उत्पन्न किया जो
यह मनु को प्रजा कहाती है। उससे जो इच्छा मनु ने की वह
सब उनको प्राप्त होती गई ॥ १० ॥ वह निश्चय 'इडा' है सो जो
कोई इस इडा के साथ विचरण करता है वह भी प्रजा को प्राप्त
करता जिसको मनु ने प्राप्त किया था और उससे जो कामना
करता है वह सब उसे प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः स पाण्डवो विप्रं मार्कण्डेय-मुवाच ह। कथयस्वेति चरितं मनोर्वैवस्वतस्यच ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच। विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रताप-वान्। बभूव नरशार्दूल प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २ ॥ ओजसा तेजसा लक्ष्म्या तपसा च विशेषतः। अतिचक्राम पितरं मनुः स्वञ्च पितामहम्। ३। ऊर्ध्वबाहुर्विशालायां बदर्यां स नराधिपः। एकपदस्थित स्तीव्रंचचार सुमहत्तपः ॥ ४ ॥ अवाक्शिरास्तथा चापि नेत्रैरनिर्मिषैर्दृढम्। सोऽतप्यत तपो-घोरं वर्षाणामयुतं तदा ॥ ५ ॥ तं कदाचि त्तपस्यन्त मार्द्र-चीरं जटाधरम्। चीरिणीतीर मागम्य मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥ ६ ॥ भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्योभयं मम। मत्स्येभ्यो हि ततो मां त्वं त्रातुमर्हसि सुव्रत ॥ ७ ॥ दुर्बलं

अर्थः—वैशम्पायन कहते हैं कि तब पाण्डव मार्कण्डेय ब्राह्मण से बोले कि आप वैवस्वत मनु का चरित कहें ॥१॥ मार्कण्डेय जी कहने लगे हे राजन् युधिष्ठिर ! विवस्वान् के पुत्र मनु बड़े प्रतापी, महर्षि और प्रजापति के समान हुए, ॥ २ ॥ ओज, तेज, शोभा और तपस्या में मनु जी अपने पिता और पितामह से भी बढ़ गये ॥ ३ ॥ वह ऊर्ध्वबाहु और एकपदस्थित हो विशाला बदरी में तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥ ४ ॥ अवाक्शिर और निष्कम्प-नयन हो सुदुश्चर घोर तप अनेक वर्षों तक करते रहे ॥ ५ ॥ कदाचित् तपश्चरण करते हुए आर्द्रवस्त्रधारी मनु के निकट आ एक मत्स्य बोला ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! मैं एक क्षुद्र मत्स्य हूँ बलवानों से मुझे बड़ा भय है। मत्स्यों से मुझे आप रक्षा करें

बलवन्तो हि मत्स्या मत्स्यं विशेषतः। आस्वादयन्ति सदा वृत्ति र्विहिता नः सनातनी ॥ ८ ॥ तस्माद् भयौघान् महतो मज्जन्तं मां विशेषतः। त्रातुमर्हसि कर्तास्मि कृते प्रतिकृतं तव ॥ ९ ॥ स मत्स्यवचनं श्रुत्वा कृपयाभिपरिप्लुतः। मनुर्वैवस्वतोऽगृह्णात्तं मत्स्यं पाणिना स्वयम् ॥ १० ॥ उदकान्त मुपानीय मत्स्यं वैवस्वतो मनुः। अलिञ्जरे प्राक्षिपत् तं चन्द्रांशुसदृश प्रभे ॥११॥ स तत्र ववृधे राजन् मत्स्यः परमसत्कृतः। पुत्रवत् स्वीकरोत्तस्मै मनुर्भावंविशेषतः ॥१२॥ अथ कालेन महता स मत्स्यः सुमहानभूत्। अलिञ्जरे तथाचैव नासौ समभवत् किल ॥१३॥ अथ मत्स्यो मनुं दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत। भगवन्! साधु मेऽद्यान्यत स्थानं सम्प्रतिवादय ॥ १४ ॥ उद्धृत्तालिञ्जरात्तस्मात्ततः स

॥ ७ ॥ क्योंकि बलिष्ट मत्स्य निर्बल मत्स्य को खा जाते हैं। यही सनातन वृत्ति हमारी है ॥ ८ ॥ इस हेतु इस महाभयरूप ओघ (बाढ़) से डूबते हुए मुझको रक्षा करें मैं प्रत्युपकार करूँगा ॥९॥ मत्स्य के वचन को सुन कृपा से आर्द्र हो वैवस्वत मनु ने उसे हाथ से पकड़ लिया ॥ १० ॥ जल के समीप लाकर एक चन्द्रवत् उज्ज्वल घट में उसे रख दिया ॥ ११ ॥ वह उसमें परम सत्कृत हो बढ़ने लगा ॥ १२ ॥ बहुत काल बीतने पर वह इतना बढ़ गया कि इस घड़े में नहीं समा सका ॥ १३ ॥ तब वह मत्स्य मनु को देख के बोला कि भगवन्! मेरे लिये दूसरा स्थान बनावें ॥१४॥ तब भगवान् मनु जी ने उसको घड़े से लेकर एक बड़ी वापी

भगवान् मनुः । तं मत्स्यमनयद् वापीं महतीं स मनुस्तदा ॥१५॥ ततस्तं प्राक्षिपच्चापि मनुःपरपुरञ्जय । अथावर्धत मत्स्यः स पुनर्वर्षगणान् बहून् ॥१६॥ द्वियोजनायता वापीं विस्तृता चापि योजनम् । तस्यां नासौ समभवन्मत्स्यो राजीवलोचन ॥१७॥ विचेष्टितुं च कौन्तेय मत्स्यो वाप्यां विशाम्पते । मनुं मत्स्यस्ततो दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत ॥१८॥ नय मां भगवन् साधो समुद्रमहिषीं प्रियाम् । गङ्गां तत्र निवत्स्यामि यथा वा तात मन्यसे ॥१९॥ निदेशे हि मया तुभ्यं स्थातव्य मनसूयता । वृद्धिर्हि परमाप्राप्ता त्वत्कृते हि मयानघ ॥२०॥ एव मुक्तो मनुर्मत्स्य मनयन्भगवान्वशी । नदीं गङ्गां तत्र चैनं स्वयं प्राक्षिपदच्युतः ॥२१॥ स तत्र ववृधे मत्स्यः कञ्चित्काल मरिन्दम । ततः पुनर्मनुं दृष्ट्वा मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥२२॥ गङ्गायां हि न शक्नोमि बृहत्त्वा च्चेष्टितुं प्रभो । समुद्रं नय मामाशु प्रसीद भगवन्निति ॥२३॥ उद्धृत्य गङ्गासलिलात् ततो मत्स्यं मनुः स्वयम् ।

(वाउली = कूप) में रख दिया ॥ १५ ॥ वह उसमें भी न समा सका यद्यपि वह वापी दो योजन की लम्बी थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब मत्स्य ने मनु से कहा कि मुझको गङ्गा में ले चलें मैं आपके लिये बहुत बढ़ता जाता हूँ मैं आपके वचन में सदा स्थिर रहूँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ तब मनु जा उसे गङ्गा में ले आए। वहाँ भी वह बहुत बढ़ने लगा। गङ्गा में भी नहीं समा सका तब मनु से समुद्र में ले जाने को कहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब गङ्गा के

समुद्र मनयत्पार्थ तत्र चैन मवासृजत् ॥२४॥ सुमहानपि मत्स्यस्तु स मनोर्नयत स्तदा । आसीद्यथेष्टहार्य्यश्च स्पर्श-गन्धसुखश्च वै ॥२५॥ यदा समुद्रे प्रक्षिप्तः स मत्स्यो मनुना तदा । तत एन मिदं वाक्यं स्मयमान इवाब्रवीत् ॥२६॥ भगवन् कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषतः । प्राप्तकालं यत्कार्य्यं त्वया तच्छ्रूयतां मम ॥२७॥ अचिराद् भगवन् भौम मिदं स्थावरजंगमम् । सर्व मेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति ॥२८॥ संप्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः । तस्मात्त्वां बोध-याम्यद्य यत्ते हित मनुत्तमम् ॥२९॥ त्रसानां स्थावराणां च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति । तस्य सर्वस्य संप्राप्तः कालः परमदारुणः

जल से लेकर मनु जी उस मछली को समुद्र में ले गये जब मनु ने उस मत्स्य को समुद्र में रक्खा, तब हँसता हुआ वह मत्स्य बोला कि हे भगवन् ! आपने हमारी रक्षा विशेषरूप से की है अब आपको जो कर्त्तव्य है सो सुनिये ॥ २४ । २५ । २६ । २७ ॥ हे भगवन् ! शीघ्र ही प्रलयकाल होने वाला है । इसलिये मैं आपको हित बात कहता हूँ । स्थावर जङ्गम सबका अब काल प्राप्त हुआ, एक दृढ़ नौका आप बनाकर रखना और सप्त महर्षियों के साथ उस पर चढ़ लेना और जितने बीज हैं उन सबों को नौका पर रख लेना इस प्रकार नौका पर चढ़ कर मेरी प्रतीक्षा करना मैं शृङ्गधारी होकर आपके निकट पहुँचूँगा । यह कार्य अवश्य आप करना मेरे विना इस महान् जल को आप तैर न सकेंगे इसमें आप शङ्का मत कीजिये । मनुजी ने भी मत्स्य का वचन स्वीकार किया ॥ २८–३५ ॥ और इस प्रकार दोनों अपने-अपने

॥३०॥ नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवराटका। तत्र सप्तर्षि-भिःसार्धं मारुहेथा महामुने ॥३१॥ बीजानि चैव सर्वाणि यथोक्तानि द्विजैः पुरा। तस्या मारोपयेर्नावि रुसंगुप्तानि भागशः ॥३२॥ नौस्थश्च मां प्रतीक्षेयास्ततो मुनिजनप्रिय। आगमिष्याम्यहं शृंगी विज्ञेयस्तेन तापस ॥३३॥ एव मेतत्त्वया कार्यं मापृष्टोऽसि व्रजाम्यहम्। ता न शक्या महत्योवै आपस्ततुं मयाविना ॥३४॥ नाभिशंक्य मिदं चापि वचनं मे त्वया विभो। एवं करिष्य इति तं स मत्स्यं प्रत्यभापत ॥३५॥ जग्मतुश्च यथाकाम मनुज्ञाप्य परस्परम्। ततो मनुर्म-होराज यथोक्तं मत्स्यकेनच ॥३६॥ बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लवे तदा। नौकया शुभया वीर महोर्मिणं मरिन्दम ॥३७॥ चिन्तयामास च मनुस्तं मत्स्यं पृथिवीपते। स च तं चिन्तितं ज्ञात्वा मत्स्यः परपुरञ्जय ॥३८॥ शृंगी तत्राऽऽ-जगामाऽऽशु तदाभरतसत्तम। तं दृष्ट्वा मनुजव्याघ्र मनुर्मत्स्यं

स्थान चले गये तब काल प्राप्त होने पर मत्स्य बचन के अनुसार सब पदार्थों के बीजों को नौका पर स्थापित कर समुद्र में आये और मत्स्य के लिये चिन्ता करने लगे वह शृङ्गी मत्स्य भी वहाँ शीघ्र पहुँचा मनु उसे देख उसकी सींग में रस्सी बांध दी। वह मत्स्य भी बड़े वेग से उस लवण समुद्र में चला, यहाँ न तो भूमि न दिशाएँ मालूम होती थीं यहाँ चारों तरफ जल ही जल प्रतीत होता था। केवल सात ऋषि मनु और मत्स्य थे। बहुत वर्षों तक वह मत्स्य नौका को समुद्र में खींचता फिरा तब हिमालय के

जलार्णवे ॥३६॥ शृङ्गिणं तं तथोक्तेन रूपेणाद्रि मिवो-च्छ्रितम् । वटारकमयं पाश मथ मत्स्यस्य मूर्धनि ॥४०॥ मनुर्मनुजशार्दूल तस्मिन् शृङ्गे न्यवेशयत् । संयतस्तेन पाशेन मत्स्यः परपुरञ्जय ॥४१॥ वेगेन महता नावं प्राक-र्षल्लवणांभसि । स च तां स्तारयन्नावा समुद्रं मनुजेश्वर ॥४२॥ चकर्षातन्द्रितो राजन् तस्मिन् सलिलसञ्चये । ततो हिमवतः शृङ्गं यत्परं भरतर्षभ ॥४६॥ तस्मिन् हिमवतः शृङ्गे नावं बध्नीत मा चिरम् । सा बद्ध्वा तत्र तैस्तूर्ण मृषिभिर्भरतर्षभ ॥५०॥ अथा ब्रवीदनिमिषस्तानृषीन् सहितां स्तदा । अहं प्रजापति र्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते । मत्स्य-रूपेण यूयञ्च मयास्मान्मोक्षिता भयात् ॥५३॥ मनुना प्रजाः सर्वाः स देवासुरमानुषाः । स्रष्टव्याः सर्व लोकाश्च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति । तपसाच.पि तीव्रेण प्रतिभाऽस्य भवि-ष्यति मत्प्रसादात्प्रजासर्गे नच मोहं गमिष्यति ॥५५॥ इत्युक्त्वा वचनं मत्स्यः क्षणेनाऽदर्शनं गतः । स्रष्टुकामः-

---

शृङ्ग पर खींच कर ले गया और हँसता हुआ उन ऋषियों से बोला कि इस हिमालय के शृङ्ग पर नौका बाँध दीजिये । ऋषियों ने नौका बाँध दी, फिर मत्स्य ऋषियों से कहने लगा कि मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ मेरे से परे कोई नहीं । मैंने मत्स्य रूप होकर आप लोगों को इस भय से बचाया । यह मनु सारी सृष्टि की रचना करें । देव असुर, मनुष्य, स्थावर जङ्गम सब का सृजन करें । तीव्र तपस्या से और मेरी कृपा से मनु को प्रतिभा प्राप्त

प्रजाश्चापि मनुर्वैवस्वतः स्वयम् ॥५६॥ प्रमूढोऽभूत प्रजासर्गे तपस्तेपे महत्ततः । तपसा महता युक्तः सोऽथ स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥५७॥ सर्वाः प्रजा मनुः साक्षात् यथावद्भरतर्षभ । इत्येतन्मत्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम् आख्यान मिदमाख्यातं सर्वपाप हरं मया ॥ इति ॥ वनपर्व अध्याय ॥ १८७ ॥

होगी और मोह कभी नहीं होगा इतना कह कर मत्स्य वहाँ से चला गया, मनु जी भी प्रजा की इच्छा से तपस्या करने लगे और पश्चात् तपोयुक्त होकर सारी सृष्टि की। यही मत्स्य पुराण है यह आख्यान सर्व शापहारी है मनु के चरित्र को जोआदि से सुनेगा वह सुखी होगा। ३६-५८।

मनु के सम्बन्ध में जितने आख्यान अभी तक प्राप्त हैं वे सब इस मनु-मत्स्याऽऽख्यान से बढ कर रोचक नहीं। यह कथा केवल भारतवर्षीय धर्म्म पुस्तकों में ही नहीं किन्तु जगत के सुप्रसिद्ध क्रिश्चियन आदिकों के धर्म ग्रथों में भी विद्यमान है। केवल नाम मात्र का भेद है। परन्तु इसका आशय क्या है? क्या सचमुच एक मत्स्य मनु के निकट आ अपनी अलौकिक लीला दिखलाने लगा। क्या यह यथार्थ है कि जलप्रलय आनेपर एकाकी मनुजी ही शेष रह गये। क्या किसी की इतनी बड़ी आयु हो सकती है कि एक प्रलय तक वह जीता रहे इस आख्यान के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उत्थित होते हैं। प्रथम यह विचार कीजिये कि भगवान् एकाकी मनु के बचाने से कौन सा प्रयोजन समझता था। यदि मनु एक पुरुष जल प्रलय के अनन्तर नहीं बचता तो क्या आगे मनुष्य सृष्टि ही बन्द हो जाती? ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि आदि सृष्टि में भगवान् ने कैसे चराचर जगत

रचा। प्रलयोत्तर भी तद्वत् ही सृष्टि कर सकता है। फिर एक मनु के बचने से कौन प्रयोजन था। पुनः मत्स्य रूप से ही क्यों अपनी लीला दिखलाना आरम्भ किया। यदि लीला दिखानी ही थी तो घड़े खाई और समुद्र में उतने उतने समय निवास करके ही क्यों लीला दिखलाई पुनः शतपथ ब्राह्मण कहता है कि 'आप' में अहुति देने से एक कन्या इडा उत्पन्न हुई परन्तु प्रथम इस को मनु नहीं जानते थे। इस कन्या से मित्र, वरुण मिले और वे उस कन्या को अपनी कन्या बनाना चाहते थे। पीछे वह मनु से जा बोली की मैं आप की कन्या हूँ आप मुझको यज्ञ में स्थापित कीजिये इसी से आपका सब मनोरथ सिद्ध होगा और वैसा ही हुआ। इसी के द्वारा मनु जी प्रजावान् हुए। वह कन्या कौन थी इसकी सहायता से मनुजी ने कैसे मनुष्य सृष्टि की। महाभारत में कन्या की चर्चा नहीं है। परन्तु सप्तर्षि आर सकल पदार्थों के बीजों को अपने साथ मनुजी ने ले लिया था यह अधिक वर्णन है। इस प्रकार आगे मत्स्यादि पुराणों में मत्स्य और मनुजी के सहस्रशः सम्बादों का भी वर्णन आता है। जब इस आख्यायिका के ऊपर इस प्रकार समालोचना की जाती है तो बालक की सी बात प्रतीत होती है। जब वेदों में इसका कोई चिन्ह नहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थ इस अवैदिक अर्थ को कैसे प्रकट करेगा। 'इडा' यह शब्द वेदों में बहुत आया है परन्तु कहीं नहीं कहा गया है कि मनु की यह कन्या है। ग्रन्थ क विस्तार के भय से इडा शब्द पर विचार नहीं कर सकते। शतपथ ब्राह्मण के इसी प्रकरण में इडा शब्द पर कुछ मीमांसा है। देखिये। परन्तु इस आख्यान को सुप्रसिद्ध शतपथ ब्राह्मण वर्णन कर रहे हैं इस कारण अवश्य कुछ इसका गूढ आशय होगा। इसका अन्वेषण करना चाहिये। आप लोगों को स्मरण

होगा कि ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः प्रत्येक विषय को सरल अलङ्कार में निरूपण करते हैं। यह इनका स्वभाव है। यह भी एक साधारण और सरल अलङ्कार मात्र है। आपको यह भी विदित ही है कि ब्राह्मण ग्रंथ कर्म-काण्ड को अधिक वर्णन करते हैं। कर्म्म के प्रधान देवता सूर्य्य, अग्नि और वायु ये ही तीन माने हैं। इन तीनों में भी सूर्य्य की परम प्रधानता है। सारे ही कर्मकाण्ड सूर्य्य के ही प्रतिपादक हैं और इसके द्वारा परमात्मा की उपासना कथित है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्तिम उद्देश उपनिषद् ही है। इस देश का जो 'भारतवर्ष' नाम है यह यथार्थ में सूर्य्य सूचक ही है क्योंकि 'भरत' नाम सूर्य का ही है। यहाँ के सन्तान मात्र 'वैवस्वत' अर्थात् सूर्य्य पुत्र कहलाते हैं। विशेष वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं आप यह समझें कि इस सौर जगत में सूर्य्य ही प्रधान देवता है। इसी के उदय और अस्त को यह मनु-मत्स्याऽऽख्यायिका दरसाती है। सूर्य का क्रमशः उदित होकर बढ़ना ही मत्स्य का विस्तार होना है। रात्रि का आना ही प्रलय काल है। अब प्रथम आख्यायिका की बातों पर ध्यान दीजिये। कहा गया है कि मनु के स्नान के समय हाथ में एक मत्स्य आ पड़ा। वह क्रमशः बढ़ने लगा। अन्त में समुद्र तक पहुँचने पर उसे शान्ति मिली। इसने मनु की रक्षा की। मनु को एक कन्या इडा उत्पन्न हुई। इसके पैर में घृत लगा हुआ था। मित्र और वरुण ने इसको अपनी कन्या बनाना चाहा। इसी कन्या से मनु प्रजावान् हुए इत्यादि। अब इसके भाव पर ध्यान दीजिये। प्रातःकाल स्नान का समय है। 'पूर्वां-सन्ध्यां जपँस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्' इस प्रमाण से सूर्य्योदय होते-होते सन्ध्योपासन ज्ञानी जन कर लेते हैं। इस समय सूर्य का आगमन ही मानों ज्ञानी जन के हाथ में मत्स्य का आना

है। क्योंकि इसी समय से यज्ञ का आरम्भ होता है। जब तक सूर्य का उदय न हो तब तक यज्ञ का आरम्भ करना निषेध है। अब सूर्य का आगमन प्रत्येक ज्ञानी के गृह में होने लगा। वे अग्नि को प्रज्वलित कर हवन करना आरम्भ करते हैं अग्नि का प्रज्वलित करना ही, मानों, सूर्यरूप मत्स्य का बढ़ना है और उधर आकाश में भी सूर्य बढ़ते हुए दीखते हैं। अग्नि भी सूर्य्य रूप ही माना गया है यह स्मरण रखना चाहिये। प्रथम किसी पात्र में धर के तब कुण्ड में अग्नि को स्थापित करते हैं। अग्नि का पात्र में रखना ही मत्स्य का घड़े में रखना है और उससे कुण्ड में स्थापित करना ही मत्स्य का 'कर्पू' अर्थात् खाई में आना है। अब कुण्ड में अग्नि बढ़ने लगा। उसमें नहीं समा सका आकाश में चारों तरफ फैल गया। और उधर सूर्य भी सर्वत्र आकाश में अपने किरणों से विस्तृत हो गया। यही अग्नि का चारों तरफ फैलना ही मत्स्य का समुद्र में जाना है। इस प्रकार प्रातःसबन, माध्यन्दिन सवन, और सायं सवन, तीनों सवन करके आह्निक कर्म्म को समाप्ति होती है जो ज्ञानी जन इस प्रकार कर्म्म करता है उसे कर्म्म रूप मत्स्य अवश्य रक्षा करता है। कर्म्मकाण्ड का यह एक संकेत है कि कर्म्मफल स्वरूप भी सूर्य ही माना गया है। अब सायंकाल प्राप्त होता है। अज्ञानी जन विविध व्यसनों में फसने लगते हैं। कोई विलास में पड़ के कर्तव्याकर्तव्य सर्वथा भूल जाते हैं। कोई ईश्वरीय चिंतन सर्वथा त्याग महानिद्रा लेने लगते हैं। कोई चौर्यवृत्ति में ही प्रवृत्त हो जाते हैं। कोई अपने शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने का मौका ढूढ़ने लगते हैं। इस प्रकार प्रदोषा रजनी आ के सबके सत्य को विनष्ट करना आरम्भ करती है। यही महाप्रलय है। इसमें कौन बचते हैं? जो मनुष्य वैदिक कर्म में तत्पर हैं वे ही इस प्रलय

से बच जाते हैं। वे कर्म्म रूप महानौका के ऊपर चढ़कर उत्तर हिमालय अर्थात् उच्चतर भाव की ओर उसी कर्म्म की सहायता से चलते हैं और जब रात्रिरूप-प्रलय घटने लगता है। तब वे पुनः उतरते हैं अर्थात् पुनः कर्म्म करना आरम्भ करते हैं। वे ज्ञानी प्रलय काल में क्या करते हैं? कहा गया है कि 'आप' में आहुति देते हैं यहाँ 'आप' शब्द वि+आपक=व्यापक परमेश्वर का वाचक है अर्थात् दुर्व्यसनों में न फँसकर ईश्वर की ओर मन लगाते हैं और प्राणायामादि व्यापरों से अपने मन को रोकते हैं। इससे एक 'दुहिता' उत्पन्न होती है अर्थात् सत्याऽसत्य के विलगानेवाली सुबुद्धि उत्पन्न होती है जो ज्ञानीजन को दुष्कर्म्मों से रक्षा करती है। वह बुद्धि यद्यपि मनन और विचार से उत्पन्न होती है तथापि प्राणायाम इसकी उत्पत्ति में सहायक होता है। इसी प्राणायाम का नाम अर्थात् श्वास प्रश्वास का नाम मित्र और वरुण है। इसी कारण इनकी भी पुत्री वह सुबुद्धि है। "इस दुहिता के पैर में घृत लगा रहता है"। घृत शब्द यहाँ कर्म्मसूचक है क्योंकि घृत से ही आहुति होती है। इसी सुबुद्धिरूप दुहिता से यथार्थ में ज्ञानी जन प्रजावान् होते हैं और अन्यान्य अज्ञानी जनों को कर्म्मरूप नौका की सहायता न रहने से रात्रिरूप जल-प्रलय में वे डूब मरते हैं। इत्यादि भाव इसका जानना। यहाँ रात्रि का प्रलय दिखलाना था इस हेतु समुद्र आदि का वर्णन किया गया है। 'मनु' नाम मननशील ज्ञानी पुरुष का है और जैसे जलमय समुद्र में मत्स्य तैरता है इसी प्रकार आकाश रूप समुद्र में सूर्य विचरण करता है। इसी कारण 'मत्स्य' शब्द का यहाँ प्रयोग दिया है। जिस हेतु सूर्य कर्म का आरम्भक है इस हेतु मानो वह रक्षक भी है। इसी कारण मत्स्य को रक्षक भी कहा है। इत्यादि यथायोग्य भाव समझना। ब्राह्मण का भाव

बहुत विस्पष्ट है। परन्तु इसको ऐसा न समझकर पुराणों में इसको यथार्थतया भगवान् का अवतार माना है। यह भूल है। और पीछे यह आख्यायिका इतनी बढ़ गई कि एक मत्स्यपुराण ही बन गया। इस प्रकार समीक्षा करने से 'मनु' कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता। फिर इससे मनुष्य सृष्टि हुई यह कैसे सिद्ध हो सकता है। अब मैं एक निरुक्त से मनु के सम्बन्ध में उदाहरण दूँगा जिससे विस्पष्ट हो जायगा कि 'वैवस्वत मनु' का क्या आशय है। इसके पहले इस आख्यायिका को कोई अन्य प्रकार से भी कहते हैं उसको भी दिखला देते हैं वैदिक भाषा में 'आप्' (जल) यह शब्द कर्म्म सूचक होता है इसी कारण प्रत्येक कर्म के आरम्भ में आचमन की विधि आती है। 'मनु' शब्द मनुष्य वाचक है इसमें सन्देह नहीं। 'मत्स्य' यह शब्द यहाँ साधारण विवेक वाचक है 'मदंस्यति अन्तं करोति विनाशयति यः स मत्स्यः। षोऽन्त कर्म्मणि' जो मद को निवष्ट करे उसे 'मत्स्य' कहते हैं। 'इडा' शब्द प्रशंसनीय बुद्धि वाचक है। (इड-स्तुतौ) अब आख्यायिका का आशय यह हुआ। आख्यायिका में कहा गया है कि 'स्नान करते हुए मनु के हाथ में एक मत्स्य आपडा अर्थात् प्रथम जब मनुष्य विविध कर्म्मों को करना आरम्भ करता है तब इसका अन्तःकरण पवित्र होने लगता है। कुछ काल के पश्चात् मद अर्थात् अहङ्कार नाशक एक प्रकार का विवेक उत्पन्न होने लगता है विवेक का उत्पन्न होना ही मानों मत्स्य का हाथ में आना है। वह विवेक दिन-दिन बढ़ता जाता है। यहाँ तक बढ़ता है कि कुम्भी अर्थात् घड़े आदि में समा नहीं नहीं सकता हैं। भाव यह है कि वह विवेक केवल स्वार्थ साधक ही नहीं किन्तु अपने निज हित करने से बढ़कर परार्थ साधन में तत्पर होने लगता है क्रमशः समुद्र = आकाश व्यापी अर्थात् सर्वत्र

व्यापक हो जाता है। आख्यायिका में कहा गया है कि वह मत्स्य जब इस प्रकार बहुत बढ़ गया तो मनु से कहा कि मुझे समुद्र में ले चलो मैं आपकी भी रक्षा करूँगा इत्यादि। भाव यह है कि जब विवेक सर्वत्र फैल के और स्वार्थ त्याग केवल परार्थ में लगता है तब वह विवेक उस पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करता है। और इस समय कर्म्म का प्रलय होना आरम्भ होता है। यही जल प्रलय है अर्थात् कर्म्मरूप जल के ऊपर तैरता हुआ विवेक रूप मत्स्य की सहायता से जब उत्तर=उच्चतर हिमप्रदेश अर्थात् परम शीतल शान्तिधाम को प्राप्त होता है तब ये सारे कर्म्मरूपजल नीचे रह जाते हैं तब वह पुरुष उच्चतर ज्ञान शिखर पर पहुँच जाता है। तब वह ज्ञानी पुरुष 'आप' में आहुति डालना आरम्भ करता है। अर्थात् ईश्वर में ही विभूति देखना आरम्भ करता है। आख्यायिका में जल से स्नान करना और जल में आहुति डालना ये दोनों बातें आई हैं। जब प्रत्येक कर्म्म में ईश्वरीय विभूति देखना आरम्भ करता है तब 'इडा' अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त होती है। इस इडा से सारा मनोरथ सिद्ध होता है और यथार्थ में यही पुरुष सन्ततिमान् है क्योंकि कहा गया है कि पुत्र होने से पुरुष दुःख से पार उतरता है। यथार्थ में इडा मुक्तिरूपा कन्या से ही आदमी पार उतरता है। इत्यादि। कोई मन बुद्धि अहंकार पर भी इसका योजना करते हैं। इस प्रकार अनेक रीति से इसकी व्याख्या करते हैं परन्तु यह यथार्थ में कर्म्मपरक है क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थ कर्म्म से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। जो हो इससे मनु व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता। इति संक्षेपतः।

दैवत काण्ड, षष्ठाध्याय, दशम खण्ड निरुक्त में में लिखा है कि "तत्रेतिहासमाचक्षते। त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद्यमौ

मिथुनौ जनयाञ्चाकार। सा सवर्णा मन्यां प्रतिनिधाय आश्वं। रूपं कृत्वा प्रदुद्राव। स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य सम्बभूव ततोऽश्विनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुः" यहाँ कोई आचार्य्य इतिहास कहते हैं। त्वष्टृपुत्री सरण्यू ने विवस्वान् सूर्य्य से एक युग्म=यम और यमी जनी वह दूसरो सवर्णा। स्त्री को अपने स्थान में प्रतिनिधि रख 'अश्वरूप' धारण कर भाग गई। वह विवस्वान् आदित्य भी 'अश्वरूप' धर उसके पीछे हो लिये। तब उससे दोनों 'अश्वी' उत्पन्न हुए और सवर्णा स्त्री में मनुजी उत्पन्न हुआ।

यहाँ सवर्णा से मनु की उत्पत्ति कही गई है। परन्तु क्या यथार्थ में सूर्य्य को मनुष्यवत् स्त्रियें हैं। सरण्यू क्यों भाग जाती है? अपने स्थान में दूसरी स्त्री को क्यों रख जाती है? अश्वरूप क्यों धारण करती है? वे यम मिथुन कौन हैं? 'अश्वी' किनको कहते हैं? इत्यादि कारणों की जिज्ञासा करने पर यही सिद्ध होगा कि यह भी अलङ्कारमात्र है। उषाकाल का नाम सरण्यू है "सरण्यूः सरणात्" सूर्य्य के उदय होने पर उषा भाग जाती है इस कारण उसे सरण्यू कहते हैं। सरण= गमन। परन्तु जिस समय सरण्यू अर्थात् उषा रहती है उस समय कुछ प्रकाश और अन्धकार दोनों रहते हैं इसी को 'मिथुन यम' कहते हैं। जब उषा चली जाती है तब दिन की प्रभा सर्वत्र छा जाती है। इसी का नाम 'सवर्णा' है "समानो वर्णो यस्या सा" जिसका समान वर्ण हो उसे 'सवर्णा' कहते हैं अर्थात् जैसा सूर्य्य उज्ज्वल श्वेत है वैसी ही दिन की प्रभा होती है अर्थात् दिन की शोभा भी श्वेत ही होती है। अब दिन होने से मनुष्य जाति अपने-अपने शुभाशुभ कर्म्म में तत्पर हो जाती है यही सवर्णा से मनु अर्थात् मनुष्य जाति का उत्पन्न होना

है। मनुष्य का शयन करना ही मानों उसका मरना है और सूर्य्योदय होने पर जागना ही इसका जन्म लेना है ऐसा कई स्थलों में कहा है। यही यहाँ पर भी दिखलाया है। आगे कहा है कि अश्वरूपधारिणी सरण्यू के पीछे-पीछे सूर्य्य भी अश्वरूप धर के चला और उससे "अश्वी" उत्पन्न हुए। उषा का भागना ही अश्वरूप धारण करना है। उषा के पीछे-पीछे सूर्य्य भी दौड़ता जाता है। जहाँ-जहाँ उषा और सूर्य्य पहुँचते हैं वहाँ-वहाँ पृथिवी और द्युलोक का प्रकाश होने लगता है। पृथिवी और द्युलोक का सूर्य्योदय होने पर प्रकाशित होने का नाम ही "अश्वी" का जन्म लेना है। कहा गया है कि "द्यावापृथिव्यौ + अश्विनौ" द्यौ और पृथिवी का नाम 'अश्वी' है। इस प्रकार परीक्षा करने से यहाँ पर भी मनु कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता है। इन्हीं आलंकारिक मनु को अनेक पुराणों में सावर्णि वैवस्वत कहा है। एक बात यहाँ स्मरण रखनी चाहिये कि जहाँ-जहाँ वैवस्वत मनु की कथा आई है वहाँ-वहाँ इसी आलङ्कारिक वैवस्वत मनु से तात्पर्य है, परन्तु यहाँ मनु शब्द से मनुष्य जाति ग्रहण है और प्रतिदिन के शयन और जागरण प्रलय और उत्पत्ति है इसा अलङ्कार से आशय है इसहेतु मनु कोई भिन्न व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं हो सकता तब इस वैवस्वतमनु से सूर्य्यवंश की परम्परा की सिद्धि का होना कब सम्भव है इस हेतु जो कोई सूर्य्यवंशीय कह कर अपने को उच्च समझते हैं वह आकाश कुसुमवत् सर्वथा मिथ्या है। थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जावे कि सूर्य्य से मनु और मनु से इक्ष्वाकु आदि सूर्य्यवंशी राजा हुए। तो इस अवस्था में भी वहाँ ही कहा हुआ है कि इसी मनु से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारो वर्ण पैदा हुए फिर इस प्रकार चारों

तुल्य ही हैं किसी की श्रेष्ठता न्यूनता नहीं। मनु के विषय में और भी बहुत-सी बातें पुराणों में कथित हैं जैसे प्रत्येक कल्प में चतुर्दश मनु होते हैं इत्यादि वार्ता के वर्णन करने का यहाँ प्रसंग नहीं यहाँ केवल यह दिखलाया गया है कि जिसको लोग वैवस्वत सावर्णि मनु अथवा स्वायंभुव मनु आदि कहते हैं और जिससे चारों वर्णों की उत्पत्ति मानते हैं। वैसा मनु कोई नहीं हुआ। यह सब आलंकारिक कथा मात्र है हाँ! यह संभव है कि वशिष्ठ विश्वामित्रादिवत् मनु भी कोई सुप्रसिद्ध पुरुष हुआ हो परन्तु जिस मनु के नाम पर अलौकिक कथाएँ बनाई हुई हैं वह मनु कोई नहीं। इस मनु की परीक्षा से सूर्य्यवंश की भी परीक्षा हो गई। अब चन्द्रवंश के ऊपर कुछ वक्तव्य है यथार्थ में जिसने चन्द्रवंश की कथा बनाई है उसने एक तरह से निन्दा ही की है क्योंकि श्रीमद्भागवतादि में इस प्रकार चन्द्रवंश का वर्णन है। श्रीमद्भागवत स्कंध ९ नव, अध्याय प्रथम १ में प्रजा रहित मनु के पुत्र के लिये वसिष्ठ ने यज्ञ करवाया। पुत्र न होकर के एक पुत्री उत्पन्न हुई और उसका नाम इला रखा गया मनु जी इससे अप्रसन्न हुए। तब वसिष्ठ जी ने इश्वर की भक्ति से उस कन्या को पुरुष बनाया और उसका नाम सुद्युम्न हुआ वह सुद्युम्न एक समय वन में शिकार करते हुए महादेव की अकृपा से अपने साथी संगी सहित पुनरपि स्त्री बन गया और उसी अवस्था में चन्द्रमा के पुत्र बुध से मिली इन दोनों के योग से पुरूरवा उत्पन्न हुआ और आगे इसी पुरूरवा से चन्द्रवंश की परम्परा चली। अब यह बुध कौन है सो सुनिये। श्रीमद्भागवत नवमस्कंध चतुर्दशाऽध्याय में कथित है कि भगवान् की नाभि से ब्रह्मा हुआ और ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और उस अत्रि की आँखों से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उस चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की तारा

नाम की स्त्री को बलात् हरण कर लिया उस तारा से बुध की उत्पत्ति हुई। उस बुध ने उस इला में जो पुरुष से स्त्री हुआ था पुरूरवा को उत्पन्न किया उस पुरूरवा से स्वर्गवेश्या उर्वशी में आयु, श्रुतायु, सत्यायु, आदि पुत्र हुए और इस प्रकार चन्द्रवंश का आविर्भाव हुआ। आप देखते हैं कि पहले मनु की इला नाम कन्या हुई। फिर वह कन्या सुद्युम्न नाम पुरुष हुई और पुनः पुरुष से स्त्री हुई फिर आगे श्रीमद्भागवत में लिखा है कि वह इला एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहती थी। क्या कोई यथार्थ में ऐसा स्त्री पुरुष हो सकता है। फिर चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि की आँख से माना है परन्तु वेद कहता है कि भगवान् ने ही सूर्य्य चन्द्र इत्यादि बनाया पुनः आप देखते हैं कि इला पुत्र पुरूरवा का संयोग उर्वशी से हुआ और उससे चन्द्रवंश चला, विद्वद्गण ? यथार्थ में यह सब कथाएँ आलंकारिक हैं न कोई इला हुई और न पुरूरवा और उर्वशी स्त्री पुरुष हुए इन सबों का तात्पर्य पुरूरवा और उर्वशी की कथा मेरी रचित कथा में देखिये, इस प्रकार चन्द्रवंश की भी परीक्षा करने से शश शृंगवत् मिथ्या-काल्पनिक ही सिद्ध होती हैं इसी प्रकार अन्यान्य अग्निवंश नागवंश इत्यादि के विषय में भी समझिये! हे विद्वद्गण! आप निश्चय समझें कि जिस प्रकार परमेश्वर ने पश्वादि सृष्टि को प्रकट किया इसी प्रकार इस अद्भुत मनुष्य जाति को भी उत्पन्न किया वह परब्रह्म परमेश्वर सबका आदि मूल कारण है वही सबका माता पिता भ्राता विधाता उपास्य पूज्य है और उसीसे मनुष्य सृष्टि के आविर्भाव होने के कारण सब मनुष्य परस्पर तुल्य हैं।

पञ्चमानवादि शब्द।

अब यहाँ मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के लिये यह भी निरूपण करना अवश्य है कि आदि सृष्टि में क्या मनुष्यजाति

एक ही प्रकार उत्पन्न हुई अथवा भिन्न भिन्न प्रकार की। यदि भिन्न भिन्न वंश हुए तो वे कितने प्रकार के थे। पुराणों में कहीं मानस पुत्र दश कहीं छः कहीं नौ कहीं इकीस कहीं कुछ कहीं कुछ कहे हुए हैं। यह पौराणिकों को भी मानना पड़ेगा कि जितने मानस पुत्र हुए उतने प्रकार के वंश चले परन्तु इस विषय में वेद क्या कहता है इसका संक्षिप्त निरूपण कर देना उचित है। वेदों में पञ्चकृष्टि, पञ्चक्षिति, पञ्चचर्षणि, पञ्चजन, पञ्चजन्या विश, पञ्च जात आदि शब्द बहुत प्रयुक्त हुए हैं जो बतलाते हैं कि आदि सृष्टि में पाँच भ्राता के समान एक पिता से पाँच प्रकार के मनुष्य यत्किंचित् भेद के साथ उत्पन्न हुए। वे ये मन्त्र हैं।

य एकश्चर्षणीनां वसूना मिरज्यति इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् १ । ७ । ६

(यः एकः+इन्द्रः) जो एक सर्वैश्वर्य्यवान् परमेश्वर (चर्षणीनाम्) खेत करने वाली प्रजाओं के तथा (वसूनाम्) प्रजाओं के धनों का (इरज्यति) स्वामी है और जो (पञ्च क्षितीनाम्) पाँच प्रकार के मनुष्यों का अनुग्रह करने वाला है। वही सबका पूज्य है 'ईरज' धातु कण्वादि गण में ईर्षार्थक है परन्तु यहाँ ऐश्वर्य्य अर्थ है। सायण कहते हैं कि (पञ्च निषादपञ्चमानां क्षितीनां निवासाहिर्णां वर्णाना मनुग्रहीतेतिशेषः) चार वर्ण और पञ्चम निषाद इन पाँचों वर्णों का अनुग्रह कर्त्ता ईश्वर है। क्षिति का पृथिवीभी यहाँ अर्थ हो सकता है।

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्चजनाः ॥ ६ । ११ । ४ ॥

(रातहव्याः) हव्य से सत्कार करने वाले (पञ्चजनाः) पाँचो प्रकार के मनुष्य (यम) जिस परमात्मा को (सुप्रयमम्)

सुन्दर स्वभाव वाले (आयुम्+न) अतिथि के समान (नमसा) नमस्कार के द्वारा (अञ्जन्ति) पूजते हैं। यहाँ सायण "पञ्चजना मनुष्या ऋत्विक् यजमान लक्षणाः" पञ्चजन का चार ऋत्विक् और एक यजमान ये पाँच अर्थ करते हैं। यहाँ 'पञ्चजन' 'पाँच मनुष्य अर्थ करने से शङ्का बनी रहती है। वे पाँच कौन हैं इसकी निवृत्ति के लिये जो सायण अर्थ करते हैं वह ठीक नहीं। आगे के मन्त्रों से स्पष्ट होगा कि यथार्थ में पञ्चजन आदि शब्दों से क्या तात्पर्य्य है।

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।

ये वा जनेषु पञ्चसु ९। ६५। २३॥

(ये) जो पदार्थ (आर्जीकेषु) आर्जीक=अर्जन उपार्जन करने वाले (कृत्वसु) कर्म्म परायण मनुष्यों में हैं (ये) जो पदार्थ (पस्त्यानाम्) नदियों के (मध्ये) समीप में (ये+वा) और जो (पञ्चसु+जनेषु) पाँचों प्रकार के मनुष्यों में अर्थात् सब मनुष्यों में विद्यमान हैं। वे पदार्थ सबको सुखकारी होवें। यहाँ सायण "जनेषु पञ्चसु निषाद पञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्च-जनाः" चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पाँचों मिलकर पञ्चजन है ऐसा अर्थ करते हैं। परन्तु निषाद पञ्चम वर्ण है। यह कहीं भी वेदों में नहीं कहा गया है।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥
१०। ४५। ६॥

यह हवन कालिक अग्नि का वर्णन है (यद्) जब (पञ्च+जनाः) पाँचों प्रकार के मनुष्य (अग्निम्+अयजन्त) अग्नि का यजन अर्थात् अग्नि में आहुति डालते हैं तब वह अग्नि

(वीलुम्+चित्+आद्रिम्) दृढ़ मेघ को भी (अभिनत्) छिन्न-भिन्न कर देता है अर्थात् मेघ तक पहुँचता है। वह अग्नि कैसा है (परायन्) दूर जाता हुआ। पुनः (विश्वस्य+केतुः) विश्व का केतु (भुवनस्य+गर्भः) भुवन का कारण ऐसा जो अग्नि वह (जायमानः) जन्म लेते ही (आरोदसी) द्यावा पृथिवी तक (अपृणात्) फैल जाता है।

यहाँ विस्पष्ट पद है कि पञ्चजन अर्थात् पाँचों प्रकार के मनुष्य यज्ञ करते हैं। यदि 'पञ्चजन' पद का अर्थ चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र और पञ्चम निषाद लिया तब भी यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी हैं। अतः शूद्र को यज्ञ नहीं करना चाहिये ऐसा कथन सर्वथा वेदविरुद्ध है या नहीं आप सब विचारें। पिछले लोगों ने वेद विरुद्ध सिद्धान्त चला जगत् से वेद को लुप्त कर अधर्म्म का राज्य फैलाया। मनुष्य से घृणा करने मनुष्य क्या मनुष्य है।

'पञ्चचर्षणि शब्द'

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे दमे। कविर्गृहपतिर्युवा॥

७। १५। २

(यः कविः+गृहपतिः+युवा) जो प्राज्ञ बुद्धिमान् युवा गृहपति (पञ्च+चर्षणीः+अभि) पाँचों प्रकार की प्रजाओं के सम्मुख (दमे-दमे) गृह-गृह में (निषसाद) उपदेशादि कार्य्य के लिये बैठता है। वह अखिल कष्ट से बचाता है। इत्यादि आगे वर्णन आता है।

'पञ्चजात शब्द'

"*पञ्च जाता वर्धयन्ती*" ६। ६१। १२ नदी, पञ्च जात अर्थात्

पाँचों प्रजाओं को सुख देती है। यहाँ 'पञ्च जात' 'पञ्च जन' अर्थ में आया है।

पाञ्चजन्य शब्द'

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।

अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः॥८।६३।७॥

राजा का यह वर्णन है (यद्) जब (पञ्च जन्यया) पाँचों प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी (विशा) प्रजा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (घोषा असृजत) यह हम लोगों का राजा है इसे हम स्वीकार करते हैं इस प्रकार जब घोष=शब्द अर्थात् घोषणा (Proclaimation) की जाती है तब (सः) वह विपः) मेधावी (अर्यः) सबका स्वामी और (मानस्य+क्षयः) मान=सम्मान की भूमि बन (बर्हणा) बज्रादि शस्त्र से (अस्तृणात्) शत्रु का हनन करता है अर्थात् प्रजा की ओर से नियुक्त होने पर राजा युद्धादि व्यापार आरम्भ करता है।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य मृषीसा दत्रिं मुञ्चथो गणेन।

हे (नरौ) राजा और रानी आप दोनों (पाँचजन्यम्) पाँचों प्रकार के मनुष्यों के हित करनेवाले (अत्रिम्) त्रिगुण रहित अर्थात् शुद्ध (ऋषिम्) ऋषि की (ऋषीसात+अंहसः) जाज्वल्यमान पापानल से पृथक् करके (गणेन) परिवार सहित (मुञ्चथः) छुड़ाकर रक्षा किया कीजिये।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु। तं मे जगृभ्र आशसो नविष्टं दोषावस्तोर्हवमानास इन्द्रम्॥ ५। ३२। ११॥

किसको राजा बनाना चाहिये इसकी शिक्षा देते हैं। सर्व-

प्रधान ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! (त्वा+नु) आपको सबमें (एकम्) मुख्य (शृणोमि) मैं सुना करता हूँ। आप कैसे हैं (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक पुनः (पाञ्चजन्यम्+जातम्) पाँचो प्रकार के मनुष्यों के हित के लिये उत्पन्न पुनः (जनेषु+यशसम्) सब मनुष्यों में यशस्वी। अब प्रजाओं की ओर देख कर कहते हैं। (तम्+नविष्ठम्+इन्द्रम्) ऐसे अतिशय माननीय राजा को (दोषा+वस्तोः) रात दिन (हवमानासः) अपने-अपने कार्य्य के लिये आवाहन करती हुई और (आशसः) कामनाओं की पूर्ति की इच्छा करती हुई (मे) मेरी सहमत प्रजाएँ (जगृभ्रे) ग्रहण करें। यहाँ सायण "पाञ्चजन्यं पञ्चजनेभ्यो हितम्" 'पाञ्चजन्य' शब्द का पञ्चजन मनुष्यों के 'हित' अर्थ करते हैं।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम् ॥ ९ । ६६ । २० ॥

यहाँ अग्नि के लिये पाञ्चजन्य शब्द आया है 'पाञ्चजन्य' से बनकर विशेषण हो जाता है। पञ्चजन सम्बन्धी, पञ्चजन हितकारी, पञ्चजन पुत्र आदि अर्थ होता है। अग्नि भी सबके हित करनेवाला है अतः इसको 'पाञ्चजन्य' कहते हैं। अब आगे के मन्त्र से विस्पष्ट होगा कि वेद का तात्पर्य्य पाँच प्रकार के मनुष्य से है।

पंचकृष्टि शब्द।

अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम्।

यह प्रार्थना है (अस्माकम्) हमारे (पञ्च+कृष्टिषु) पाँचों प्रकार के मनुष्यों में (उच्चा) अत्युत्तम=बहुत और (दुस्तरम्) दुस्तर अप्राप्य (द्युम्नम्) धन (स्वः+न) सूर्य्य समान (अधि

शुशुचीत) अधिक देदीप्यमान होवे। स्वःसूर्य्य। न = इव। दुष्टरम् = दुस्तरम्। 'कृष्टि' नाम मनुष्य का है। पाँचों प्रकार के मनुष्य धन धान्य, पशु, गौ, हिरण्य, पौत्रादिक से सम्पन्न रहें ऐसी प्रार्थना कोई ऋषि करते हैं।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या।
६। ४६। ७

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! (नाहुषीषु + कृष्टिषु) मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं में (यद् + ओजः + नृम्णं + च) जो बल और धन (आ) अच्छे प्रकार से वर्तमान है और (पञ्च + क्षितीनाम्) पृथिवी के पाँचों भागों में (यद् + वा + द्युम्नम्) जो धन है उस सबका (आभर) भरण पोषण अर्थात् रक्षा करें। और (सत्रा) महान् (विश्वानि) निखिल (पौंस्या) बल को सर्वत्र धारण पोषण करें।

तदद्य वाचः प्रथमं मंसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासःपञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम्। १०।५३।२

उसको (अद्य) आज (वाचः) वचन के (तत् + प्रथमम्) उस परम वीर्य को (मसीय) मानता हूँ (देवाः) हे बलिष्ठ शूरवीर पुरुषो ! (येन) जिस वीर्य से (असुरान् + अभि + असाम) असुरों को हम सब परास्त करें (ऊर्जादः) हे अन्न खानेवाले मनुष्यो ! (उत + यज्ञियासः) हे यज्ञसम्पादको ! (पञ्च जनाः) हे पाँचों प्रकार के मनुष्यो ! आप सब ही (मम + होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषध्वम्) सेवें। दुर्गाचार्य्य "पञ्चजना मनुष्याः निषाद-पञ्चमावर्णाः" यहाँ पञ्चजन" शब्द का चार वर्ण

और पञ्चम निषाद ये पाँच हुए ऐसा अर्थ करते हैं इससे भी यही सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी है।

पञ्चजना ममहोत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः॥

१० । ५३ । ५ ॥

(गोजाताः) पृथिवी पर जितने उत्पन्न हुए (पञ्चजनाः) पाँच प्रकार के मनुष्य हैं वे सब ही (मम+होत्रम्+जुषन्ताम्) मदुपदिष्ट यज्ञ को सेवें और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञ के तत्त्व जानने वाले हैं वे भी सदा यज्ञ करें। यहाँ "पञ्चजना ममहोत्रं जुषन्ताम्" यह साफ पद है सब कोई यज्ञ करें यह आज्ञा सूचक वाक्य है फिर कौन कह सकता है कि 'शूद्र' यज्ञ न करे वा वेदों का अध्ययन न करे।

इमा याः पञ्चप्रदिशः मानवीः पञ्च कृष्टयः ॥

अथर्व० ३ । २४ । ४ ॥

ये पाँच दिशाएँ और ये मानवी पञ्च प्रजाएँ हैं ऐसा वर्णन आता है।

पंचमानव कौन हैं? ॥

मैंने यहाँ अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं जिनमें पञ्चजन आदि शब्द आते हैं। अब यह विचार करना है कि ये पाँच कौन हैं। यास्काचार्य्य निरुक्त ३ । ८ में कहते हैं "गन्धर्वाः पितरा देवा असुरा रक्षांसि इत्येके। चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः। गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस। ये पाँचों मिलकर पञ्चजन कहाते हैं। औपमन्यव कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पाँच 'पञ्चजन'। मैं समझता हूँ कि यास्क का प्रथम पक्ष ठीक है। सृष्टि के आदि में जो पाँच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए उनके स्वभावानुसार गन्धर्व आदि पाँच वैदिक नाम

दिये गये हों। द्वितीय पक्ष समुचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि एक तो चार वर्णों का "चतुर्वर्णा वा चात्वारो वर्णाः" इस प्रकार के शब्दों से कहीं वर्णन नहीं और निषाद को चारों वर्णों से पृथक् मानने में कोई प्रमाण नहीं। पिछले ग्रन्थों में गन्धर्व पितर आदिकों को भिन्न-भिन्न जाति माना है। पुराणों में इसकी बहुत चर्चा है। परन्तु निषाद एक भिन्न वर्ण है इसको चर्चा नहीं है ऐतरेय ब्राह्मण ३।३१ में इस प्रकार वर्णन है "पाञ्चजन्यं वा एतदुक्थम्। यद्वैश्वदेवम्। सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानामुक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पणाञ्च। एतेषां वा एतत्पञ्चजनानां मुक्थम्। सर्व एव पञ्चजना विदुः।

परन्तु वेद के एक स्थान में मनुष्य के पांच नाम साथ ही आए हुए हैं। मैं समझता हूँ कि ऋषियों ने ये ही वैदिक पाँच नाम पञ्च जनों को दिए हों यह सम्भव है। वह यह मन्त्र है।

यदिन्द्राग्नी युदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यु ष्वनुषु पूरुषुस्थः।
अतःपरि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य॥
१।१०८।८॥

यद्। इन्द्राग्नी। युदूषु। तुर्वशेषु। यद्। द्रुह्यषु। अनुषु। पूरुषु। स्थः। अतः। परि। वृषणौ। आ। हि। यातम। अथ। सोमस्य। पिबतम्। सुतस्य।

स्वामिकृत भाष्यम्—यद्यतः। इन्द्राग्नी पूर्वोक्तौ। यदुषु = प्रयत्नकारिषु मनुष्येषु। तुर्वशेषु = तूर्वन्तीतितुरस्तेषांवशा वशं कर्तारो मनुष्यास्तेषु। यद्यतः। द्रुह्युषु = द्रोहकारिषु। अनुषु = प्राणप्रदेषु। पूरुषु = परिपूर्णसद्गुणविद्याकर्म्मसु मनुष्येषु। यदव इत्यादि पञ्चमनुष्य नाम। निघं० २। ३। स्थः। अतः परि इतिपूर्ववत्।

अथ सायण भाष्यम्। अत्र यदुष्वित्यादीनि पञ्च मनुष्य-

नामानि। हे इन्द्राग्नी यद्यदि यदुषु नियतेषु परेषामहिंसकेषु मनुष्येषु स्थो भवथो वर्तेथे। यदि वा तुर्वशेषु हिंसकेषु मनुष्येषु वर्तेथे। यद्यदि द्रुह्युषु द्रोहं परेषा मुपद्रव मिच्छत्सु मनुष्येषु वर्तेथे। यदि वा अनुषु प्राणत्सु सफलैः प्राणैर्युक्तेषु ज्ञातृष्वनुष्ठातृषु मनुष्येषु अन्येषां हि प्राणा निष्फला ज्ञानहीनत्वात् अनुष्ठानाभावाच्च तेषु यदि भवथः। तथा पूरुषु कामैः पूरयितव्येष्वन्येषु स्तोतृजनेषु यदि भवथः। अतः सर्वस्मात्स्थानात्। हेकामाभिवर्षकाविन्द्राग्नी आगच्छतम्। अनन्तरमभिषुतं सोमं पिबतम्।

(इन्द्राग्नी) हे राजेन्द्र! और हे अग्निवद्देदीप्यमान मन्त्रिन्! (यद्) जिस हेतु आप दोनों (यदुषु) यदु मनुष्यों में (स्थः) रहते हैं। अर्थात् यदुओं की रक्षा के लिये उनमें आप दोनों वास करते हैं। इसी प्रकार (तुर्वशेषु) तुर्वश मनुष्यों में (द्रुह्युषु) द्रुह्यु मनुष्यों में (अनुषु) अनु मनुष्यों में और (पूरुषु) पूरु मनुष्यों में अर्थात् यदु, तुर्वश, द्रुह्यु अनु और पूरु इन पाँचों प्रकार के मनुष्यों में आप (यत्) जिस हेतु उनकी रक्षा के लिए रहते हैं (अतः) इस हेतु (वृषणौ) हे सुख के वर्षा करने वाले राजन् और मन्त्रिन्! आप (हि) निश्चय, (आ+यातम्) हम लोगों के यज्ञ में भी आया करें और (सुतस्य+सोमस्य) प्रस्तुत= बनाया हुआ (सोमस्य) सोमरस (पिबतम्) पीवें।

यहाँ स्वामी जी तथा सायण इन यदु आदि पाँचों शब्दों का अर्थ मनुष्य ही करते हैं। स्वामीजी कहते हैं। यदु=प्रयत्नकारी मनुष्य। तुर्वश=हिंसक मनुष्यों को वश में करनेवाले। द्रुह्यु=द्रोहकारी मनुष्य। अनु=प्राणप्रद मनुष्य। पूरु= अच्छे गुणविद्याआदि से पूर्ण मनुष्य। इस प्रकार ये पाचों मनुष्य के ही नाम हैं। सायण कहते हैं। यदु=दूसरों के अहिंसक मनुष्य। तुर्वश=हिंसक मनुष्य। द्रुह्यु=द्रोहकारी

मनुष्य। अनु=प्राणधारी मनुष्य। पूरु=पूर्ण करने योग्य स्तुतिकारी जन। सायण इन शब्दों का धातु भी देते हैं। उप-रमार्थक 'यम' धातु से यदु। हिंसार्थक 'तुर्वी' धातु से तुर्वश। जिघांसार्थक 'द्रुह' से द्रुह्यु। प्राणार्थक 'अन' से अनु। आप्याय-नार्थक 'पूरी' से पूरु शब्द बनता है।

निघण्टु में यदु आदि शब्द।

मनुष्याः। नराः। धवाः। जन्तवः। विशः। क्षितयः। कृष्टयः। चर्षणयः। नहुषाः। हरयः। मर्य्याः। मर्त्याः। मर्ताः। व्राताः। तुर्वशाः। द्रुह्यवः आयवः। यदवः। अनवः। पूरवः। जगतः। तस्थुषः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः। पृतनाः। इति पञ्चविंशति-र्मनुष्य नामानि।

मनुष्य, नर, धव, जन्तु, विट्, क्षिति, कृष्टि, चर्षणि, नहुष, हरि, मर्य्य, मर्त्य, मर्त, व्रात, तुर्वश, द्रुह्यु, आयु, यदु, अनु, पूरु, जगत्, तस्थिवान्, पञ्चजन, विवस्वान्, पृतन, ये २५ पच्चीस नाम मनुष्य के हैं। मूल में सर्वत्र बहुवचन पाठ है।

यहाँ पर सामान्य रूप से मनुष्यों के नामों में 'यदु' आदि पाँचों शब्द आए हैं। वेदों में भी ये पाँचों शब्द समानता से मनुष्य के ही नाम हैं अर्थात् किसी विशेष मनुष्य के नाम नहीं हैं। क्योंकि वेद में सामान्य नाम आते हैं। परन्तु वेद के शब्दों को लेकर ही ऋषियों ने पदार्थ और देशादिक के नाम रक्खे हैं अतः प्रतीत होता है कि उन पाँचों प्रकार के मनुष्यों के नाम यदु आदि रक्खे हों।

महाभारत में यदु आदि पाँच वंश

यतिं ययातिं संयातिं मयातिं मयतिं ध्रुवम् ॥३०॥

नहुषो जनयामास षट् सुतान् प्रियवादिनः।

ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत् सत्यपराक्रमः ॥३२॥
तस्य पुत्रा महेष्वासा सर्वैः समुदिता गुणैः ॥३३॥
देवयान्यां महाराज शर्म्मिष्ठायां च प्रजज्ञिरे ।
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेवच ॥३४॥
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्म्मिष्ठायां जज्ञिरे ॥३५॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय ७५ से लेकर ९३ वां अध्याय तक ययाति राजा की अख्यायिका विस्तार पूर्वक आई है। यह इतिहासदृष्टि से अतिशय मनोहर और रोचक है और यदु आदि पाँच वंशों की उत्पत्ति बतलाती है अतः संक्षेप से यहाँ इसका उल्लेख करते हैं नहुष (आप अभी देखा है कि नहुष भी मनुष्य के नामों में आया है) राजा के छः पुत्र हुए। यति, ययाति, संयाति, अयाति अयति और ध्रुव। इनमें से ययाति राज्याधिकारी हुए। ययाति की दो स्त्रियाँ हुईं देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी से दो पुत्र हुए। यदु और तुर्वसु। और शर्मिष्ठा से तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु, और पुरु।

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजायते ।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् । आदिपर्व ॥७६॥

महाराज जनमेजय पूछते हैं कि हे वैशम्पायन ! मेरे पूर्वज ययाति ने अति दुर्लभा शुक्र की कन्या से कैसे विवाह किया यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सुनावें। वैशम्पायन बोले कि जिस समय देवगुरु बृहस्पतिपुत्र कच असुर गुरु शुक्राचार्य्य से विद्याध्ययन कर रहे थे उस समय शुक्रकन्या देवयानी ने कच की बड़ी सेवा की। विद्या समाप्त होने पर गृह लौटने के समय बृहस्पति के पुत्र कच से देवयानी ने कहा कि आप मुझसे विवाह करें। परन्तु

उसे गुरुपुत्री जान कच ने उससे विवाह करना उचित नहीं समझा। इसपर देवयानी ने क्रुद्धा होकर श्राप दिया "ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति" कि हे कच! मेरी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करते हो। अतः आपकी विद्या सिद्धि को प्राप्त नहीं होगी। इस पर अनपराध शाप देती हुई देवयानी को देख कच ने भी शाप दिया कि "ऋषिपुत्रो न ते कश्चित् जातु पाणिं ग्रहीष्यति" कोई ऋषि पुत्र आपका पाणिग्रहण नहीं करेगा। तत्पश्चात् एक समय असुराधिपति वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी स्नानार्थ किसी वन में गईं। वहाँ इन दोनों में लड़ाई हो गई। शर्म्मिष्ठा देवयानी को किसी कूप में गिरा घर आ गई। इसी समय राजा ययाति वन में शिकार करते हुए तृषार्त हो उसी कूप के निकट आ देवयानी को कूप में गिरी हुई देख कुएँ से उसे निकाल बाहर किया। शर्मिष्ठा के सब चरित्र देवयानी ने अपने पिता से कह सुनाये और अन्त में यह कहा कि शर्मिष्ठा ने अपने को राजपुत्री और मुझको पुरोहितपुत्री नीच समझ बड़ा अपमान किया है इस हेतु हे पिता! जब तक वह मेरी दासी नहीं होगी तब तक मैं गृह पर नहीं जाऊँगी। वृषपर्वा राजा ने पुरोहित पुत्री को क्रुद्ध जान उस के सन्तोषार्थ अपनी राजपुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाया। तत्पश्चात् पुनः एक समय वन में ययाति को देख उससे विवाहार्थ देवयानी ने कहा। ययाति ने कहा कि जब तक आपके पिता इस कार्य्य के लिये आज्ञा नहीं देवेंगे तब तक मैं आपका पाणिग्रहण नहीं कर सकता। इस पर देवयानी पिता से आज्ञा ले ययाति की पत्नी बनी और राजपुत्री शर्मिष्ठा के साथ पतिगृह पर निवास करने लगी। इस देवयानी से यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए। यद्यपि विवाह कर प्रस्थान करने के समय शुक्र जी ने ययाति राजा को चेता दिया था कि इस

दासी शर्मिष्ठा को आप सब तरह से सम्मान करें परन्तु इससे सन्तान उत्पन्न न करें तथापि राजा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर शर्मिष्ठा की परमप्रीति और प्रार्थना से प्रसन्न हो शर्मिष्ठा से तीन पुत्र उत्पन्न किये, अनु, द्रुह्यु और पूरु। जब कुछ समय के अनन्तर देवयानी को यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह क्रोध कर अपने पिता के गृह पर चली गई और अपनी पुत्री से सब वार्ता जान शुक्राचार्य्य ने राजा ययाति को शाप दिया कि आप शीघ्र ही जरावस्था से अभिभूत होवेंगे। इस पर राजा ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। पुनः शुक्राचार्य्य ने यह कहा कि मेरे प्रभाव से आप अपनी वृद्धा वस्था को किसी अन्य पुरुष में स्थापित कर सकते हैं। परन्तु आपके पुत्रों में से जो कोई अपनी युवावस्था आपको देगा और आपसे वृद्धावस्था लेगा वही सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनेगा। इस प्रकार शुक्र से शापानुगृहीत हो ज्येष्ठ पुत्र यदु से आकर ययाति बोले।

ययातिरुवाच—**जरावलीच मां तात पलितानि च पर्य्यगुः।**

काव्यस्योशनसः शापात् न च तृप्तोऽस्मियौवने।

त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। इत्यादि।

यदुरुवाच—**जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।**

तस्माज्जरा न ते राजन् ग्रहीष्य इति मे मतिः। इत्यादि

ययाति—हे प्रिय यदु! शुक्र जी के शाप से मुझको वृद्धावस्था प्राप्त हुई है। परन्तु विषय भोग से अभी तक मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ। अतः इस जरावस्था को तुम लो और तुम्हारे यौवनावस्था से मैं विषय भोगूँ।

यदु—हे पिता! जरावस्था में बहुत दोष हैं इस हेतु मैं इसका ग्रहण नहीं करूँगा। आपके अनेक पुत्र हैं। उनसे आप जा कहें।

ययाति—हे यदु ! जिस कारण मेरे शरीर से उत्पन्न हो के तुम मेरी जरावस्था को नहीं लेते हो अतः तुम्हारी प्रजा राज्याधिकारी नहीं होगी। इतना कह तुर्वसु से बोले कि हे तुर्वसु ! तुम मेरी जरावस्था लो तुम्हारी यौवनावस्था से विषय भोग करूँ।

तुर्वसु—हे पिता ! काम-भोग-प्रणाशिनी, बल-रूपान्तकारिणी और बुद्धि-प्राण-प्रणाशिनी जरावस्था को मैं ग्रहण नहीं करूँगा।

ययाति—हे तुर्वसु ! जिस हेतु तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर मेरी जरावस्था नहीं लेते हो अतः तुम, जिनका धर्म और आचार भ्रष्ट है जो प्रतिलोम आचार करनेवाले हैं जो गुरुदारापरायण हैं ऐसे भ्रष्ट म्लेच्छों में राजा होओगे इस प्रकार तुर्वसु को शाप दे शर्मिष्ठा के द्रुह्यु पुत्र से राजा बोले कि हे द्रुह्यु ! तुम मेरी जरावस्था लो।

द्रुह्यु—हे पिता ! जीर्ण नर, न गज न हय न सुख भोग सकता है अतः मैं जरावस्था नहीं लूँगा।

ययाति—हे द्रुह्यु ! जिस हेतु मेरी जरावस्था तुम नहीं लेते हो इस कारण जहाँ अश्व और रथों की गति नहीं है और जहाँ पर हाथी, गदहे, गाय और शिबिका इन सबों की गति नहीं है। परन्तु जहां पर केवल नौका से ही कार्य होता है वहाँ का स्वामी तुम होवोगे।

हे प्रिय अनु ! तुम मेरी जरावस्था लो।

अनु—हे पिता ! वृद्ध पुरुष शिशुवत् अपवित्र रहता है समय पर हवनादि कर्म्म नहीं कर सकता है। अतः मैं जरा नहीं लूँगा।

ययाति—जिस हेतु मेरी जरावस्था को नहीं लेते हो और

जरावस्था के दोष दिखलाते हो अतः तुम्हारी प्रजा यौवनावस्था में नष्ट हो जायगी और हवनादि कर्म्म दूषक तुम होवोगे।

हे प्रिय पुत्र पुरु ! तू मेरी जरावस्था ले।

पुरु—हे पिता ! मैं आपके वचन का पालन करूँगा। मुझे आप जरावस्था देवें और मेरा यौवन लेवें।

इस पर राजा बहुत प्रसन्न हो के अपनी जरावस्था दे और पुरु से यौवन ले बहुत दिन विषय भोग कर पुनः अपनी जरावस्था पुरु से ले उसे यौवन दे और उसको भारत खण्ड का राजा बना तपस्या के लिए वन चले गये।

आगे इसी पर्व के ८५ वें अध्याय में इस प्रकार कहा गया—

यदो स्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाःस्मृताः ।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥३४॥
पुरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥३५॥

वैशम्पायन राजा जनमेजय से कहते हैं कि हे राजन् ! यदु से यादववंश, तुर्वसु से यवनवंश, द्रुह्यु से भोजवंश, और अनु से म्लेच्छवंश उत्पन्न हुए और पुरु राजा से पौरव वंश जिसमें आप उत्पन्न हुए हैं।

हे विद्वद्गण ! इस प्रकार महाभारत में पाँच वंशों की चर्चा देखते हैं। विचारने की बात यहाँ यह है कि वेदों में ये पाँच नाम मनुष्य मात्र के नाम हैं किसी विशेष आदमी के नहीं। परन्तु महाभारत में विशेष व्यक्ति के ये नाम हो जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु ये पाँचों पाँच वंशों के वंशधर हो जाते हैं। जो वंश सारी पृथिवी पर विस्तृत हुए। मनुष्यमात्र इसके अन्तर्गत हो जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि सृष्टि की आदि में जो पाँच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए जिस कारण प्रजामात्र का नाम

पञ्चजन हुआ। ऋषि लोगों ने वेद के मन्त्र में एक ही स्थान में ये पाँच नाम पा गुण कर्म के अनुसार उन पाँचों वंशों को ये ही पाँच नाम दिये हों इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं। बहुत समय व्यतीत होने पर जब लोग यादव पौरव आदि के वंशों के ठीक कारण न समझने लगे होंगे तो उस समय इस आख्यायिका की उत्पत्ति हुई हो। इसमें एक और विचित्रता है कि राजा ययाति नहुष के पुत्र कहे गए हैं। परन्तु 'नहुष' यह नाम भी मनुष्य सामान्य का है। वेदों में यह नाम आता है ऋग्वेद ६। ४६। ७ में 'नाहुषी कृष्टि' अर्थात् नहुष सम्बन्धी प्रजा अर्थात् मनुष्य सम्बन्धी प्रजा ऐसा कहा गया है। ययाति शब्द का भी एक प्रकार से मनुष्य ही अर्थ है। जिस धातु से 'यदु' बनता है उसी से 'ययाति' भी बन सकता है। अथवा मनुष्यों के नामों में एक नाम 'जगत्' आता है वह 'गम्' धातु से बना है। इसी के समान 'या' धातु से 'ययाति' बन गया है। प्रायः गम् और 'या' का एक ही अर्थ होता है। यह 'ययाति' नाम भी मनुष्य सामान्य का ही सिद्ध होता है। और भी इसमें एक विलक्षणता है ब्राह्मण और असुर दोनों की कन्याओं से ययाति ने सन्तान उत्पन्न किये हैं। आर्य्योंका प्रतिनिधि ब्राह्मण और दस्युओं का प्रतिनिधि असुर माना गया है। मालूम पड़ता है कि जिस समय दस्यु लोग आर्यों के अधीन हुए हैं उस समय दोनों में परस्पर सम्बन्ध होने लगा है। अथवा दस्युओं को प्रसन्नतार्थ उनकी कन्या से सन्तान उत्पन्न कर राज्याधिकारी बनाया गया हो और उसके यशोगान के लिये पौरववंश की स्थापना हुई हो। जो कुछ हो अनुमान होता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यदु, पूरु, अनु, द्रुह्यु और तुर्वसु ये पाँच नाम उन पाँचों वंशों को दिए जो आदि सृष्टि में उत्पन्न हुए।

'गीता और पांचजन्य शब्द'

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ।
पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥गीता १ । १४॥

गीता में देखते हैं कि श्रीकृष्णजी के शंख का नाम 'पांचजन्य' है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रीकृष्णजी उस समय के पृथिवी पर के समस्त वंशों के नायक और चालक थे और सम्पूर्ण पृथिवी के राजाओं को एक सूत्र में ग्रथित करना चाहते थे। अर्थात् सब राजाओं को युधिष्ठिर के अधीन कर सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति फैलाना चाहते थे। इसी हेतु विदित होता है कि कृष्णजी ने अपने शङ्ख का नाम 'पांचजन्य' रक्खा था अर्थात् पाँचों प्रकार के पृथिवीस्थ मनुष्यों का हितकारी शङ्ख। सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति स्थापन के लिये श्रीकृष्ण के हाथ में मानों यह एक चिन्ह था। इससे भी मालूम पड़ता है कि पृथिवी पर पाँच प्रकार के वंश उस समय में भी विद्यमान थे।

'पंचमानव पर आधुनिक विद्वानों की सम्मति'

श्रीयुत महाशय राय शिवनाथजी निज ऋग्वेद भाष्य मण्डल १ सूक्त ७ मन्त्र नवम की टिप्पणी में लिखते हैं कि पाँच मनुष्य जातियां जो इस पृथिवी पर पाई जातीं हैं यह हैं।

१—इण्डो यूरोपियन (Indo European) वा आर्यजाति जो हिन्दुस्तान फारस, यूरोप, यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका, और आइसलैण्ड में रहती है।

२—मंगोलियन (Mongolean) जो चीन, जापान, रूस, ग्रीनलैण्ड और उत्तर अमेरिका में रहती है।

३—नीग्रो (Negro) जो मध्य और दक्षिण आफ्रिका में रहती है।

४—अमेरिकन (American) जो नॉर्थ अमेरिका के मध्य-भाग में और साउथ अमेरिका में रहती है।

५—मलय (Malay) जो मलाया, सुमाट्रा, बोर्नियो, सेलिबीज, फिलिपाइन, फार्मोसा, इत्यादि टापुओं में रहती हैं।

अन्य जातियाँ जो आज कल इस पृथिवी पर पाई जाती हैं। इन ऊपर की मुख्य जातियों के मेल से बनी हैं—जैसे मैक्सिको, पीरू, ब्राजील, इन देशों में इण्डो यूरोपियन मिक्स्ड (Indo European Mixcd) अरब, ईजिप्ट, ट्रिपोली ऐलजीर्या, मोराको इन देशों में सेरों अरेबियन (Sero Arabian) यह संकर जातियाँ पाई जाती हैं। इनका निकास इण्डो यूरोपियन जाति से है। नीग्रो जाति में से एक संकर जाति पपुअन नीग्रो (Papuan Negro) निकली है जो आस्ट्रेलिया के उत्तरवर्ती टापुओं में रहती हैं और मले जाति से एक संकर जाति आस्ट्रेलियन (Australian) निकली है जो आस्ट्रेलिया में रहती है।

यह आज कल के विद्वानों की सम्मति है। यद्यपि इसमें आर्यवंश को अन्यान्य चार वंशों से पृथक् किया तथापि इस विषय में सब कोई सहमत है कि पृथिवी पर पाँच प्रकार के वंश हैं। वेद के अनुसार इन सभों को आर्य कहना चाहिये क्योंकि पञ्चजन वा पञ्चचर्षणि आदि शब्द जहाँ जहाँ आए हैं वहाँ वहाँ सब आस्तिक मनुष्यों से तात्पर्य है क्योंकि इनमें यज्ञ आदि व्रत का विधान पाया जाता है और ये सब मिलकर ईश्वर उपासना करें। राजा को चुनें। अपने गृह पर ऋषियों को बुलावें इत्यादि उपरिष्ट मन्त्र द्वारा अनुशासन पाया जाता है।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि जहाँ जहाँ 'पञ्चजन' आदि शब्द आया है, वहाँ वहाँ सायण प्रायः चार वर्ण और पञ्चम निषाद अर्थ करते हैं। इससे सिद्ध है कि मनुष्य मात्र वेद और यज्ञ के अधिकारी हैं। क्योंकि ये पाँचों सब कार्य में समान हैं यह ऊपर के वाक्यों से विस्पष्ट किया गया है।

द्वितीय प्रश्न का समाधान।

प्रश्न—तब ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा क्यों है? समाधान= गुण के कारण अर्थात् पूर्व में कह चुके हैं आवश्यकतानुसार अनेक वर्ण बनते गए "वर्ण" शब्दार्थ चुनना है "वृञ् वरणे" जिसको जो व्यवसाय पसन्द आता था वह उस को किया करता था और उसी व्यवसाय के नाम पर उस को लोग पुकारा करते थे। यद्यपि वेदों में अनेक वर्णों के नाम आए हैं तथापि ऋषि लोगों ने व्यवहार की सिद्धि के लिए "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" इत्यादि वेदों में लक्षण देख और इस शरीर में भी इन ही चार प्रकार के कार्य्यों को होते हुए निरख मनुष्यजाति को कर्म्मानुसार चार नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र दिये। जैसे शरीर में शिर, हाथ, मध्यभाग और पैर सब ही एक प्रकार से बराबर हैं और एक दूसरे के सहायक हैं और चारों मिल कर ही एक सुन्दर शरीर बना हुआ है इन में से किसी एक के अभाव से इस का सर्व कार्य्य नहीं चलता वैसे ही मनुष्यजातिरूप शरीर में ये चारों वर्ण एक-एक अंग हैं और एक दूसरे के सहायक हो परम सुन्दरता को बढ़ाते हैं इस में जन्म से न कोई श्रेष्ठ और न कोई नीच है। पुनः देखते हैं कि शैशवावस्था में सब ही अङ्ग शिथिल रहते हैं धीरे-धीरे एक दूसरे की सहायता से सब अपने-अपने स्थान में पुष्ट होने लगते हैं। स्वभावतः इन में शिर

सब से श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और एक जिह्वा ये सप्तर्षि इसी में निवास करते हैं इन की ही आज्ञा पर अन्यान्य अङ्गों को चलना पड़ता है इसी प्रकार जानिए कि जन्म समय में सब कोई बराबर हैं परन्तु जिस को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी गई स्वभावतः शिर के समान वह समाज श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि प्रथम इस को अध्ययन का समय अधिक प्राप्त होता है इसी हेतु धार्मिक कर्म्मानुष्ठान का भार इसी के ऊपर छोड़ा जाता है वेद के पारंगत होने के कारण कर्तव्याऽकर्तव्य भी यही अधिक जानता है इस हेतु प्रत्येक व्यवस्था का कार्य्य भी विशेष कर इस की बुद्धि पर छोड़ा जाता है। इस कारण ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवादी जन की अधिक प्रशंसा होती है और होना भी चाहिए। इसी नियमानुसार सर्वत्र ब्राह्मण की प्रशंसा गाई गई है। किसी शास्त्र में चारों वेद के जानने वाले एक की बहुत प्रशंसा और मूर्ख की निन्दा लिखी गई है और लोक भी चतुर्वेदवित् पुरुष की बड़ी प्रतिष्ठा आदर सत्कार और मूर्ख की निन्दा करते हैं। जो चारों वेदों का जानता है उसे चतुर्वेदी कहते हैं। अब आप समझें कि कोई मूर्ख अपना और अपने वंशजों का नाम 'चतुर्वेदी' रख जिस-जिस शास्त्रमें चतुर्वेदी की प्रशंसा है उस-उस को ले लोगों को दिखलाता है कि देखो! इसमें चतुर्वेदी की कितनी प्रशंसा लिखी हुई है मैं चतुर्वेदी हूँ मेरा पूजा सब कोई करो इत्यादि। आज यही लीला सर्वत्र है। आप लोग हम से पूछते हैं कि ब्राह्मण की प्रशंसा वेदों में भी है हम लोग ब्राह्मण हैं इसीहेतु हम श्रेष्ठ हैं। अब आप विचारें कि मूर्ख की सी यह बात है या नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वेद ब्राह्मण की प्रशंशा करते हैं परन्तु ब्राह्मण कौन? जो षडङ्ग वेद शास्त्रों

को पढ़ सत्यासत्य विवेक से पूर्ण है वह ब्राह्मण। परन्तु आज कल क्या हुआ है। अनपढ़ पुरुष भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। क्या वे ब्राह्मण हैं? यथार्थ में अज्ञानता के कारण यह सब बखेड़ा है। सच बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि शब्द अध्यापक, उपाध्याय, योद्धा, वीर, व्यवहारी, व्यवसायी, परिश्रमी, अज्ञानी, मूर्ख, उत्तम, निकृष्ट, सुन्दर, कोमल, कठोर आदि शब्द के समान गुणवाची हैं और वैदिक समय में इन के प्रयोग भी वैसे ही होते रहे। जब अज्ञानता विस्तृत होने लगी उस समय में धीरे-धीरे ये ब्राह्मणादिक नाम वंशपरक हो गये। जैसे आज कल भी अनेकनाम वंशपरक हो गये हैं और होते जाते भी हैं। यथा उपाध्याय, मुख्योपाध्याय, पाठक, शास्त्री, द्विवेदी, चतुर्वेदी। जिस के समीप जाके विद्यार्थी अध्ययन करें उसे उपाध्याय; जो पढ़े पढ़ावे उसे पाठक; शास्त्र जाने उसे शास्त्री; दो वेद जाने उसे द्विवेदी इसी प्रकार चतुर्वेदी श्रोत्रिय आदि शब्दों के भी अर्थ समझें। परन्तु आज कल उपाध्याय आदि शब्द वंशपरक देखते हैं। मिथिला बंगाल आदि देशों में किसी वंश के लोग उपाध्याय कहलाते हैं कोई वंश श्रोत्रिय कोई चतुर्वेदी कोई शास्त्री इत्यादि। अर्थात् उस वंश का लोग परम मूर्ख भी हो एक अक्षर भी न जानता हो वह पढ़े या न पढ़े तथापि वह उपाध्याय वा श्रोत्रिय वा चतुर्वेदी आदि कहलाता ही रहेगा। मथुरा का चौबे एक अक्षर भी नहीं जानता हो परन्तु वह चतुर्वेदी पदवी से कदापि रहित नहीं हो सकता। मिथिला के सैकड़ों वंशों के पुरुष अपने को श्रोत्रिय कहते हैं परन्तु उन में से सैकड़े ९० कोरे निरक्षर हैं परन्तु इन की श्रोत्रिय पदवी कदापि नहीं चल सकती हैं। परन्तु आप यह भी जानते हैं कि यथार्थ में उपाध्याय श्रोत्रिय चतुर्वेदी

आदि पुरुषों की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा कथित है। अब यदि ये श्रोत्रिय, चतुर्वेदी, उपाध्याया पाठक आदि निरक्षर होने पर भी कहा करें कि शास्त्रों में हमारी परम प्रशंसा है अतएव हम सर्वश्रेष्ठ हैं तो यह सत्य हो सकता है ? क्या वे शास्त्रीय वाक्य इन निरक्षरों में कदापि घटते हैं ? नहीं। कदापि नहीं। इसी प्रकार आप लोग समझें कि ये ब्राह्मण क्षत्रिय आदि शब्द भी धीरे-धीरे आजकल के उपाध्याय श्रोत्रिय आदि शब्दवत् वंश-परक हो गये। वे ब्रह्मवित् हों वा न हों परन्तु उस वंश के निरक्षर अज्ञानी भी ब्राह्मण कहलाते जावेंगे इसी प्रकार क्षत्रियादि भी जानिये। वेद और शास्त्र क वाक्य इन पर कदापि चरितार्थ नहीं होते। जो यथाथ में ब्राह्मण हैं उनको ही वे वाक्य वर्णन करते हैं। ब्राह्मण यथार्थ में किसको कहते हैं इसका वर्णन वेद शास्त्रों में बहुत है। जैसे पशुओं में वा पक्षियों में वा जड़ आम्रादि वृक्षों में केवल आकृति वा रूप के देखने से उस उस जाति का बोध हो जाता है वैसा मनुष्य में नहीं है क्योंकि इसमें चिन्ह की विशेषता नहीं इसी कारण मनुष्य एक जाति है यह भी अनेक प्रमाणों से पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं। मनुष्यों में केवल गुणों से ब्राह्मणादिक पहचाने जाते हैं। इसी कारण इनके कृत्रिम और स्वाभाविक वाह्य और आन्तरिक गुणों के बहुत से विवरण शास्त्रों में कहे गये हैं जिनसे हम शीघ्र पहचान सकते हैं कि यह कौन वर्ण है। यह भी यहाँ स्मरण रखना चाहिये ये ही लक्षण जिनमें घटें वे ब्राह्मण। अन्यथा नहीं। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि पश्वादिकवत् मनुष्य में जाति की भिन्नता नहीं। इस कारण प्रथम यहाँ यह भी अति संक्षेप से दिखा देना समुचित होगा कि यथार्थ में ब्राह्मण के कौन-कौन से लक्षण हैं।

तब मालूम हो जायगा कि यथार्थ में ब्राह्मण कौन हैं और क्यों इनकी इतनी प्रशंसा है।

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः स चेतसा यज्ञमिमं वहन्ति। यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्कास्वित्तत्र यजमानस्य संवित्॥ ८। २८। १॥

(सचेतसः) सहृदय (ऋत्विजः) ऋत्विक्गण (यम्+इमम्+यज्ञम्) जिस इस यज्ञ को (बहुधा+कल्पयन्तः) अनेक प्रकार से कल्पित करते हुए (वहन्ति) सम्पादन कर रहे हैं और जिस यज्ञ में (यः+अनूचानः+ब्राह्मणः) जो मौनावलम्बी ब्राह्मण=ब्रह्मा (युक्तः+आसीत्) नियुक्त है (तत्र+यजमानस्य) उस यज्ञ के विषय में यजमान का (का+संवित्) क्या ज्ञान है?

अनूचान=वेदाध्यायी, वा मौनावलम्बी। यज्ञ में ब्रह्मा को मौन रहना पड़ता है। अनु+ऊचान=अनूचान। अथवा न+ऊचानः अनूचानः। दोनों प्रकार से बन सकता है 'अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती' अमर, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो 'अनूचान' अर्थात् वेदाध्यायी हो अथवा यज्ञ में जो ब्रह्मा का कार्य सम्पादन करता हो और जिसके ऊपर यजमान का पूरा भरोसा हो। वह ब्राह्मण है। जो चारों वेदों के ज्ञाता होते हैं वे ही यज्ञ में ब्रह्मा बनाए जाते हैं। केवल ऋग्वेदी होता, केवल यजुर्वेदी अध्वर्यु, केवल सामवेदी उद्गाता और चतुर्वेदविद् ब्रह्मा होते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि एक वेदी ब्राह्मण नहीं हो सकता जो चारों वेद साङ्गोपाङ्ग सहित जाने वही ब्राह्मण है।

ओषधयः सम्वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि॥ १०। ९७। २२॥

यह आलङ्कारिक वर्णन है (सोमेन+राज्ञा+सह) ओषधीश्वर सोमनामक ओषधि से (ओषधयः+सम्वदन्ते) अन्यान्य ओषधिएँ सम्वाद कर रही हैं कि (राजन्) हे सोमराजन्! (यस्मै) जिस रुग्ण पुरुष के निमित्त (ब्राह्मणः+कृणोति) ओषधिसामर्थ्यज्ञ ब्राह्मण चिकित्सा करता है (तम्+पारयामसि) उस रोगी को रोग से हम लोग पार कर देती हैं।

इससे सिद्ध है कि जो लोग ओषधियों के तत्त्वज्ञ हैं और जानकर रोगियों की चिकित्सा करते हैं वे ब्राह्मण हैं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि पृथिवी पर के जितने क्या लताएँ क्या वनस्पति क्या सुवर्ण लोहादि धातु क्या विविध पशु पक्षी पदार्थ हैं इन सबों के जाननेवाले और प्रत्येक वस्तु के स्वभाव गुणादि के तत्त्वज्ञ हैं वे ब्राह्मण हैं क्योंकि वैद्यों को इस सबके ज्ञान की परम आवश्यकता होती है।

सम्वत्सरं शशयानाः ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥७।१०३।१॥

(व्रतचारिणः+ब्राह्मणाः) व्रतचारी ब्राह्मण के समान (संवत्सरं+शशयानाः) शरद् से लेकर वर्षा ऋतु के आगमन तक अपने बिल में ही सोते हुए (मण्डूकाः) मण्डूक=दादुर वर्षा ऋतु में (पर्जन्यजिन्वताम्) मानों, पर्जन्य प्रीतिकर (वाचम्+प्र+अवादिषुः) वाणी बोल रहे हैं।

वेदाध्ययन, सत्यभाषण, सत्यरक्षण, विद्यादानादि व्रत जो सदा किया करते हैं वे ब्राह्मण हैं। यह इस से सिद्ध होता है।

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुते करासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरी स्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥१०।७१।९

(इमे+ये) जो ये लोग (न+अर्वाङ्+न+परः) न कुछ ऐहलौकिक न पारलौकिक (चरन्ति) पर्य्यालोचना करते हैं। और जो (न+ब्राह्मणासः) न वेदाध्ययन न ग्रन्थादि विचार करते हैं। और इस कारण जो (न+सुते+करासः) सोमादि यज्ञ नहीं कर सकते हैं। (ते+एते+अप्रजज्ञयः) वे ये अविद्वान् पुरुष (वाचम्+अभि+पद्य) लौकिक भाषा जान (पापया) पापा अर्थात् हास्यादि से भरी हुई वाणी से युक्त होके (सिरी=सीरिणः) केवल हलग्राही बन (तन्त्रम्) कृषि-लक्षण तन्त्र को (तन्वते) विस्तारित करते हैं वा वस्त्रादि वयन सम्पादन करते हैं। अर्वाक्=नीचे अर्थात् इस लोक का कार्य्य। परः=ऊपर पारलौकिक कार्य्य। सुत=अभिषुत सोम। "सुतं-सोमंकुर्वन्तीति सुतेकराः याज्ञिकाः"। सिरी सिरी=हलग्राही। तन्त्र=कृषि या पट। अप्रजज्ञि="ज्ञा अव बोधने" धातु से 'कि' प्रत्यय होकर जज्ञि बनता है। यहाँ ब्राह्मण शब्द का अर्थ वेदाध्यायी है। जो वेदों को नहीं जानता वह यज्ञाधिकारी नहीं है। इनसे सिद्ध होता है जो वेदोंको पढ़े पढ़ावे वे ही सचमुच ब्राह्मण है परन्तु आज उलटी बात है वेद का एकाक्षर भी न जाने परन्तु क्षत्रिय कुल में जन्म हो ता वह झट सर्वाधिकारी बन जाता है।

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः। सम्वत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं वमू ॥७।१०३।७

यह वर्षा ऋतु के मण्डूक का वर्णन है। (अतिरात्रे+सोमे) अतिरात्र नामक सोमयाग में (ब्राह्मणासः+न) ब्राह्मण के समान अर्थात् सोम यज्ञ के कृत्य में रात्रिमें एकाएका जैसे

ब्राह्मण लोग मन्त्र उच्चारण करते हैं वैसे ही (मण्डूकाः) हे मण्डूको! आप सब भी (न) इस समय (पूर्णम्+सरः) पूर्ण सरोवर में (अभितः+वदन्तः) चारों तरफ ध्वनि करते हुए (सम्वत्सरस्य+तद्+अहः) वर्षा ऋतु के दिन में (परि+स्थ) चारों तरफ फैल जाते हैं। (यत्) जिस से (प्रावृषीणं+बभूव) वर्षा का दिन आया यह प्रतीत होने लगता है। "ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत"। ऋ० ७।१०३।८॥ साम सम्पाद्य वेद-वित् पुरुष जैसे भाषण करते हैं "उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि"॥२८३।२॥ जैसे यज्ञों में उद्गाता ऋत्विक् गाता है जैसे ब्रह्मपुत्र स्तोत्र पढ़ता है तद्वत् ये पक्षिगण गा रहे हैं। इत्यादि अनेकशः मन्त्र गण सूचित करते हैं कि ब्रह्मविद् ही ब्राह्मण है। ये प्रमाण वेदों से दिये अब आगे अन्यान्य आर्ष प्रमाण को भी सुनिये!

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथभिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यञ्च पाण्डित्यञ्च निर्विद्याथ मुनिरमौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येनस्यात्तनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तं ततो कहोलः कौषीतकेय उपरराम॥ बृ० ३।१॥

अर्थः—इसी परमात्मा को जान कर ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणाओं से पृथक् हो पश्चात् शरीर निर्वाहार्थ भिक्षाचर्य्य करते हैं। जोही पुत्रैषणा है वही वित्तैषणा है और

जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है यह दोनों एषणाएं अर्थात् कामनाएँ हैं इस हेतु ब्राह्मण पाण्डित्य को अच्छे प्रकार जान बाल्यभाव से स्थिर रहे और बाल्य और पाण्डित्य को जान तब मुनि होता है और अमौन और मौन को जान तब ब्राह्मण होता है वह ब्राह्मण किस से होता है जिस से होवे उस से ऐसा ही होवे इस के अतिरिक्त सब दुःख ग्रस्त है। तब कहोल कौषीतकेय चुप हो गया।

इस वाक्य से विस्पष्ट है जो ब्रह्मविद् और पूर्ण विवेकी और ईश्वर में परम विश्वासी और सांसारिक क्षणिक सुख से सदा विमुख परम ज्ञानी है, वह ब्राह्मण कहलाता है। पुनरपि इसी उपनिषद् में कहा है "यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गिविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः। ब्रहदारण्यक उपनिषद्। ३। ८। १०। हे गार्गि! जो इस अक्षर ब्रह्म को न जान कर इस लोक से प्रस्थान करता है वह कृपण है और हे गार्गि! इस अक्षर ब्रह्म को जान कर इस लोक से जो प्रस्थान करता है वह ब्राह्मण, इससे भी यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मवित् को ही ब्राह्मण कहते हैं। इस प्रकार सर्वआर्षग्रन्थ इसी भाव का उपदेश देते हैं आगे महाभारतादि ग्रन्थ से भी प्रमाण दिये जावेंगे। यहाँ इतना समझना चाहिये कि वेद, शास्त्र जिन गुणों के कारण मनुष्य को ब्राह्मण कहते हैं निःस्सन्देह वे गुण बहुमूल्य अनर्घ हैं इस हेतु एतद्गुणविशिष्ट पुरुषों की प्रशंसा सर्वत्र कथित होना उचित है। अब आप समझ सकते हैं कि वेद में ब्राह्मणों की क्यों प्रशंसा है। आगे मैं महाभारतादिकों से ब्राह्मण के लक्षण पुनरपि निरूपण करूँगा। इस समय जिन ऋचाओं को द्वितीय प्रश्न में आपने प्रमाणत्वेन उपन्यास किया था उनका सत्यार्थ श्रवण कीजिये।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजासोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ यजुः ।९।४०॥

राज्याभिषेक काल में इस मन्त्र के द्वारा राजा होने की घोषणा की जाती है। (देवाः) हे ऋषि मुनि गणो ! हे विविध देशाऽऽगत विद्वद्गणो ! हे सेना ध्यक्षादि वीर पुरुषो ! हे प्रजा-नायको ! आप सब कोई मिल कर (इमम्) इस वृत राजा को (असपत्नम्+सुवध्वम्) शत्रु रहित बनाकर अपनी-अपनी रक्षा में प्रेरणा कीजिये। किस निमित्त ? (महते+क्षत्राय) महाबल के निमित्त (महते+ज्यैष्ठ्याय) महान् ज्येष्ठता के लिये (महते+जानराज्याय) मनुष्यों के महान् आधिपत्य के लिये और (इन्द्रस्य+इन्द्रियाय) आत्मा के वीर्य्य के लिये अर्थात् आत्मज्ञान के लिए इन सब कार्य्यों के लिए इस वृत राजा को शत्रु रहित बनाओ। अब आगे राजा के माता-पिता के और जिन प्रजाओं में वह राजा बनाया जाता है उनका नाम लिया जाता है सो आगे कहते हैं (अमुष्य+पुत्रम्) अमुक पुरुष का पुत्र (अमुष्यै+पुत्रम्) अमुक स्त्री का पुत्र (अस्यैविशः) इस कुरु देश वा पाञ्चाल देश अथवा महाराष्ट्रादि देश की प्रजाओं का अधिपति अमुक पुरुष बनाया जाता है इसको आप लोग स्वीकार करें। अब प्रजाओं की ओर देखकर कहते हैं कि (अमीः) हे अमुक देश की प्रजाओ ! (वः) आप लोगों का (एषः+राजा) यह राजा है। (अस्माकम्+ब्राह्मणानाम्) हम ब्राह्मणों का (सोमः +राजा) सोम अर्थात् ईश्वर राजा है। इसका भाव यह है कि ब्रह्मावत् परमज्ञानी सदा परोपकार परायण निःस्वार्थ ब्रह्मवादी

पुरुष का नाम ब्राह्मण है यह निरूपण हो चुका है। इस हेतु निःस्सन्देह ऐसे पुरुष का शासक ईश्वरातिरिक्त अन्य कौन हो सकता है। अन्तिम वाक्य से ब्रह्मवित् पुरुष की गुणस्तुति गाई गाई है।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥यजु० २०।२५॥

(तम्+लोकम्) उस देश को मैं (पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) पुण्य समझता हूँ (यत्र) जिस देश में (ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) ज्ञान और बल और ज्ञानी और बलिष्ठ (सह+चरतः) साथ ही सर्व व्यवहार का अनुष्ठान करते हैं। वे दोनों कैसे हैं (सम्यञ्चौ) साथ-साथ अच्छे प्रकार ईश्वर की उपासना करनेवाले। पुनः वह देश कैसा है (यत्र+देवाः+सह+अग्निना) जहाँ पर के विद्वान् सदा अग्नि के साथ रहते हैं अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्मों में सदा रत रहते हैं। इससे यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञान और बल मिल करके जहाँ व्यवहार करते हैं यथार्थ में वह देश पवित्र है क्योंकि वहाँ अकारण धर्म्मरहित व्यर्थ मनुष्यादि वध नहीं होता है। अन्यथा बलिष्ठ पुरुष अकारण ही मनुष्यों को सर्व प्रकार से लूट मार करते हैं। कौन ऐसा आज देश है कि अज्ञानी परन्तु बलसम्पन्न राजा के कारण सहस्रों मनुष्यों का संहार नहीं होता रहता। पुनः आगे कहा गया है कि 'यत्र देवाः सहाग्निना' केवल ज्ञान और बल से भी कार्य में कभी-कभी विघ्न पड़ जाता है। इसके साथ-साथ कर्मानुष्ठान की भी परम अपेक्षा है क्योंकि कर्मानुष्ठान ईश्वर में विश्वास दिलाता है। ईश्वर-विश्वासी ज्ञानी और बलिष्ठ कर्म्म में प्रवृत्त होते हैं ऐसे पुरुष सदा ईश्वर की आज्ञा से डरते रहते हैं इसी कारण

ऐसे-ऐसे राज्य में अकारण हिंसा आदि दोष कदापि नहीं होते यह वेद का भाव है। पुनः।

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव। सोमो ह्यस्यदायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः। अथर्व०।५।१८।६

(अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानविज्ञानरूप ज्योति से प्रकाशमान (ब्राह्मणः+न+हिंसितव्यः) ब्राह्मण की हिंसा नहीं करनी चाहिए। (प्रियतनोः+इव) जैसे अपने प्रिय शरीर के किसी भाग को हानि कोई नहीं पहुँचाना चाहता है तद्वत् ब्राह्मण को क्षति न पहुँचावे। (हि) क्योंकि (सोमः+अस्य+दायादः) ईश्वर इस का बन्धु बान्धव है और (इन्द्र) पृथ्वीश्वर (अस्य+अभिशस्तिपाः) इस के यश का रक्षक हैं। हम पूर्व में कह चुके हैं कि ब्राह्मण किस को कहते हैं। ऐसे ब्राह्मण की हिंसा करने से क्या कभी देश में कुशल हो सकता है। नहीं। इस हेतु बारम्बार वेद भी कहते हैं कि ज्ञानी की रक्षा करो। परन्तु अज्ञानता की बात यहाँ यह है कि जैसे कोई अज्ञानी पुरुष अपने को चतुर्वेदी नाम रख शास्त्रोक्त चतुर्वेदी की प्रशंसा अपने पर घटावे वैसी हो आज लीला है। विद्वानो! सोचो विचारो! जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं उन की तो प्रतिष्ठा मर्य्यादा होनी आवश्यक है। परन्तु ये वाक्य क्या किसी जाति विशेष पर घटते हैं? नहीं। यह सब वर्णन सामान्य रीति से ब्रह्मज्ञानी पुरुष का है। ब्रह्मज्ञानी की परम वृद्धि होवे इस कारण अथर्ववेद ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की स्तुति करता है न कि यह वेद किसी जाति की खास तौर पर कीर्ति गाता है। अब आप विचार कर सकते हैं कि अथर्ववेद क्यों ब्राह्मण की प्रशंसा

करता है। यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में वंशानुगत वर्ण नहीं है किन्तु गुणानुगत वर्ण है।

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति। यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥अथर्व०। ५। १९। ९॥

(नारद) हे नारद! अर्थात् ईश्वरीय ज्ञानरत! (यः) जो कोई (ब्राह्मणस्य + सद् + धनम्) ब्राह्मण के परोपकारी परिश्रमोपार्जित धन को (अभि + मन्यते) निष्कारण छीनता है वा उस पर अपना अधिकार स्थापित करता है (तम् + वृक्षाः + छायाम् + अपसेधन्ति) उस पुरुष को जड़ वृक्षादिक भी शरण नहीं देते हैं और प्रत्येक अज्ञानी पुरुष उस से कहते हैं कि ऐ ब्रह्महा पुरुष! (नः) हम लोगों के निकट तू (मा + उपगा) मत आया कर।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का व्याख्यान बहुत कर चुके हैं। आप लोगों ने अब बहुत कुछ वेदों के मन्त्रों पर विचार कर लिया होगा क्योंकि मैंने अनेक मन्त्र आप लोगों को सुनाए। अब आप विद्वद्गण निष्पक्षभाव से मीमांसा करें कि वेद किस प्रकार के वर्ण विभाग मानते हैं और किस हेतु ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा है। द्वितीय प्रश्न का समाधान अच्छे प्रकार से हो गया अब आप लोगों का सन्देह भी दूर हो गया ऐसा विश्वास करते है।

इति तृतीयं ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीदित्यादि व्याख्यान निर्णयप्रकरणं समाप्तम्।

अथ तृतीयादि प्रश्न समाधान प्रकरणम् ।

तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम आदि प्रश्नों के समाधान जानने के लिये प्रथम इसकी आवश्यकता है कि वैदिक सिद्धान्त की रक्षा के लिये प्राचीन ऋषियों ने कौन से उपाय किये थे। आप लोग श्रवण कर चुके है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों समाज के अंग हैं। केवल दस्यु वा दास उपद्रवी पुरुष को कहते हैं। वे आर्य्यों से पृथक् गिने गये हैं। परन्तु 'शूद्र' समाज से शरीर से चरणवत् पृथक् नहीं "तपसे शूद्राय" कठिक कठिक कार्य्य सम्पादक को शूद्र कहते हैं। इन चारों का पठन पाठन में, यज्ञादि शुभ कार्य्य में तुल्याधिकार है यह 'पञ्चमानव' प्रकरण में अच्छे प्रकार सिद्ध हो चुका है। अब आप वैदिक ज्ञान के रक्षार्थ प्राचीन लोगों ने जो उपाय किये सो सुनिये ! प्रथम नियम किया गया कि मनुष्य मात्र विद्याध्ययन करें और उनका एक नाम 'द्विज' रक्खा जाय। इस द्विज में विद्या के न्यूनाधिक के विचार से तीन भाग किये जायँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और जो न पढ़ें उनकी संज्ञा व्रात्य, असंस्कृत, वृषल, शूद्र आदि रक्खी जाय। जो पञ्चम वर्ष से लेकर १६ सोलहवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट हो व्रतादि धारण पूर्वक ४८ वा ३६ वर्ष केवल विद्याध्ययन में लगावे वह द्विज ब्राह्मण कहला सकता है। जो सोलहवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट न हो सके अथवा होकर भी पूर्ण समय तक अध्ययन न कर पावे वह यदि २२ बाईसवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट होवे तो वह क्षत्रिय बन सकता है। ब्राह्मण नहीं। इसी प्रकार २२ वें वर्ष में गुरुकुल में प्रविष्ट न हो सके किन्तु २३ वें अथवा २४ वें वर्ष में प्रविष्ट हो तो वह ब्राह्मण और क्षत्रिय पद को तो प्राप्त नहीं कर

सकता किन्तु वह वैश्य बन सकता है। इसके साथ-साथ एक यह भी नियम था कि जिसके माता पिता अथवा वंश का वंश अथवा वंशपरम्परा अध्ययन व्रत के छूटने से शूद्र हो गई है वह यदि अपने सन्तान को विद्या पढ़ाना चाहता हो तो नियमानुसार वह बालक ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य बन सकता है। इस प्रकार विद्याध्ययन न करने वाले को केवल व्रात्य वा शूद्र ही कह कर नहीं रहजाते थे किन्तु इन असंस्कृतों के साथ द्विज न तो पठन पाठन का और न विवाहादिक का सम्बन्ध रखते थे। वे व्रात्य समाज वहिष्कृत हो जाते थे। इन में दो एक प्रमाण देते हैं वे ये हैं।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् ॥१२॥ गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥३॥ आषोडषाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवत्याऽऽद्वात्रिंशात् क्षत्रियस्याऽऽचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र द्वितीय प्रपाठक दशमी कारिडका ॥

ऐसे ही वचन अन्यान्य गृह सूत्रों में भी हैं। भाव यह है कि गर्भ के दिन से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का, गर्भैकादश वर्ष में क्षत्रिय का, गर्भ से द्वादश वर्ष में वैश्य का उपनयन होना चाहिये। यदि इस काल में न हो सके तो १६ वें वर्ष तक ब्राह्मण का, २२ वें तक क्षत्रिय का और २४ वें तक का वैश्य का उपनयन अवश्य हो जाना चाहिये। मनुस्मृति में भी ऐसे ही वचन हैं यथाः—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत—ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भैकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशोविशः ॥ ३६ ॥ मनु० २

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३ ॥

इस का भी अर्थ पूर्ववत् ही है। अब आगे दिखलाते हैं कि इतने समय में भी जो विद्याध्ययन के हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट नहीं हुआ है उस के साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करे। यथा—

अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रिका भवन्ति ॥ ५ ॥ नैनामुपनयेयुर्नाध्यापयेयु र्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र ॥ अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्य विगर्हिताः ॥ ३९ ॥ मनु० २ नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धान् आचरेन्मानवैःसह ॥४० ॥

इस के अनन्तर मनुष्य वेदाधिकार से रहित हो जाते हैं। इन को पुनः उपनयन न करावे, न पढ़ावे, न इन के साथ विवाहादि व्यवहार करे। मनु जी भी यही कहते हैं। विशेष यह है कि अध्ययन व्रत से रहित पुरुष 'व्रात्य' कहलावें और आर्य्यों में वे निकृष्ट नीच माने जाँय। आपत्तिकाल में भी इन अपवित्र मनुष्यों के साथ ब्राह्म और यौन सम्बन्ध अर्थात् वेदाध्ययनाध्यापन और विवाहदिक सम्बन्ध न जोड़े।

अब इस पर विचार कीजिये कि ब्राह्मण कौन है और शूद्र किस को कहते हैं ?। बात यह है कि हम लोग धर्म ग्रन्थों पर ध्यान नहीं देते हैं। प्रचलित व्यवहार को धर्म्म मान सर्वथा धर्म्म विच्छेद करते हैं। आप लोग देखते हैं कि मनुप्रभृति

धर्म्मतत्त्ववित् पुरुष वर्णव्यवस्था किस पर निर्भर रखते हैं। इन का विस्पष्ट कथन है कि इन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पुत्र अनधीत रहने पर परम अग्राह्य अस्पृश्य शूद्र बन जाते हैं। इतनाही नहीं किन्तु इन के साथ जन्म भर किसी प्रकार के व्यवहार न करे। इस हिसाब से आज प्रायः सब ही महा-शूद्र हैं क्योंकि नियम से कोई एक पुरुष भी गुरुकुल में अध्ययन नहीं करता है और इसी निममानुसार शूद्रों की निन्द्रा है क्योंकि धर्म शास्त्रादिकों में इन्हीं असंस्कृत व्रात्यों को शूद्र पदवी दी गई है। अब आप लोगों को प्रतीत हो गया होगा कि शूद्रों की निन्दा क्यों कथित है। शूद्र कोई जाति विशेष नहीं अनधीत पुरुष का नाम ही शूद्र यहाँ है, आगे चल कर मनुजी बड़े जोर देकर कहते हैं किः—

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।

तान् सावित्रापरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत्॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी यदि अव्रती पुत्रों को उत्पन्न करें अर्थात् अपने पुत्रों को उपनयन सस्कार न करें करावें तो वे वेद के अनधिकारी माने जाँय और उनकी संज्ञा 'व्रात्य' होवे। इस प्रकार अध्ययन के ऊपर ही वर्णव्यवस्था बाँधी है।

ऐतरेयादि ऋषि और वर्णपरिवर्तन

अब हम आपको बहुत से उदाहरण दिखलाते हैं कि जो दास दासी के पुत्र थे परन्तु वे ऐसे विद्वान् हुए कि जिनके लिखित ग्रन्थ पढ़ पढ़ाकर लोग वैदिक बनते हैं। उनमें से प्रथम ऐतरेय ऋषि हुए हैं। इन्होंने ऋग्वेद के ऊपर अनेक ग्रन्थ लिखे।

ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयोपनिषद् आदि। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ही संपूर्ण ऋग्वेदीय श्रौत और गृह्यसूत्र हैं और इसी अनुसार सारे वैदिक याग सम्पादित होते हैं। वे ऐतरेय ऋषि दासी पुत्र थे। 'मही' इनकी माताका नाम था और इनकी माता नीच जाति की दासी थी इस कारण इसको 'इतरा' भी कहते थे। 'इतरा' शब्दार्थ ही नीच है यथा—"इतरस्त्वन्यनीचयोः" अमरकोश ॥ ये दासीपुत्र होने पर भी इतने बड़े विद्वान् हुए हैं कि जिनके लिखित ग्रन्थ विना ऋग्वेद का तत्त्व ही नहीं खुलता है। द्वितीय कवष ऐलूष हुए हैं। इनके विषय में ऐतरेय ब्राह्मण इस प्रकार लिखता है यथाः—

"ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। ते कवषमैलूषं सोमादनयन्। दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति? तं बहिर्धन्वोदवहन्। अत्रैनं पिपासा हन्तु सरस्वत्या उदकं मा पादिति। स बहिर्धन्वोदूढः पिपासयावित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्। तेवाऋषयोऽब्रुवन् विदुर्वा इमंदेवा इमं ह्वयामहै इति तथेति। इत्यादि ॥ ऐतरेयब्रा० ८। १९।

ऋषि लोग सरस्वती के तट पर यज्ञ करते थे। उन्होंने कवष ऐलूष को यज्ञ से बाहर निकाल दिया क्योंकि एक तो वह दासीपुत्र और दूसरा कितव (जुआरी) था और अपने आचरणों से बहुत ही भ्रष्ट था। पश्चात् इसने अध्ययनरूप महाव्रत को धारण किया है और सम्पूर्ण ऋग्वेद का अध्ययन करने पर उसे वेद के नवीन-नवीन विषय भासित होने लगे। यह देख ऋषियों ने उसे बुलवाया इतना ही नहीं किन्तु उसे आचार्य बनाकर यज्ञ किया। आप देखें कि एक दासीपुत्र की कितनी प्रतिष्ठा हुई। तृतीय सत्यकाम जाबाल हैं। यह वेश्यापुत्र थे इनकी चर्चा आगे

पुनः की जायगी ये ऐसे वेदान्ती हुए जिनके अनुकरण से आज लोग वेदान्ती बनते हैं। अब पुराणों से अनेक उदाहरण यहाँ दिखलाते हैं। इन पर विचार कीजिये।

मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तुमानवाः ।१५।आदिप०७५।

महाभारत के इस श्लोक से सिद्ध है कि मनुजी से सब मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण मनुष्य वा मानव वा मनुज नाम प्रसिद्ध हुआ। इनसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए। मनु कौन हैं इसका भी वर्णन बहुत कुछ हो चुका है। यहाँ सच्चेप से दिखाया जाता है कि सूर्य और चन्द्र दो वंश क्षत्रियों के कहे जाते हैं। इनका वंश किस प्रकार बना और इनमें कैसे नानावर्ण उत्पन्न हुए। यह प्रकरण रोचक है। हम प्रथम विष्णु पुराण से आरम्भ करते हैं। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश के प्रारम्भ से ही देखिये। मैत्रेयउवाच० "श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशांस्तांस्त्वं प्रब्रूहि मे गुरो"। अ० १।२॥ प्रथम पराशरजी से मैत्रेय पूछते हैं कि हे गुरो! आपने कृपा कर मुझको नित्य नैमित्तिक कर्म्म, वर्णधर्म्म और आश्रमधर्म्म कह चुके अब मैं वंशों का वर्णन सुनना चाहता हूँ। सो आप कहें। पराशर उवाच "मैत्रेय श्रूयतामयमनेक यज्विवीरशूरभूपालालंकृतो ब्रह्मादि र्मानवो वंशः"। हे मैत्रेय! इस मानव वंश को सुनो। जिससे अनेक याज्ञिक शूर, वीर, भूपाल, हुए हैं और जिसका मूल कारण ब्रह्मा है।

ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्टजन्मा दक्षःप्रजापतिर्दक्षस्याप्यदिति र्रदितेर्विवस्वान् विस्वतोमनुः मनोरिक्ष्वाकु नृग धृष्ट

शर्य्याति नरिष्यन्त पांशु नाभागनेदिष्ट करूष पृषध्राद्याः पुत्रा बभूवुः ४ । १ ७ ।

'ब्रह्मा के दक्षिण अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति हुए। दक्ष की अदिति कन्या हुई। अदिति से विवस्वान्। विवस्वान् से मनु उत्पन्न हुए और मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, पांशु, नाभगनेदिष्ठ, करूष और पृषध्र। मनुजी से इस प्रकार अनेक वंश चले। अब मनु के पुत्रों के विषय में पृथक्-पृथक् लिखते हैं।

१ पृषध्र।

पृषध्रस्तु गुरु-गोवधाच्छूद्रत्वमगमत् विष्णु पु० ।४।१।१४।

गुरु की गौ के वध से पृषध्र शूद्र हो गया। इसी विषय में हरिवंश कहता है।

पृषध्रोहिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ।
शापाच्छूद्रत्व मापन्नः ॥६५६ श्लोक ।

हे जनमेजय! पृषध्र गुरु की गौ मारकर शूद्र हो गया। इस विषय में भागवत यों कहता है।

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणाकृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥
एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥
एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ।

तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससारह ॥ ५ ॥
खड्ग मादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।
अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥
मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ।
अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रूं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥८॥
तं शशाप कुलाचार्य्यः कृतागस मकामतः ।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्म्मणा भविताऽमुना ॥ ९ ॥
एवंशापस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः ।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥
एवं प्रवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्नि मुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

मनु-पुत्र पृषध्र को गुरु वसिष्ठ ने गोपालक बनाया। वह तत्पर हो रात्रि में बीरासन लगा गौवों की रक्षा करने लगा ॥ ३ ॥ एक समय रात्रि में मेघ बरसते हुए एक व्याघ्र गाशाला में आ घुसा। गौएँ उठ कर भयभीत हो गोष्ठ में हलचल मचाने लगीं ॥ ४ ॥ उस व्याघ्र ने एक गौ पकड़ ली। वह गौ भयातुर होकर बहुत चिल्लाने लगी। उस का रोदन सुन पृषध्र निकला ॥ ५ ॥ रात्रिमें अन्धकार छा गया था। तारागण भी नहीं थे वह पृषध्र हाथमें खड्ग ले व्याघ्रकी शंका से अपनी कपिला गौ के शिर पर मारा ॥ ६ ॥ उस ने समझा कि शार्दूल मरा। परन्तु प्रातः काल उठ देखता है कि कपिला गौ मरी हुई है। वह बहुत दुःखित हुआ ॥ ८ ॥ अज्ञानतः अपराधी पृषध्र को कुलाचार्य ने शाप दिया कि इस कर्म्म से क्षत्रियों में अधम

होकर भी नहीं रहेगा किन्तु शूद्र ही होगा ॥ ८ ॥ इस ने कृतांजलि हो गुरु के शाप को ग्रहण किया। इस के अनन्तर वह शूद्र होकर ऊर्ध्वरेता हो मुनिप्रिय तपस्या करने लगा भगवान में बड़ी प्रीति और भक्ति की अन्त में बन में दावाग्नि देख अपने शरीर को दग्ध कर दिया और ब्रह्म को प्राप्त हुआ (१)

२ करूष।

करूषात् कारूषा महावलाः क्षत्रियाः बभूवुः।

विष्णुपु० ४।१०।५

करूष से महाबलिष्ठ क्षत्रिय उत्पन्न हुये। इस पर भागवत की सम्मति।

कारूषान्मानवा दासन् कारूषाः क्षत्रजातयः

उत्तरापथगोप्तारो ब्राह्मण्या धर्म्मवत्सलाः भा० ६।२।१५

मनु-पुत्र कारूष से कारूष नामक क्षत्रिय हुए जो उत्तर देश के रक्षक और धर्म्मवत्सल और ब्राह्मण हितेच्छु हुये।

३ नाभाग ॥

नाभागो नेदिष्ठपुत्रस्तु वैश्यातामगमत्। वि० ४।१।१६

नेदिष्ठ पुत्र नाभाग वैश्य हुए।

यद्यपि नाभाग वैश्यवृत्ति करने लगे परन्तु इनके सन्तान पुनः राजा भी हुए हैं अर्थात् वैश्य से पुनः क्षत्रिय हुए। इन का वंश इस प्रकार विष्णु पुराण में कहा है। नाभाग, भलन्द,

---

(१) यह पृषध्र शूद्र होने पर भी बड़ी तपस्या की और अन्त में ब्रह्ममें लीन हुआ। परन्तु रामायण में शूद्र को तपस्या निषिद्ध है।

वत्सप्रि, प्रांशुखनित्र, चक्षुष, विंश, विविंश चरनीनेत्र, अतिभूति, करंधम अविक्षि, मरुत्त। ये उत्तरोत्तरपुत्र और पूर्व पूर्व पिता हैं ऐसा जानना।

मरुत्त के विषय में विष्णुपुराण करता है

यस्येमावद्यापि श्लोकौ गीयेते। मरुत्तस्य यथायज्ञास्तथा कस्या भवद्भुवि। सर्वं हिरण्मयं यस्य यज्ञस्त्वति शोभनम् ॥ १८ ॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
मरुतः परिवेष्टारः सदस्याश्चदिवौकसः ॥१९॥
मरुतश्चक्रवर्ती नारिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप इत्यादि ।२०।

आज भी मरुत चक्रवर्ती राजा के सम्बन्ध में ये दो श्लोक गाए जाते हैं। मरुत्त का जैसा यज्ञ हुआ पृथिवी पर वैसा यज्ञ किसका हुआ? जिसके यज्ञ में सब ही वस्तु हिरण्यमय थी। सोमरस से इन्द्र अत्यानन्दित हुए और दक्षिणा से ब्राह्मण। देव सदस्य और मरुद्गणा उस यज्ञ में अन्न परोसनेवाले थे। इत्यादि। यह मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए। इनके एक पुत्र नरिष्यन्त हुआ। इस वैश्य वंश में अनेक ऋषि भी हुए हैं।

श्रीमद्भागवत नवमस्कन्ध द्वितीयाध्याय में भी इसी प्रकार का वर्णन है। यथा

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत्।
संवर्तो याजयद्यं वै महायोग्यंगिरः सुतः ॥२६॥
मरुत्तस्य यथायज्ञो नतथाऽन्यस्यकश्चन।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥

हरिवंश (११) में कहा गया है कि नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्य से ब्राह्मण हुए। यथाः—

नाभागारिष्ट पुत्रा द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतांजातौ।

४ धृष्ट

धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रं समभवत्। वि० ४।२।२

विष्णुपुराण कहता है कि धृष्ट से धार्ष्टक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। इसी विषय में भागवत कहता है।

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गताक्षितौ।६।२।२३॥

धृष्ट से धार्ष्ट क्षत्रिय हुए। पुनः क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए।

५ अग्निवेश्य

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः॥२१॥

ततो ब्रह्मकुलं जातमग्निवेश्यायनं नृप॥२२॥

अग्नि वेश्य के विषय में भागवत कहता है देवदत्त के पुत्र अग्नि वेश्य हुए। कानीन जातूकर्ण ऋषि नाम से भी हैं। इन के वंश में अग्निवेश्य गोत्र वाला ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ। इत्यादि

६ रथीतर

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चांगिरसः स्मृताः।

रथीतरस्य प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥२॥

विष्णुपुराण चतुर्थ अंश द्वितीयाध्याय में लिखा है कि नभग, नाभाग, अम्बरीष, विरूप, पृषदश्व, और रथीतर उत्तरोत्तर

पुत्र हुए। ये सब यद्यपि क्षत्रिय थे परन्तु रथीतर गोत्र के ब्राह्मण हो गए।

इस विषय में भागवत कहता है।

रथीतरस्याप्रजस्य भार्य्यायां तन्तवेऽर्थितः।
अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२॥
एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेताः द्विजातयः ॥२३॥९।६।

उस रथीतर के सन्तान हीन होनेपर पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रार्थित अङ्गिरा ने रथीतर की स्त्री में अनेक ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र उत्पन्न किये। वे आंगिरस गोत्र वाले ब्राह्मण हुए। रथीतर की अन्य स्त्री के पुत्र रथीतर गोत्र वाले क्षत्रिय हुए। इत्यादि कथा देखिये।

७ हारीत

अम्बरीषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत्।
तस्माद्धरितो यतोऽङ्गिरसो हारीताः ॥ वि० ४।३।५॥

मांधाता का पुत्र अम्बरीष। उस का पुत्र युवनाश्व। इस के वंश में हरित। हरित से जो वंश चले वे अंगरिस और हारीत गोत्र वाले ब्राह्मण हुए। लिङ्ग पुराण कहता है किः—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता यत आत्मजाः।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित। हरित से हारीत पुत्र हुए। वे अङ्गिरा के पक्ष में हुए अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। वायु पुराण कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन करता है यथाः—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता भूरयः स्मृताः ।
एतेह्यंगिरसः पुत्राः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित हुआ। इस के गोत्र में अनेक हारीत कहलाने लगे वे अङ्गिरा से हुए और पीछे क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

८ शौनक

क्षत्रवृद्धात् सूनहोत्रः पुत्रोऽभवत् काशलेशगृत्स मदा, स्त्रयोऽस्याभवन् । गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवर्तयिताऽभूत् ॥ १ ॥ काशस्य काशिराजततो दीर्घतमापुत्रऽभूत् धन्वन्तरिस्तुदीर्घतमसोऽभूत ॥ वि० पु० ४।८।१॥

क्षत्रवृद्ध का सूनहोत्र पुत्र। सुनहोत्र के काश, लेश और गृत्समद तीन पुत्र हुए। गृत्समद का शौनक पुत्र हुआ। इसी ने चारों वर्णों की व्यवस्था चलाई। काश का काशिराज। उस से दीर्घतमा। उस से धन्वन्तरि। वायुपुराण इस विषय में यों कहता है:—

पुत्रोगृत्समदस्य च सुनकोयस्य सौनकः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच ॥
एतस्य वंशेसंभूता विचित्रा कर्म्मर्द्विज ।

गृत्समद का पुत्र सुनक। सुनक का पुत्र सौनक, इस सौनक से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण कर्म्मों से बने।

हरिवंश की सम्मति अध्याय ॥ २९ ॥

पुत्रोगृत्समदस्यापि सुनको यस्य शौनकः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच ॥

६ गृत्समति

इस के विषय में ऐसा ही हरिवंश ३२ अध्याय में कहा है:—

सचापिवितथः पुत्रान् जनयामास पञ्चवै ।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैवच ।
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ॥
काशकश्च महासत्वस्तथागृत्समतिर्नृपः ।
तथागृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥

वितथ के पाँच पुत्र हुए। सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग, कपिल। सुहोत्र के महासत्त्व काशक और गृत्समति दो पुत्र हुए। गृत्समति के सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हुए। क्षत्रवृद्ध के विषय में भागवत ॥ ९ । १७ । २

क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ।
काश्यः कुशो गृत्समद इतिगृत्समदादभूत् ॥
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ।

क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र। सुहोत्र के तीन पुत्र हुए। काश्य, कुश, गृत्समद। गृत्समद का शुनक। और शुनक से शौनक जो ऋग्वेदियों में श्रेष्ठ मुनि हुए।

गृत्समद

द्वितीय मण्डल के आरम्भ में सायण इस प्रकार कहते हैं।

मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः। स च पूर्वमांगिर-

सकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीतः इन्द्रेण-मोचितः । पश्चात्तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समद-नामाऽभूत् । तथाचानुक्रमणिका ।

य आङ्गिरसः शौनहोत्रोभूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत् ।

द्वितीय मण्डल के द्रष्टा गृत्समद ऋषि हैं । वह प्रथम आंगि-रस कुल में शुनहोत्र के पुत्र थे । यज्ञ में असुरों ने उन्हें पकड़ लिया । तब इन्द्र ने रक्षा की । इनके ही वचन से भृगुकुल में शुनक पुत्र गृत्समद के नाम से प्रसिद्ध हुए जैसा कि अनुक्रमणिका में लिखा है । जो शौनहोत्र आंगिरस थे पीछे वह शौनक भार्गव गृत्समद हुए जिन्होंने द्वितीय मण्डल देखा ।

महाभारत अनुशासन पर्व में वीतहव्य की आख्यायिका के साथ गृत्समद का वर्णन आया है ।

वीतहव्य और गृत्समद

युधिष्ठिर उ०—श्रुतं ते महदाख्यान मेतत्कुरुकुलोद्भव ।
सुदुष्प्रापं यद्ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदताम्बर ॥१॥
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्त मित्युत ।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥२॥
वीतहव्यश्चनृपतिः श्रुतोमे विप्रतांगतः ।
स केनकर्म्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तम ॥३॥

अनु० ॥ ३०

भीष्मपितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं कि आप कहते हैं कि

ब्राह्मणत्व दुष्प्राप है। परन्तु विश्वामित्र ब्राह्मण हुए। यह भी सुना है कि वीतहव्य भी ब्राह्मण हुए। हे पितामह! वीतहव्य की कथा सुनाइये। किस तपस्या से वह ब्राह्मण हुए।

भीष्म उवाच—शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।
राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम् ॥५॥

भीष्म कहते हैं कि सुनो जिस प्रकार वीतहव्य ब्राह्मण हुए। वीतहव्य और काशि-राज के सन्तानों में बराबर युद्ध होता रहा। सर्वनाश होने पर काशीराज दिवोदास भरद्वाज की शरण में गए। भरद्वाज के यज्ञ करने से दिवोदास को एक पुत्र प्रतर्दन नाम का हुआ। इसने वीतहव्य के सकल दायादों को युद्ध में मार गिराया। वीतहव्य भागकर भृगु के आश्रम में जा छिपे वहाँ पर भी प्रतर्दन पहुचे और भृगु से कहा कि आपके आश्रम में आए हुए वीतहव्य को दीजिये। भृगु ने कहा कि राजन्! यहाँ क्षत्रिय कोई नहीं है किन्तु सब ही द्विज ही हैं यह सुन वहाँ से प्रतर्दन चले गये।

"भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितांगतः" भृगु के वचन मात्र से वह ब्रह्मर्षि हुए। "वीतहव्यो महाराजो ब्रह्मवादित्व मेव च। तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः। यत्रगृत्समदो ब्रह्मन् ब्राह्मणैः स महीयते। स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोभवत्।" वीतहव्य का गृत्समद पुत्र हुआ यह भी ब्रह्मर्षि हुआ इत्यादि कथा अनुशासन पर्व में आई है।

दिवोदास—दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रायुर्नृपः।
मैत्रायणस्तथासोमो मैत्रेयास्तु ततस्मृताः।
एते वै संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु ब्रह्मर्षि हुआ। मित्रायु से सोम

मैत्रायण हुए। उस वंश का नाम इस कारण मैत्रेय हुआ। यद्यपि ये क्षत्रिय वंश के थे परन्तु पीछे भार्गव ब्राह्मण हुए।

काश = भार्गस्य भार्गभूरतश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिः।

इत्येते काशयो भूपतयः कथिताः॥ वि० पु० ४।८।६

भार्ग के पुत्र भार्गभू हुए। इससे चारों वर्णों की प्रवृत्ति हुई। ये सब काश के सन्तान भूपति हुए।

वेणुहोत्र सुतश्चापि भर्गोनाम प्रजेश्वरः।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात्॥
एतेह्यङ्गिरसः पुत्राः जाता वंशेऽथभार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः॥

हरिवंश २६

वेणुहोत्र के पुत्र प्रजेश्वर भर्ग हुए। वत्स के पुत्र वत्सभूमि और भार्गव के भृगुभूमि। ये अङ्गिरा के पुत्र भृगुवंशी हुए। इनसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के वंश चले।

सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः।
सुतोऽभवन्महातेजा राजा परम धार्मिकः॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात्।
एतेह्यङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथभार्गवात्॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ॥

हरिवंश ३२

वायु पुराण में इस प्रकार है।

वेणुहोत्र सुतश्चापि गार्गो वै नाम विश्रुतः।

गार्गस्य गार्गभूमिस्तु वत्सोवत्सस्य धीमतः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः ।
रम्भ = रंभस्य रभसः पुत्रो गभोरश्चाक्रियस्ततः ॥
तस्य क्षेत्रे ब्रह्म यज्ञे शृणु वंश मनेनसः ॥

भा० पु० ९ । १७ । ११ ॥

रम्भ का रभस। रभस से गभीर और अक्रिय। अक्रिय की स्त्री में ब्राह्मण कुल उत्पन्न हुआ।

बलि = हेमात्सुतपास्तस्माद्बलिस्तस्य क्षेत्रे दीर्घतमा अंग वंग कलिङ्ग सुह्म पुण्ड्राख्यं वालेयञ्च क्षात्रमजीजनत् । तन्नामसन्तति संज्ञाश्च विषया वभूवुः ॥ विष्णु पु० ४ । १८ । १—२ ॥

हेम से सुतपा। उससे बलि। बलि के क्षेत्र में दीर्घतमा ने अंग, वंग, कलिङ्ग, सुह्म, और पुण्ड्र, ये पाँच क्षत्रिय उत्पन्न किये। इनके नाम से ये पाँचों देश भी हुए।

"एक एक पुरुष के चारों वर्ण के पुत्र"

अब अनेक उदाहरण आपको सुनाए गये। इन पर विचार करना आपका काम है। इस प्रकरण में प्रथम मैंने दिखलाया है कि विद्याध्ययन के ऊपर प्राचीन लोगों ने वर्णव्यवस्था चलाई और इसी के अनुचार ब्राह्मण-वंश से शूद्र और शूद्र-वंश से ब्राह्मण होते रहे और इसी नियम के वश एक एक पुरुष के पुत्र चारों वर्ण के हुए हैं। "गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताऽभूत" वि० पु०। "पुत्रो गृत्समदस्यच शुनको यस्य शौनकः।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच। एतस्य वंशे संभूता विचित्रा कर्म्मभिर्द्विजाः" वा० पु० "पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः। ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः पुत्रास्तथैव च" हरिवंश। विष्णु, वायु और हरिवंश आदिक सब ही कहते हैं कि शौनक के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण हुए। निःसन्देह यह उदाहरण हमें सूचित करता है कि निष्पक्ष वैदिक तत्त्ववित् शौनक ने गुण कर्म देखकर अपने पुत्रों को योग्यानुसार ब्राह्मणादिक चारों पद दिये। यथार्थ में यही वैदिक सिद्धान्त है! केवल शौनक ही ऐसे नहीं हुए किन्तु भार्ग भूमि और गर्ग आदि अनेक ऋषि हुए हैं जिन्होंने ऐसी व्यवस्था चलाई। पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्राह्मणवंश से शूद्रवंश और शूद्र वंश से ब्राह्मण वंश होते थे। यदि ब्राह्मणादिवर्ण कृत्रिम न होते तो इनमें परिवर्तन होने की कब संभावना होती अतः पश्वादिकवत् मनुष्य में भिन्न जातियाँ नहीं, यह भी सिद्ध होता है।

"व्रात्य और शूद्र"

अब पुनः विचार के लिये यहाँ कुछ बाकी रह गया है कि वेद के अनुसार शूद्र एक वर्ण है। समाज का एक अंग है। वेदों में शूद्रों की कहीं निन्दा नहीं प्रत्युत चारों का दर्जा अपने-अपने ठिकाने पर तुल्य है फिर क्या कारण है कि शास्त्र और स्मृति में शूद्रों की निन्दा देखी जाती है? इस उत्तर यह है कि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र किस को कहा है क्या किसी जाति विशेष को अथवा किसी व्यक्ति विशेष को? जब तक इस को अच्छे प्रकार नहीं समझेंगे तब तक इस विवाद से पार नहीं उतर सकते, अतः इसको आप लोग अच्छे प्रकार समझ लेवें। जैसे

वेदों में "दास" शब्दार्थ बहुत नीच था परन्तु धीरे-धीरे इस का अर्थ बहुत उच्च हो गया। क्योंकि "सेवक" के अर्थ में इस का प्रयोग होने लगा। पूर्व प्रकरण में इस का वर्णन किया है। परन्तु 'शूद्र' शब्द में इसके विपरीत क्रिया हुई। जिस को अनध्ययन के कारण ऋषियों ने 'व्रात्य' संज्ञा दी थी। वही व्रात्य धीरे-धीरे शूद्र कहलाने लगा अर्थात् वह व्रात्य शब्द धीरे-धीरे 'शूद्र' शब्द का पर्य्याय बन गया इस के प्रयोग में किञ्चित् भी भेद नहीं रहा। इस प्रकार का बहुत हेर फेर शब्द शास्त्र में हो जाता है। जैसे वेदों में असुर शब्द ईश्वर, शूरवीर, सूर्य्य, मेघ, देव आदि अर्थों में विद्यमान था परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर यावत् संस्कृत ग्रन्थों में अब इस का केवल दुष्ट ही अर्थ रह गया इसी प्रकार यम, यमी, अश्वी, उर्वशी आदि शब्दों के अर्थ में बहुत परिवर्तन हो गया। इसी प्रकार वेदों में उत्तम अर्थ रखने वाला भी शूद्र शब्द ब्राह्मण, धर्म्म शास्त्रादिकों में निकृष्टवाचक हो गया अर्थात् वेदों के विचार से यह विस्पष्ट है कि वेदों में जिस को दस्यु और दास कहते हैं उसी को ब्राह्मण, मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में 'शूद्र' कहते हैं। और इसी हेतु शूद्र के नाम साथ-साथ दास शब्द का प्रयोग मन्वादिकों में विहित है। पूर्व में हम कह चुके हैं कि चोर, डाकू, नास्तिक, दुष्कर्म्मी आदि परम नीच पुरुष का नाम दास वा दस्यु है। वेदों में कहीं भी शूद्र को दास वा दस्यु की पदवी नहीं दी गई है। वेदों में शूद्र का दर्जा ब्राह्मणादिक के तुल्य ही था। क्रमशः धीरे-धीरे शूद्र शब्द का अर्थ बहुत नीचे गिर गया। इस भाव को जब तक लोग नहीं समझेंगे तब तक कदापि वेदाशय प्रतीत नहीं हो सकता। हे विद्वानो ! ऐसा परिवर्तन सर्वदा होता रहता है। इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ हमें विचार

करना है कि किस प्रकार व्रात्य शब्द शूद्र वाचक हो गया। अतः प्रथम 'व्रात्य' किस को कहते हैं यह जानना आवश्यक है।

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्। तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत्। मनु १०। श्लोक० २०। अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः। नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेन्मानवैःस ह। मनु० अ० २। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनामुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः। गोभिलीय गृहसूत्र।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी असंस्कृत अर्थात् गर्भाधानादि संस्कार रहित सन्तानों को उत्पन्न करते हैं। वे असंस्कृत, गायत्री परिभ्रष्ट सन्तान 'व्रात्य' नाम से पुकारे जाते हैं। जिन का उपनयन २४ वें वर्ष तक भी नहीं हुआ जो उपनयनपूर्वक वेदाध्ययन नहीं करते हैं वे द्विज सन्तान-कर्म से पतित होके 'व्रात्य' कहलाने लगते हैं वे क्या ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र हों असंस्कृत रहने पर वे 'व्रात्य' ही कहलावेंगे। इन व्रात्य संज्ञक मनुष्यों के साथ आपत्ति काल में भी कोई सम्बन्ध न करे। इनको अब उपनयन कर न तो पढ़ावे और न इनके साथ विवाहादि सम्बन्ध करे। गोभिल आदि सब आचार्य्यों की यही सन्मति है। अब आप विचारें कि इस 'व्रात्य' को ही शास्त्रों में शूद्र कहा है। क्योंकि यहाँ आप देखते हैं कि 'व्रात्य' को पठन पाठन इसके साथ सम्बन्ध और

उपनयन निषिद्ध है एवं शूद्रों के साथ भी यही निषेध है इस कारण शूद्र और व्रात्य दोनों ही एक हैं अर्थात् शूद्र और व्रात्य दो भिन्न जातियाँ नहीं किन्तु दोनों एक हैं। इस में एक यह भी कारण है कि 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यास्त्रयो वर्णाद्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्ततुपञ्चमः" मनु० १०।४। इस मनु वचन के अनुसार वर्ण चार ही हैं। वे पतित व्रात्य किस वर्ण में गिने जा सक्ते हैं। निःसन्देह इन की गिनती शूद्रों में होगी। अतः शूद्र और व्रात्य दोनों एक ही हैं अब आप को मालूम हो गया होगा कि मन्वादिकों ने शूद्र किस को कहा है।

'वृषल आदि शूद्र वाचक शब्द'

अब कतिपय शूद्र वाचक शब्दों पर विचार करने से भी प्रतीत हो जायगा कि पढ़ने लिखने पर भी यदि कोई आचरण नहीं करता प्रत्युत धर्म्म विरोध करता है तो इस अवस्था में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों शूद्र कहलावेंगे यथा—मनुजी कहते हैं कि "वृषो हि भगवान् धर्म्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्। वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्म्मं न लोपयेत्। मनु० ८। १६"। "वृष" यह नाम भगवान् धर्म्म का है। इसको जो निवारण करता है अर्थात् जो न स्वयं धर्म्म करता और न करवाता किन्तु धर्म्म कर्म से क्या होता है इत्यादि वार्ता जो कहा करता है उसे विद्वान् लोग 'वृषल' अर्थात् शूद्र समझते हैं इस कारण धर्म्म लोप नहीं करना चाहिये। पुनः "शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच। पौण्ड्-काश्चौद्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शका। पारदापह्लावाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः। मनु० अ० १०। श्लोक ४३, ४४"। ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय जातियाँ उपनयनादि क्रियाओं के लोप के

कारण और याजन अध्यापन और प्रायश्चित्तादि के निमित्त ब्राह्मणों के दर्शन न होने से धीरे-धीरे शूद्र हो गये। वे ये हैं पौण्ड्रक, चौद्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद अपह्लव, चीन, किरात, दरद और खश। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जो धर्म्म कर्म्म रहित हैं वे शूद्र कहाते हैं। पौण्ड्रक आदि क्षत्रिय वर्ण विदेश में जाने के कारण अध्ययन अध्यापनादि व्रत छूटने से वे शूद्र हो गये। यदि आप कहें कि यहाँ तो वृषल शब्द है न कि शूद्र शब्द। सुनिये वृषल नाम शूद्र का ही है "शूद्राश्चा-वरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" अमरकोश के अनुसार शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज आदि नाम शूद्र के ही हैं। सब कोश यही कहते हैं। यहाँ पर आपने विस्पष्ट रूप से देखा कि धर्म्म के लोप करनेवाले को शूद्र कहते हैं न कि किसी जाति विशेष को। अध्यापन के पश्चात् भी लोग धर्म्म-लोपक बन जाते ऐसे पुरुष अवश्य निन्दनीय और शूद्र पदवाच्य हैं। इसमें अब सन्देह नहीं रहा कि शूद्र किसको कहते हैं। शूद्र किसी जाति विशेष का नाम नहीं किन्तु अध्ययनव्रतरहित तथा धर्म्म-लोपी पुरुष का नाम शूद्र है। व्रात्य भी इसी को कहते हैं इस हेतु व्रात्य और शूद्र एक ही हैं। पूर्व लेख से आपको प्रतीत हो गया है कि व्रात्य नाम अव्रती पुरुष का है। इसी अव्रती को वेदों में दास और दस्यु कहा है। परन्तु मन्वादि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र को दास कह कर पुकारा है अतः सिद्ध हुआ कि वैदिक दास दस्यु धर्म्म शास्त्र के शूद्र हैं। यही महान् अन्याय चल पड़ा जिससे आज सब कोई शास्त्रीय भ्रम में पड़ रहे हैं।

अब आपको यह भी मालूम हो होगया होगा कि शूद्र को वेदाध्ययनादि निषेध क्यों है। विद्वानो! जिस द्विज सन्तान को २४ वर्ष तक भी उपनयन संस्कार नहीं हुआ उसको राजा के

तरफ से यह दण्ड मिला कि अब इसको न कोई पढ़ावे न उपनयन करावे न कोई द्विज इसको अपनी कन्या देवे इत्यादि। यह धर्म्म-नियम मनुष्य कल्याणार्थ ऋषियों ने चलाया कि इस भय से भी लोग पठन पाठन करें करवावें। अब चौबीस वर्ष के अनन्तर यदि किसी को होश आया कि आहा! मेरा जीवन यों ही बीत रहा है। मैंने मनुष्य देह धारण कर धर्म्मसंचय नहीं किया अब चल कर कुछ वेदादि शास्त्र अध्ययन कर जीवन को सफल करें। इत्यादि विचार कर वह किसी गुरु के पास जा पढ़ाने के लिये निवेदन करता है कि हे गुरो! मुझे विद्या सिखलावें। गुरु आचार्य्य उस धर्म्म नियम के वश हो कहते हैं कि तेरी आयु अब २५, २६, ३० हो गई तू अब व्रात्य संज्ञक हो गया है। अब तुझ को कैसे पढ़ावें। अब तुझे विद्या भी नहीं आ सकती इत्यादि। इस प्रकार इसको अब किसी पाठशाला में शरण नहीं मिलती है। आज भी देखते हैं कि जिस विद्यार्थी के आचरण पर गुरु को सन्देह होता है उसे निकाल देते हैं और सर्वत्र घोषणा करवा देते हैं कि इसको कोई भी अपनी पाठशाला में न पढ़ावे। वैसा ही होता है। इसी प्रकार आप समझें कि यहाँ संस्काररहित पतित का नाम शूद्र रक्खा है। इस हेतु सर्वत्र शूद्रों को पठन पाठन निषेध है। अब तृतीय प्रश्न का उत्तर समझ गये होंगे। जब यह सिद्ध हो चुका कि पतित अज्ञानी का नाम शूद्र है तो यज्ञ के योग्य कैसे हो सकता है। इसी हेतु शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस व्रात्य शूद्र को अयज्ञार्ह कहा है। जब इसने कुछ पढ़ा ही नहीं तो यज्ञ कैसे करे करवावे। और अभी कह चुके हैं कि धर्म्मस्थिति के लिये इन पतित जनों को उपनयन निषेध किया गया है पतित का नाम ही शूद्र और संस्कृत का नाम ही द्विज है। अतः द्विज

अग्न्याधानादि कर सकता शूद्र नहीं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि शूद्र कोई भिन्न वर्ण वा जाति नहीं किन्तु असंस्कृत धर्म लोपी मनुष्यमात्र शूद्र है। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब चतुर्थ का उत्तर श्रवण कीजिये।

चतुर्थ प्रश्न का समाधान

तृतीय समाधान के अन्तर्गत ही इसका भी समाधान है। तथापि इस प्रश्न में वेदान्त के कतिपय सूत्र और मनुस्मृति वाक्य उद्धृत किये गये हैं। अतः उसका कुछ विशेष विचार करते हैं। आपने कहा है कि "श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च" शूद्र को वेदों का श्रवण और अध्ययन दोनों निषिद्ध हैं और इसमें स्मृति का भी प्रमाण है। इत्यादि। मैं इसके समाधान में कहता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है। जब मैंने आपको निर्णय करके बतला दिया कि शूद्र नाम पतित पुरुष का है। जिसने २४ वर्ष तक भी एक अक्षर नहीं पढ़ा है उस व्यक्ति का नाम शूद्र है तो ऐसे के लिये निषेध होना उचित ही है इसमें कोई भी विरोध की बात नहीं क्योंकि अब इसकी अवस्था वेदाध्ययन के योग्य नहीं रही। इस अवस्था में भी यदि उसे होश हो तो वह अन्यान्य सरल ग्रन्थ पढ़ तब वेद पढ़ सकता है। आगे इसको दिखलावेंगे। यह नियम धर्म्मस्थिति के लिये चलाया गया था। अब मनुस्मृति के वाक्यों पर ध्यान दीजिये। "न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्म्मेऽस्ति न धर्म्मात्प्रतिषेधनम्" शूद्र में पातक नहीं लगता। वह संस्कार के योग्य नहीं है। धर्म्म में इसको अधिकार नहीं। एवं धर्म्म से प्रतिषेध भी नहीं। इसका संक्षिप्त भाव यह है कि जब यह निश्चय हो चुका है कि पतित पुरुष का नाम शूद्र है

किसी खास वंश वा जाति का नाम शूद्र नहीं। इस अवस्था में जो किसी कारण वंश पतित हो चुका है उसको सन्ध्यादि कर्म्म न करने से जो पातक लगता है वह पातक नहीं लगेगा क्योंकि वह सन्ध्यादि करना जानता ही नहीं। जिस हेतु वह पतित ठहर चुका है अतः इसका पुनः संस्कार भी नहीं हो सकता है। संस्कार न होने से यज्ञादि धर्म्म कार्य्य में इसको अधिकार नहीं मिल सकता। परन्तु भगवत् स्मरणादि रूप जो धर्म्म है उससे इसको निषेध भी नहीं। पुनः "शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसंचयः। शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते"। समर्थ होने पर भी शूद्र धन संचय न करे। क्योंकि धन पाकर ब्रह्मवित् पुरुषों को ही वह बाधा देता है। इसका भी भाव विस्पष्ट है। जो पतित हो गया है जिसने जन्म भर ज्ञानाभ्यास नहीं किया जो निरक्षर है वह यथार्थ में आदमी नहीं किन्तु वह पशु है। ऐसे पशु प्रायः अन्याय से धन एकत्रित करते हैं अथवा अन्यान्य उपायों से भी यदि वे धनसम्पत्ति इकट्ठी कर लें तब भी इनका धन जगत् में हानिकारी के सिवाय लाभकारी कदापि नहीं होता। प्रथम तो अज्ञानी होने के कारण धन को कैसे खर्च करना चाहिये वे नहीं जानते हैं। वे उन धनों को अन्यायवर्धक कार्य्य में खर्च करते हैं बड़े व्यसनी बन जाते हैं अपने साथ अनेकों को व्यसनी बना बड़े उपद्रवी हो जाते हैं जिससे प्रजाओं में बड़ा ही उपद्रव मचने लगता है इत्यादि। दूसरा धन के बल से वे अज्ञानी जन अपने वश में विद्वानों को भी कर लेते हैं उन्हें नीचे दिखलाते हैं अथवा किन्ही पढ़े लिखे पुरुषों को भी विद्या से इस हेतु घृणा होने लगती है कि विना अध्ययन से ही धन हो सकता है तो पुनः अध्ययन में इतने परिश्रम से क्या लाभ इस प्रकार पठन-पाठन

की रीति बिगड़ देश में बड़ा ही अन्याय बढ़ने लगता है। इस भारत देश में इसका उदाहरण प्रत्यक्ष है। जब से अज्ञानी जन धन संग्रह करने लगे तब से दानादिक की यथोचित व्यवस्था न होने से कैसा भयंकर अधर्म फैल गया। बड़े-बड़े अज्ञानी निरक्षर जन अपने बाप की सम्पत्ति पा राजा बन कैसा अन्धकार देश में फैला रहे हैं। भारतभूमि को नरकमयी बना रहे हैं। हे विद्वानो! इस प्रकार ब्रह्मवित् पुरुषों से स्थापित व्यवस्था को वे अज्ञानी धन पाकर तोड़ डालते हैं जिससे ब्राह्मणों (वेदवित् पुरुषों) को बड़ा ही क्लेश पहुँचता है। यही ब्राह्मणों बाधा डालनी है यही मनुस्मृति का आशय है। विचार करो और संसार की ओर दृष्टि उठाकर देखो आज अज्ञानी जन धन पाकर जगत् को कैसा नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। इस हेतु मनुजी ने कहा है कि शूद्र को धन संचय नहीं करना चाहिये। शूद्र नाम अज्ञानी जन का ही है किसी जातिविशेष का नहीं अब आप सम्पूर्ण मनुस्मृति तथा अन्यान्य ग्रन्थों की भी संगति इसी प्रकार लगा सकते हैं। विस्तारभय से अधिक नहीं लिखते।

"पञ्चम प्रश्न का समाधान"

पञ्चम का भी समाधान पूर्ववत् ही है। पतित को शूद्र कहते हैं। जिससे लोगों को प्रतीत हो कि यह पुरुष वर्ण बहिष्कृत है अतः इसके अभिवादन प्रत्यभिवादनादिक व्यवहार भी भिन्न-भिन्न हैं। अब जो आपने कहा है कि "शूद्र दो प्रकार के होते हैं" यह भी कुछ सिद्धान्त विरुद्ध नहीं क्योंकि जो द्विज सन्तान असंस्कृत अज्ञानी हुए वे ही शूद्र हैं। उनमें से कोई-कोई अपनी जीविका के लिये अतिघृणित कार्य करने लगे जैसे श्मशान में निवास करके मृतकों का वस्त्रादिक लेना। मृत पशुओं के चर्म्म

निकाल उसे विक्रय करना अथवा मृत पशुओं का भी माँस खाके अपना निर्वाह करना अथवा जंगल में शृगालादिकों के भी माँसों से दिन काटना इत्यादि । ऐसे जो व्रात्य हुए वे किसी प्रकार समाज में नहीं मिलाए गये अर्थात् उनके हाथ के जला-दिक ग्रहण से भी लोग घृणा करने लगे और जिन व्रात्यों ने सेवकादि कर्म्म उठा लिये अथवा खेती आदि व्यवसाय कर निर्वाह करने लगे वे समाज से सर्वथा पृथक् नहीं किये गए इन के हाथ के अन्न पानी लोग ग्रहण करते रहे । ये ही दो प्रकार के शूद्र या व्रात्य हैं । यहाँ सर्वत्र स्मरण रखना चाहिये कि इन स्थानों में जाति शूद्र कोई नहीं । आज इसीलिये कोलाहल हो रहा है कि वश के वंश को लोग शूद्रादि वर्ण मान रहे हैं । यही अन्याय है । इति ।

"षष्ठ प्रश्न का समाधान"

इस प्रश्न का समाधान ८७वें पृष्ठ में 'अध्यारोपित जाति' शब्द पर देखिये ।

व्रात्य संस्कार

यद्यपि व्रात्य पुरुष के लिये कोई पुनः संस्कार नहीं है तथापि दयालु ऋषियों ने इन परम पतित पुरुषों पर अनुग्रह करके कहा कि अधिक वयःक्रम होने के कारण वेद के योग्य तो ये नहीं रहे परन्तु यदि वे धर्म के पिपासु होवें तो इन्हें त्यागना भी उचित नहीं । इन्हें प्रथम वेदवर्जित व्याकरणादि शास्त्र पढ़ावे । परन्तु इन्हें उन लघु वयस्क ब्रह्मचारियों के साथ न रक्खे । इस प्रकार यदि ये दिन-दिन अपने आचरण शुद्ध करते जायँ और विद्याध्ययन में अधिक-अधिक रुचि बढ़ाते जायँ तो इन्हें वेद

भी पढ़ावे। इस प्रकार व्रात्य हुए पुरुष की भी सद्गति हो सकती है। मनुष्यों को अपने सुधार के लिए बारम्बार जीवन भर मौका देना चाहिए। अतएव कहा गया है कि "शूद्रमपि कुलगुण सम्पन्नं मन्त्र वर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके" कुल गुण सम्पन्न शूद्र को भी पढ़ावे।

"व्रात्य सन्तान का उपनयन संस्कार"

जो द्विज सन्तान शूद्र हो गये हैं। वे यदि अपने-अपने सन्तानों को उपनयन करवाना चाहें तो उनका संस्कार हो सकता है अर्थात् शूद्र के समान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हो सकते हैं। वह शूद्र बालक उतना ही निष्पाप और अधिकारी है जितना किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का बालक। बालक का कोई अपराध नहीं। इस कारण यदि कोई शूद्र अपने बालक को ५ पञ्चम वर्ष से लेकर षोड़श तक आचार्य्य कुल में उपनयन पूर्वक वेदाध्ययन के लिए भेजता है और वह उपनीत बालक पूर्णतया ३६ या ४८ वर्ष तक वेदाध्ययन सांगोपांग करता है तो निःसन्देव वह ब्राह्मण-पद को पा सकता है। इसी प्रकार व्यवस्थित नियम के अनुसार विद्या के न्यूनाधिक्य से क्षत्रिय वैश्य भी हो सकता है यदि आप इसमें उदाहरण पूछें तो ऐतरेय, कवष और सत्यकाम जाबाल प्रभृति का उदाहरण जागृत है और जब शौनकादि ऋषियों के पुत्र चारों वर्ण हो सकते हैं तो शूद्र के पुत्र चारों क्यों नहीं हो सकते। एवमस्तु। ऐतरेय और कवष ऐलूष की जीवनी इस प्रकरण के आदि में ही सुना चुके हैं। सत्यकाम जाबाल की जीवनी के विषय में इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् कहती है।

"सत्यकाम जाबाल और उपनयन"

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति ! विवत्स्यामि किं गोत्रोहमस्मीति । सा हैनमुवाच नाहमेतद् वेद तात ! यद् गोत्रस्त्वमसि । बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे । साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि । जबाला तु नामाहमस्मि । सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालोब्रुवीथा इति ॥२॥ स ह हारिद्रुमतगौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्यामि उपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥ तं होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासि । स होवाच नाहमेतद्वेद यद्गोत्रोहमस्मि अपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे सोहमेतन्नवेद यद्गोत्रोस्त्वमसि जबालातु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति । सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्य आहर । उप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति ॥ छा० उ० ४ । ४ ॥

सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता जबाला से पूछा कि हे माता ! मैं ब्रह्मचर्य्य के लिए बाहर जाऊँगा मेरा गोत्र क्या है सो बताओ । वह अपने पुत्र से बोली कि हे तात ! मैं यह नहीं जानती हूँ कि तुम किस गोत्र के हो । मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी (सेवकिनी) रही । यौवनावस्था में तुमको

मैंने प्राप्त किया। सो मैं यह नहीं जानती हूँ कि तुम किस गोत्र के हो। परन्तु मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्य-काम है। सो तुम (अपने आचार्य से) अपना नाम सत्यकाम जाबाल ही कहना। तब वह हारिद्रुमत गौतम के निकट जा बोला कि आपके निकट मैं ब्रह्मचर्य्य करूँगा इसी अभिप्राय से आपको प्राप्त हुआ हूं। गौतम ने उससे पूछा कि हे सोम्य! तुम्हारा गोत्र क्या है? उसने कहा कि मैं यह नहीं जानता हूँ कि मेरा गोत्र कौनसा है। मैंने माताजी से जिज्ञासा की थी उसने मुझसे कहा कि "मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी रही। यौवन में तुमको मैंने प्राप्त किया। सो मैं यह नहीं जानती हूँ कि तुम्हारा गोत्र कौन है। मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है। इति। हे गुरो! सो मैं सत्यकाम जाबाल हूँ। यह सुन गौतम बोले कि अब्राह्मण पुरुष ऐसा प्रकाश नहीं कर सकता। हे सोम्य! समिधा लाओ तुम्हारा उपनयन मैं करूँगा। तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो। इस प्रकार कहकर गौतम ने उसका उपनयन किया है। इत्यादि वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में देखिए।

इससे विस्पष्ट वर्णन है कि जबाला एक प्रकार की वाराङ्गना थी। क्योंकि "परिचारिणी" और "बहु+अहं चरन्ती" ये दोनों पद इसके साक्षी हैं। यहाँ केवल पति की सेवा से तात्पर्य्य नहीं हो सकता। यदि इसका कोई विवाहित पति रहता तो उस पति के नाम ग्राम पता आदि कुछ बतलाती। पति के मरने के बारे में भी कुछ नहीं कहती। केवल अपना ही नाम कहकर रह जाती है इससे विशद है कि यह वाराङ्गना थी। गौतम ऋषि ने बालक के सत्यभाषण से अति प्रसन्न हो उपनयन कर दिया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं किन्तु

सत्यभाषणादिरूप गुणधारण करने से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है जैसा कि ऋषि ने कहा है कि "तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो।" जिस हेतु वह बालक वेश्यापुत्र होने पर भी सत्यता से विरहित नहीं होने के कारण वह निश्चय ब्राह्मण था। अतः सत्ययुक्त पुरुष किसी घर में किसी कुल में किसी देश में क्यों न हों वे यथार्थ में ब्राह्मण ही हैं। इस उदाहरण से सिद्ध है कि असत् शूद्र के सन्तान का भी उपनयनादि संस्कार हो सकता है।

"खानदानी वर्णव्यवस्था"

बहुत समय के अनन्तर इस देश में वर्णव्यवस्था की रीति बदल गई। विद्याध्ययन के ऊपर वर्णव्यवस्था नहीं रही! अनपढ़ निरक्षर आदमी भी श्रोत्रिय, पाठक, उपाध्याय, द्विवेदी, चतुर्वेदी आदि बड़ी-बड़ी पदवी से अपने को भूषित करने लगा इस महान् अन्धार के समय में केवल नामधारी राजा और ब्राह्मण लोग मिल कर अपने को छोड़ सब को "शूद्र" ही कहने लगे। जिनके वंश में भी परम्परा से नाममात्र का भी उपनयन हो रहा था उसको बलात्कार से बन्द करवा दिया। यद्यपि इस महान्धकार के समय ब्राह्मण क्षत्रिय में भी नाममात्र का ही उपनयन संस्कार रह गया था अब भी वैसा ही चल रहा है तथापि अपनी ओर न देखके स्वर्णकार, लोहकार, कुम्भकार, तक्षा, गोप, माली, कायस्थ, नापित आदिक अनेक वर्णों में जो परम्परा से उपनयन संस्कार होता आता था उसे बन्द करवा सबों को शूद्र पदवी दे दी। और वंशानुगत वर्णव्यवस्था बाँध दी गई। तब से यदि एक शूद्र कितना ही विद्वान् क्यों न हो वह कदापि ब्राह्मणादि पदके योग्य नहीं होगा और एक ब्राह्मण कितना ही निरक्षर क्यों न हो वह ब्राह्मण का ब्राह्मण ही बना

रहेगा। इस प्रकार देश में वंशानुगत वर्णव्यवस्था चलने लगी। इस समय में भी बचे हुए विवेकी पुरुषों ने इस वंशानुगत वर्ण व्यवस्था का बड़ा विरोध किया और बड़ी-बड़ी कोशिश की कि वर्ण का परिवर्तन होना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण हो सकता है इसके दो एक उदाहरण यहाँ देते हैं और पूर्व में अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

"जातिपरिवर्तन"

आपस्तम्ब कहते हैं कि "धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ"। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस जिस के योग्य होवे। वैसे अधर्म्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीच-नीच वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे। यह आपस्तम्ब का वचन सूचित करता है कि गुण कर्म्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। पुनः मनु जी कहते हैं "शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जात-मेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच" ॥ मनु० ६४ ॥ शूद्र ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्र वर्ण को प्राप्त होत है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से जो सन्तान उत्पन्न हुआ है वह भी गुणकर्म्मानुसार अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक के प्रथम मनु जी कहते हैं कि "शूद्रायां ब्राह्मणा-ज्जातो श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्या-सप्तमाद् युगात्"। शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से जो सन्तान हो वह यदि श्रेय अर्थात् धर्माचरण से युक्त हो तो वह नीच होने पर भी

सप्तम वर्ष के आरम्भ से वह उच्च जाति को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक का अर्थ लोग भिन्न प्रकार से करते हैं परन्तु इस का भाव यह है कि ब्राह्मण से ब्राह्मणी स्त्री में उत्पन्न बालक उस बालक की अपेक्षा से श्रेष्ठ है जो ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ है। अर्थात् ब्राह्मणी कुमार से शूद्रा कुमार नीच है परन्तु कब तक! निःसन्देह जब तक इस का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है। अर्थात् यदि उस शूद्राकुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन हो गया तब उस दिन से वह श्रेय से युक्त हो आगे बढ़ने लगेगा। और यदि ब्राह्मणी कुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन नहीं हुआ तो वह कुमार उस दिन से नीचे गिरने लगेगा। यदि दैववश १६ वें वर्ष में भी उस ब्रह्मणी-कुमार का उपनयन नहीं हुआ तो वह अब ब्राह्मण वर्ण के योग्य कदापि नहीं रहेगा। इस प्रकार धर्माचरण से एक का आगे बढ़ना और अधर्माचरण से दूसरे का घटना लगा रहेगा। इस हिसाब से ब्राह्मण का सन्तान शूद्र और शूद्र का सन्तान ब्राह्मण होता जायगा। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य में भी जानना। यही भाव दोनों श्लोकों का है। युग नाम यहाँ वर्ष का है क्योंकि उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो के योग से वर्ष होता है। प्रथम मास शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के योग से होता है। ऋतु भी दो मासों के योग से होते हैं इस प्रकार अनेक दो दो मिल कर वर्ष होता है अतः यहाँ युग नाम वर्ष का है। और इसी धर्मशास्त्र में कहा है कि "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः" ब्राह्मण का गर्भ से अष्टम वर्ष राजा का एकादश में वैश्य का द्वादश में उपनयन संस्कार होना चाहिये। इस नियमानुसार जन्म से सातवें वर्ष के आरम्भ से कुमार उपनयन योग्य होता है। अतएव

सप्तम युग पद यहाँ आया है और इसी कारण मैंने यहाँ 'युग' पद का वर्ष अर्थ किया है। कुल्लूकभट्ट 'सप्तम युग' पद से सप्तम पीढ़ी लेते हैं। मैं नहीं कह सकता कि इन्होंने किस प्रमाण से युग शब्दार्थ पीढ़ी किया है। एवमस्तु। यहाँ सप्तम युग उपलक्षण है क्षत्रिय पक्ष में एकादश और वैश्य पक्ष में द्वादश वर्ष का भी ग्रहण है। इस प्रकार मनुस्मृति के अनुसार भी जातिपरिवर्तन सिद्ध है। कुल्लूकभट्टादिकों का अर्थ इस लिए भी ठीक नहीं कि इसी अध्याय में मनु जी कहते हैं कि "तपो बीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ १०। ४२॥ तप और बीज के प्रभाव से मनुष्य युग-युग इसी जन्म में उत्कर्ष और अपकर्ष को प्राप्त होता आया है। यहाँ 'इहजन्मतः' पद विस्पष्ट है कि एक ही जन्म में मनुष्य अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है जैसे विश्वामित्र और ऋष्यशृंगादिक हुए हैं और इसके अतिरिक्त पूर्व में अनेक उदाहरण दिखलाये गये हैं फिर कुल्लूकादिक कैसे कह सकते हैं कि सात जन्मों के अनन्तर जाति का परिवर्त्तन होगा। पुनः "यस्माद्बीज प्रभावेण तिर्य्यग्जा ऋषयोऽभवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते" १०। ७२॥ बीज के प्रभाव से अनेक निकृष्ट योनिज भी पुरुष विद्याध्ययनादि व्रत धारण कर बड़े पूज्य और प्रशस्त ऋषि हुए। इस से सिद्ध है कि शूद्राकुमार यदि ब्राह्मणादिक से उत्पन्न हुआ है तो एक ही पीढ़ी में वह ब्राह्मण हो सकता है। यहाँ इतनी बात स्मरण रखनी चाहिए कि यहाँ दो प्रकार की विधि कही गई एक यह कि जो शूद्र हो गया है उस का सन्तान यदि चाहे तो चारों वर्णों के योग्य हो सकता है। दूसरा शूद्रा स्त्री में ब्राह्मणादिक से उत्पन्न होने के कारण वर्णसङ्कर होने पर भी सद्गुण प्राप्त करने पर

वह कुमार ब्राह्मणादिक हो सकता है यह मनुस्मृति का भाव है। इस से यह जानना चाहिए कि खानदानी वर्णव्यवस्था जिस समय चली थी उस समय में भी अपवाद विद्यमान था।

'वाल्मीकिरामायण और शूद्र'

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्, स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्। वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात्, जनश्चशूद्रोपि महत्त्वमीयात् ॥

वाल्मीकीय रामायण के प्रथमाध्याय का यह अंतिम श्लोक है। मुनि वाल्मीकि जी कहते हैं कि इस रामायण के पढ़ने से ब्राह्मण बड़ा सुवक्ता ऋषि होगा। क्षत्रिय भूपति होगा। वैश्य अच्छा लाभ प्राप्त करेगा और शूद्र महान् होगा। यहाँ रामायण के पढ़ने में चारों वर्णों का सामान ही अधिकार देखते हैं। कहा जाता है कि यह रामायण गायत्री का वर्णन है क्योंकि प्रथमाध्याय के "तपःस्वाध्याय निरतम्" इस प्रथम श्लोक में तकार और "जनश्च शूद्रोपिमहत्त्वमीयात्" इस अन्तिम श्लोक में "ईयात्" पद के आने से और २४ चौबीस अक्षरों की गायत्री और २४००० चौबीस ही सहस्र श्लोकबद्ध रामायण के होने से अनुमान होता है कि यह रामायण गायत्री-वर्णन-परक है। परन्तु गायत्री वेदों का तत्त्व है, अतः वेदों से लेकर सर्व ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन में शूद्रों का अधिकार सिद्ध है। पुनः रामायण में बड़े-बड़े अश्वमेधादि यज्ञ कर्म्मकाण्ड और तत्त्वज्ञान की चर्चा है॥ फिर क्या जिस शूद्र को रामायण पढ़ने का अधिकार दिया गया है वह तत्त्वज्ञानी, तपस्वी, विद्वान्, विवेकी नहीं होगा। यदि कहो कि इसी रामायण के उत्तरकाण्ड में लिखा है कि "शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः। देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः।

न मिथ्याहं वेद राम देवलोकजिगीषया। शूद्रंमा विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नामतः। भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिर प्रभम्। निष्कृष्य कोषाद्विमलं शिरश्चिच्छेदराघवः"। एक ब्राह्मण के बालक के मरने पर श्री रामचन्द्र को मालूम हुआ कि कोई शूद्र तपस्या कर रहा है जिस पाप के कारण यह अन्याय हुआ है। तब राम ने तपस्या करते हुए उस शम्बूक नाम के शूद्र का शिर काट लिया है। इससे सिद्ध है कि शूद्र को तपस्या करना सर्वथा निषेध है। उत्तर सुनिये। यह रामचन्द्र के ऊपर किसी अज्ञानी स्वार्थी धूर्त ने कलङ्क मढ़ा है। प्रथम तो उत्तरकाण्ड रामायण बाल्मीकि जी का बनाया हुआ नहीं है और जब फलश्रुति में बाल्मीकि जी स्वय कहते हैं कि शूद्रों को भी रामायण पढ़ना चाहिए तब तपस्या निषेध कैसे कर सकते हैं। क्योंकि पढ़ने से तात्पर्य्य यह होता है कि ग्रन्थ के भाव को अच्छे प्रकार समझे और उसके अनुसार कर्म्म करे। इस अवस्था में जो शूद्र पढ़ेगा क्या वह इस के अनुसार आचरण नहीं करेगा। यदि कहो कि आचरण करेगा तो मैं कहता हूँ कि प्रथम अध्ययन से बढ़कर कौन सी तपस्या है और दूसरा इस की शिक्षा पर चलने वाले के लिये कौनसी तपस्या बाकी रह जायगी। इस कारण यह शम्बूक की आख्यायिका सर्वथा रामायणविरुद्ध है। किसी अज्ञानी ने बाल्मीकि के नाम पर लिख इसमें मिलाया है। इस में अन्यान्य हेतु भी सुनिये आप लोग यह जानते होंगे कि दशरथ के बाण से अकस्मात् जो बालक मर गया वह वर्णसंकर शूद्र था परन्तु वह वेदशास्त्र सब कुछ जानता था। यह आख्यायिका अयोध्याकाण्ड के ६४ वें अध्याय में आई है। यथाः—

न द्विजातिरहं राजन् माभूत्ते मनसो व्यथा ॥५०॥

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥५१॥अ०६३॥
कस्य वाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥३२॥
को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनं पुत्रशोकभयार्दितम् ॥३३॥अ०६४॥

स्वयं वह बालक कहता है कि हे राजन्! आप को मानसी व्यथा न हो। मैं द्विज नहीं हूँ। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हूँ इत्यादि इससे सिद्ध है कि वह बालक वर्णसंकर था। इसके पश्चात् इस मृत बालक को दशरथजी ने इसके माता पिता के निकट ला सब वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् इसका पिता विलाप करता है कि अब मैं अपर रात्रि में पढ़ते हुए किसके मधुर और हृदयंगम वचन को सुनूँगा। कौन अब स्नान, सन्ध्योपासन और हवन कर मुझे प्रसन्न करेगा, इत्यादि। इससे यह सिद्ध होता है कि वह बालक वेदादि शास्त्र जानता और पढ़ता था, इसकी माता शूद्रा होने पर भी तपस्विना थी। इत्यादि कारणों से शम्बूक की कथा वाल्मीकि विरुद्ध है यह मानना पड़ेगा।
शबरी स्त्री की तपस्या—शबरजाति बहुत निकृष्ट और अति शूद्र वा असच्छूद्र मानी जाती है इसके हाथ का पानी नहीं चलता है एक तो शबर ही नीच दूसरा शबर स्त्री और भी नीचतमा हुई क्योंकि आज कल चारों वर्णों की स्त्री शूद्रावत् मानी जाती हैं। परन्तु रामायण में देखते हैं कि यह शबरी तपस्या करते-करते सिद्धा हुई "तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृतांजलिः। पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः। पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्म्मसंस्थिताम्। कच्चित्ते निर्जिता विघ्ना कच्चित्ते वर्धते तपः। इत्यादि।

रामेणतापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता। शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता। अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया। इत्यादि" अब सिद्धा शबरी राम और लक्ष्मण को देख उठ कृतांजलि हो चरण पकड़ प्रणाम कर पैर धोने और आचमन के लिये विधिपूर्वक जल दे खड़ी हो गई। तब रामजी उस तपस्विनी धर्म्म संस्थिता शबरी से बोले कि क्या आपको कोई तपोविघ्न तो नहीं। क्या आप की तपस्या दिन-दिन बढ़ती जाती है। इत्यादि। रामचन्द्र के इस वचन को सुन वह सिद्धा और सिद्धपुरुषों से पूजिता वृद्धा शबरी बोली कि आप के दर्शन से आज मुझे तपःसिद्धि प्राप्त हुई। इत्यादि। आप लोग देखते हैं कि एक निकृष्टजाति की स्त्री भी तपस्या कर परम सिद्धा हुई और किसी ब्राह्मण वा अन्य वर्ण का बालक नहीं मरा और इसकी तपस्या से न किसी विघ्न की ही चर्चा पाई जाती फिर, उत्तरकाण्ड की बात कैसे मानी जाय। इस कारण विद्वानों की दृष्टि में शम्बूल को कथा सर्वथा गप्प है।

पुराण और शूद्र

जिस समय वैदिकधर्म्म नष्ट हो गया था शूद्र की एक जाति बन गई थी। वंश-परम्परानुगत वर्णव्यवस्था चल पड़ी थी। उस समय में भी भागवत आदि पुराण शूद्र को आजकल के समान नीच नहीं मानते थे। इस विषय में श्रीमद्भागवत का सिद्धान्त है कि महाभारत और अष्टादश पुराण और उपपुराण आदि ग्रन्थ विशेष कर शूद्रों के लिये ही रचे गये। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि जो ग्रन्थ शूद्रों के लिये बनाए गए थे आज ब्राह्मणत्वाभिमानी जन इनको सर्वोच्चतम पुस्तक मानते हैं। भागवत कहता है कि "स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति

गोचरा। कर्म्मश्रेयसि मूढ़ानां श्रेय एवं भवेदिह। इति भारत माख्यानं कृपया मुनिना कृतम्'। भागवत १।४।२५॥ स्त्रियों, शूद्रों और द्विजबन्धुओं अर्थात् द्विजाधम व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को वेदों में अधिकार नहीं है। परन्तु इनका भी कल्याण होना चाहिये। इस कारण कृपा कर व्यास मुनि ने महाभारत आख्यान रचा। यहाँ भारत पद उपलक्षण है इससे सब पुराणों का ग्रहण है क्योंकि महाभारत से ही सब पुराण निकले हैं। जब महाभारत ही शूद्र के लिये रचा गया तो पुराणों की कथा ही क्या रही। सुतरां इससे सिद्ध है कि पुराण असत् शूद्रों के लिये भी है।

'सूतजी पौराणिक'

समस्त पुराण सूतजी से कहे हुए हैं। वर्णसंकर शूद्र को 'सूत' कहते हैं। इस के विषय में मनुजी कहते हैं "क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः" मनु० १०।११॥ ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से जो बालक उत्पन्न होता है वह जाति से 'सूत' कहलाता है अतः साधारण शूद्र से भी सूत जाति का दर्जा निकृष्ट है। पुराणों के अनुसार इसी निकृष्ट सूतजी ने सारे पुराणों को गा २ कर सुनाया है। इस से भी सिद्ध होता है कि पुराण शूद्रों के लिये हैं और उस पतित समय में भी शूद्र बड़े-बड़े संस्कृत के विद्वान् ग्रन्थरचयिता, उपदेशकर्त्ता और ज्ञानी तपस्वी होते थे। और शूद्रों की इतनी निकृष्ट अवस्था नहीं थी इत्यादि अनेक बातें इस सूत और पुराणों के सम्बन्ध से सिद्ध होती हैं पुनः भागवत कहता है कि "विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्यो दधिमेखलाम्। वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात्॥ भा० १२। १२ ६४॥ इस भागवत को पढ़कर

ब्राह्मण सुबुद्धि को, राजा पृथिवी को और वैश्य धन धान्य को पाता है। और शूद्र पातक से छूट शुद्ध हो जाता है। इस से सिद्ध है कि शूद्र को भागवत पढ़ने का अधिकार है। आज कल पौराणिक लोग भागवत को सर्व वेदमय मानते हैं, और इसी भागवत में ओङ्कार युक्त अनेक मन्त्र कहे गये हैं जब इस भागवत को शूद्र पढ़ेगा तो क्या उन ओङ्कार युक्त मन्त्रों को छोड़ देवेगा। इस से भी सिद्ध है कि वेदों से लेकर भागवत पर्य्यन्त सब ग्रन्थों में और सर्व कर्म्मों में शूद्रों को अधिकार है।

अवतार आदि और शूद्र = पौराणिक कहते हैं कि राम, कृष्ण आदि साक्षात् ब्रह्म अथवा विष्णु भगवान् के अंश हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार महाभारत रामायण और भागवतादि पुराणों में जो राम कृष्णादिकों के वाक्य हैं वे भी वेदों के तुल्य हुए। क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य हैं। परन्तु अभी मैंने इहीं ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि महाभारतादि ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार शूद्रों को दिया गया। इस कारण इस से यह भी सिद्ध होता है कि वेदों में भी शूद्रों का अधिकार है। पुनः मैं पूछता हूँ कि राम कृष्ण शूद्रों के साथ भाषण करते थे या नहीं। यदि करते थे तो इनका भाषण इन की वाणी ही वेद है यह आप लोगों का सिद्धान्त है। तब शूद्रों ने साक्षात् ईश्वर से ही वेद वाणी सुनी या नहीं। फिर कौन निषेध कर सकता है कि शूद्र वेद न पढ़ें। श्री रामचन्द्र जी ने बड़े प्रेम से गुह को छाती लगाया था। वह निषाद था अर्थात् अतिनिकृष्ट जाति का था। इस से मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने दिखलाया कि व्यवसाय से कोई नीच नहीं हो सकता है मनुष्यमात्र तुल्य हैं। जब परम माननीय परम पवित्र परम पूजनीय रामचन्द्र ने ही शूद्र को छाती से लगाया तब क्या शूद्रों से घृणा करने वाले कभी

राम वा कृष्ण के उपासक कहला सकते हैं? श्री कृष्ण जी कहते हैं "माँ हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्" हे पार्थ! जो पापयोनि, स्त्रिएं, वैश्य और शूद्र हैं वे भी मेरी उपासना कर परम गति को प्राप्त होते हैं। हे विवेकशील पुरुषो! अब आप विचार कर देखो जब शूद्र परमगति अर्थात् ईश्वर में मिल सकते इस के समीप जा सकते उस से भाषण कर सकते तब क्या ईश्वर से भी पवित्र द्विज हैं जो शूद्रों से घृणा करते हैं। इस हेतु जो द्विज शूद्रों से घृणा करते हैं वे अपने स्वामी रामकृष्णादिकों की इच्छा से विपरीत चलते हैं। पुनरपि आप देखें। गंगा जी को पौराणिक लोग परम पवित्र मानते हैं परन्तु गङ्गा के जल में शूद्र नहाते पीते दर्शन करते हैं। स्नानादि न करने का कहीं निषेध भी नहीं। जब शूद्र पवित्र गङ्गा से मिल सकता है तब ब्राह्मणादिकों से मिलने की बात ही क्या। पुनः "भगवान् के दरबार में सब बराबर हैं" इस अर्थ को सूचित करने के हेतु ही यहाँ के कतिपय ज्ञानियों ने जगन्नाथ जी को स्थापित किया था अभी तक जगन्नाथ पुरी में कोई भेद नहीं माना जाता। इस में सन्देह नहीं कि वह भाव अब वहाँ नहीं रहा। अब वहाँ भ्रष्टाचार हो रहा है। क्योंकि मन्दिरों में नर्तकी कन्याओं का नचाना, अति बीभत्स मूर्तियों का रखना, बासी और जूठा खाना आदि व्यवहार अति लज्जाकर धर्म्म विलोपक हो रहे हैं। एवमस्तु। परन्तु वहाँ सूचित किया जाता है कि ईश्वर के गृह में सब बराबर। पुनरपि देखिये। ईश्वर प्रदत्त सूर्य्य, चन्द्र, पृथिवी आदि पदार्थ सब के लिये बराबर हैं इस हेतु ईश्वर प्रदत्त वेद भी मनुष्य मात्र के लिये है।

कई एक अज्ञानी कहते हैं कि शूद्र वेद नहीं पढ़ सकता।

इसका उत्तर इतना ही काफी है कि पढ़ाकर परीक्षा कर लो। आज जिनको आप शूद्र कहते हैं उन में से सहस्रो पुरुष वेद पढ़े हुए हैं। केवल पढ़े हुए ही नहीं किन्तु वे वेदों का भाष्य कर रहे हैं। बहुतों ने किया भी है॥ भारतवर्षीय विद्वानो! सोचो विचारो। क्यों अन्धकार में लोगों को ढकेल रहे हो। सब मनुष्य बराबर हैं। जो भाई गिरे हुए है उन्हें उठाने के लिये कोशिश करो! सब भाई प्रेम से मिलो। देखो आँख खोलकर। इसी देश में तुम्हारे भाई मसीह कैसे उत्तम काम कर रहे हैं। लाखों जंगली कोल भील गोंड़ हबशी आदिकों उच्च बना रहे हैं इन सबों की दशा पशुओं से भी गिरी हुई थी। उच्च और महापुरुष वह है जो गिरे हुओं को उठावे, उन्हें छाती से लगावे। और उन्हें अपने बराबर बनावे। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' आप विचारें तो आप शूद्र किस को कहते हैं? क्या इन के लक्षण हैं? जिन में शूद्र के लक्षण पाये जाँय उन्हें भले ही शूद्र कहें। परन्तु आप वंश के वंश को शूद्र पुकारते हैं उस वंश का कोई पुरुष यदि पढ़ भी जाय आचरणवान् सुशील भी होय तब भी आप उसे शूद्र ही कहेंगे। यह अन्याय और अधर्म्म की बात है अपनी ओर भी देखना चाहिये। यदि आप को यही पूर्ण विश्वास है कि पैर से शूद्रों की उत्पत्ति होने के कारण ये अपवित्र हैं तो गङ्गा नदी की भी पैर से उत्पत्ति है फिर इसे श्रेष्ठ क्यों मानते। पृथिवी का भी जन्म पैर से पुराण मानता है। फिर इस की पूजा क्यों करते। यदि आप विचार करें तो मालूम होगा कि जैसे पृथिवी के बिना जीव नहीं रह सकता और जैसे यह पृथिवी सहस्रों अन्न फल फूल मूल कन्द प्रभृति उत्पन्न कर सब को पालन पोषण कर रही है। इस कारण पृथिवी को बार-म्बार माता कहा है। वैसे ही शूद्रों के बिना कोई कार्य्य नहीं

चल सकता। ये शूद्र अपने परिश्रम से समाज को अनेक प्रकार से भरण पोषण कर रहे हैं इस हेतु इन्हें पितरवत् पूर्ण सत्कार करना चाहिये। प्रायः आप लोग हँसेंगे कि आप यह क्या कह रहे हैं। शूद्रों को 'पितर' कैसे कहेंगे। इस में सन्देह नहीं है कि आजकल लोग हँसेंगे परन्तु इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य क्या कहते हैं सो सुनिये।

स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च। बृहदारण्यकोपनिषद् ॥१॥ ४। १३।

इसका अर्थ शङ्कराचार्य्य करते हैं:—स परिचारकाभावात् पुनरपि नैव व्यभवत्। स शौद्रं वर्णमसृजत शूद्र एव शौद्रः स्वार्थेऽणि वृद्धिः कः पुनरसौ शूद्रोवर्णो यः सृष्टः पूषणं पुष्यतीति पूषा कः पुनरसौ पूषेति विशेषतस्तन्निर्दिशति। इयं पृथिवी पूषा स्वयमेव निर्वचनमाह। इदं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।

सम्पूर्ण का भाव यह है कि यह शूद्र वर्ण पूषण अर्थात् पोषण करने वाला है और साक्षात् इस पृथिवी के समान है क्योंकि जैसे यह सब का भरण पोषण करती है वैसे शूद्र भी सब का भरण पोषण करता है ऋषि यहाँ विस्पष्ट रूप से शूद्र को पृथिवी ही साक्षात् कहते हैं। अब आप इससे समझ सकते हैं कि शूद्रों को ऋषि ने 'पितर' माना या नहीं। कैसा उच्चभाव ऋषियों का है और आज कैसा नीचभाव लोगों का हो रहा है। यही आर्ष और अनार्ष में भेद है। मैं अन्त में यह पूछता हूँ कि आप लोग चर्म्मकार को अतिनीच अति शूद्र मानते हैं। क्यों ? क्या चाम का व्यवसाय करता है इसलिये ? ब्राह्मण लोग जब बकरे भेड़ भैंसे मारते हैं तब क्या ये चाम के कार्य्य से अलग रहे ?। क्या जब द्विज लोग हरिण, शूकर, शशक आदि

वन्य पशुओं को मारते बनाते और खाते हैं तब कौनसा व्यवसाय बाकी रह गया। क्या बंगदेश के ब्राह्मणादिक सब वर्ण मत्स्य मांस नहीं खाते। क्या मृगचर्म्म या व्याघ्रचर्म्म पर बैठकर पूजा नहीं करते क्या शंख को मुँह में लगा कर नहीं फूँकते? क्या अनेक प्रकार की हड्डियों को डायन योगिनी से बचने के हेतु नहीं पहिनते? इत्यादि कार्य्य करने वाले भी चर्म्मकार को क्यों नीच समझें। सफ़ाई के साथ मृत पशुओं के चर्म्मों से यदि कोई व्यवसाय कर रहा है तो वह कदापि नीच नहीं, वह यथार्थ में वैश्य कहलाने योग्य है। आप यह भी जानें कि यदि चर्म्मकार नहीं होता तो क्या मृत गौ भैंस वगैरह को मृत हरिणादिवत् अपने हाथों से द्विज लोग पृथक् नहीं करते फ़िर मैं नहीं कह सकता कि चर्म्मकार को लोग क्यों नीच मानते हैं। हाँ यदि आप यह कहें कि वे बड़े अशुद्ध रहते हैं। इन के गृह चर्मों से भरे रहते हैं दुर्गन्ध अधिक रहती है वे नियम पूर्वक स्नान ध्यान नहीं करते इन में शिक्षा नहीं है इत्यादि कारणों से इन्हें नीच निकृष्ट मानते हैं तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ परन्तु क्या द्विजों के गृह वैसे नहीं पाते हैं? सैकड़ों मछलियों से दुर्गन्धित नहीं रहते हैं? क्या सहस्रों द्विज आज बिना सन्ध्या स्नान के नहीं देखे जाते? क्या बड़े-बड़े निरक्षर परम अपवित्र द्विज पद धारी नहीं हैं? जब ये सब दशाएँ अपनी ओर भी हैं तो इन गरीब विचारों पर ही क्यों मार है? परन्तु मैं विशेष रूप से यह कहता हूँ कि इन की दशा के सुधार के लिये कोशिश क्यों न की जाय इन में शिक्षा क्यों न फैलाई जाय। ये क्यों न शुद्ध बनाए जाँय। इन की दूकानें रहने के गृह से पृथक् की जाँय। इस प्रकार मनुष्यों को नीचता से उच्चता की ओर ले जाने के लिये बड़ों को सदा प्रयत्न करना चाहिये न कि इन्हें उसी अवस्था में

छोड़ इन से अलग होना चाहिये। हमें शोक के साथ यह प्रकाश करना पड़ता कि कई एक सहस्र वर्षों से यहाँ के प्रधान लोग इन को गिराने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं और बलात्कार से स्वर्णकार, कुम्भकार, लोहकार, तैलकार, चर्म्मकार, तन्तुवाय, अहीर, धानुक आदिक व्यवसायी वर्णों को शूद्र पदवी दे इन्हें प्रत्येक शुभ कर्म्मों से पृथक् कर दिया। इन में से कोई विद्याध्ययन करना भी चाहता था तो यथाशक्ति ये लोग बाधा डालते रहे। इन को हरेक प्रकार से नीच कुत्सित कुचेल पशु बना ही छोड़ा। इस का परिणाम यह हुआ कि आज सम्पूर्ण भारत एकसा बन गया। सब कोई पौराणिकशूद्र और वैदिक-दास एक प्रकार से बन बैठे। अब भी सोचो ! जागो !! उठो !!!

'वेद और शूद्र'

सत्य बात यह है कि साक्षात् वेद जो कहैं वहीं हम सबों को करना उचित है धर्म्मशास्त्रकार अथवा स्मृति बनाने वाले स्वय कहते हैं कि "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहि ताः स्मृताः"। स्मृतिएँ अर्थात् जो धर्म्मशास्त्र वेदविरुद्ध हैं और जो शास्त्र असत् तर्कों से युक्त हैं उन सबों को निष्फल और तामस जानने चाहिये पुनः "एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्म्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः" वेदों का जानने वाला एक भी विद्वान् जिस धर्म को स्थिर करे उसी को परम धर्म्म जानना चाहिये। परन्तु अज्ञानी पुरुष १०००० दस सहस्र भी मिल कर यदि धर्म्म स्थिर करें तो उसे नहीं मानना चाहिये। इत्यादि अनेक वाक्यों से सिद्ध है कि वेद जो कहैं वही हमारा मन्तव्य होना चाहिये। अभीतक इस प्रकरण में मैंने आप लोगों से

शास्त्रों के आशय का वर्णन किया और इस प्रकार से सकल शास्त्रों की संगति लग सकती है यह भी कहा है, परन्तु हम सब मनुष्यों का एक यह सिद्धान्त अथवा मन्तव्य होना चाहिये कि जो वेद कहें उसीको मानें उसी पर चलें क्योंकि मनुष्यकृत ग्रन्थों में भूल होने की बहुत सम्भावना है। इसी कारण मैंने प्रत्येक विषय का निर्णय वेदों से ही विशेष कर किया है। अब संक्षेप से शूद्र सम्बन्धी विषय भी वेदों से साक्षात् सुनें।

ऋग्वेद में शूद्र शब्द—ऋग्वेद में 'शूद्र' शब्द एक ही बार आया है यथाः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१०।९०।१२॥

सम्पूर्ण ऋग्वेद आप ढूँढ़ आवें कहीं भी शूद्र की निन्दा नहीं पावेंगे और न कहीं यह कहा है कि शूद्रों को यज्ञादि कर्म्म नहीं करना चाहिये। बल्कि हर एक विषय में ऋग्वेद चारों वर्णों को बराबर अधिकार देता है।

अथर्ववेद और शूद्र—अथर्ववेद में प्रायः 'शूद्र' शब्द ७ सात स्थानों में आया है। यथाः—

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः॥४।२०।४॥

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्य्यम्॥४।२०।८॥

तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि॥५।२२।७॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ १० । १ । ३ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१६।६।६॥

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥१६।३२।८॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्य्ये ॥ १६ । ६२ । १ ॥

यजुर्वेद और शूद्र—नव दशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येता महोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ॥ १४ । ३० ॥ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳराजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेयि रुचारुचम् ॥ ॥ १८ । ४८ ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । तच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् । यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि ॥ २० । १७ ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशुमन्यते । शूद्रा यदर्य्यजारा न पोषाय धनायति ॥ २३ । ३० ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्य्यायै जारो न पोषं मन्यते ॥ २१ । ३१ ॥ यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २६ । २ ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥ ३० । ५ ॥

अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः । मागधः पुंश्चलूः कितवः क्लीवोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ ३० । २२ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪ शूद्रो अजायत ॥३१।११॥

इन ऋचाओं में से बहुत ऋचाओं का अर्थ पीछे कर आए हैं इन सब ऋचाओं में आप देखते हैं कि सब को समान अधिकार दिया हुआ है। फिर कौन कह सकता है कि शूद्र छोटा वा निकृष्ट है। निःसन्देह चारों वर्ण परस्पर बराबर हैं। इसके अतिरिक्त वेदों में ईश्वर कहीं भी ऐसी आज्ञा नहीं देता है कि जिससे यह सिद्ध हो कि शूद्र को नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य अयज्ञिय और वेदानधिकारी है। प्रत्युत क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र सब के लिये समान प्रार्थना, समान आशीर्वाद आदि आता है जिससे विदित होता है कि ये चार समान हैं और जाति से सब ही बराबर हैं। हां! व्यवसाय इनका भिन्न-भिन्न कहा है "रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु॥ यजुः १८। ४८॥ प्रियं मा दर्भ अथर्व० १९। ३२। ८॥ और प्रियं मा कृणु देवेषु। अथर्व० १९। ६२। १॥ इत्यादि मन्त्र विस्पष्टतया उपदेश देते हैं कि सबको बराबर मानो।

शूद्रों का विशेष सम्मान—इतना ही नहीं बल्कि वेद भगवान् शूद्र को बहुत आदर देते हैं। यजुर्वेद षोडशाऽध्याय (१६) में जिनको आज कल शूद्र महाशूद्र कहते हैं उनके लिए भी नमस्कार कहा गया है यथाः—

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो,
नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो,
नमो निषादेभ्यः पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमो,
नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नः ॥ १६ । २७ ॥

महीधर भाष्यम्—तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यो नमः। रथं कुर्वन्तीति रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यो वो नमः। कुलालाः कुम्भकारास्तेभ्यो नमः। कर्म्मारा लोहकारास्तेभ्यो वो नमोस्तु। निषादा गिरिचरा मांसाशिनो भिल्लास्तेभ्यो वो नमः। पुंजिष्ठाः पक्षिपुञ्जघातकाः पुल्कसादयस्तेभ्यो वो नमः। शुनो नयन्ति ते श्वन्यः श्वकण्ठबद्धरज्जुधारकाः श्वगणिनः नयतेर्ह्रस्व आर्षः तेभ्यो नमः। मृगान् कामयन्ते ते मृगयवः....मृगयवो लुब्धकास्तेभ्यो वो नमः।

(तक्षभ्यः नमः) तक्षा जो शिल्प जातिएं हैं (बढ़ई, खाती, तखान) उनको नमस्कार हो। (रथकारेभ्यः+वः+नमः) रथ के बनाने वाले जो सूत्रधार जातिएं हैं उन आप सबों को नमस्कार हो (कुलालेभ्यः+नमः) कुलाल अर्थात् कुम्भकार=कुम्हारों को नमस्कार हो। (कर्मारेभ्यः+वः नमः) कर्म्मार अर्थात् लोहकारों को नमस्कार। (निषादेभ्यः नमः) निषाद अर्थात् गिरिचर मांसाशी भिल्लों (भील) को नमस्कार। (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुञ्जिष्ठ जो पक्षिसमूह घातक पुल्कस आदि जातिएँ हैं उन्हें नमस्कार। (श्वनिभ्यः) श्वनी अर्थात् कुत्तों को ले चलने वालों को नमस्कार। एवं (मृगयुभ्यः) मृगयु जो लुब्धक व्याध उनको भी नमस्कार।

इसमें सन्देह नहीं कि आज कल निषाद पुंजिष्ठ आदि जातिएँ बहुत निकृष्ट मानी जाती हैं। अमरकोश कहता है कि "निषादश्वपचावन्तेवासिचाण्डालपुक्कसाः"। निषाद, श्वपच, अन्तेवासी पुक्कस आदि चाण्डाल के नाम हैं। परन्तु वेदों में इनको सत्कार देना चाहिए ऐसी आज्ञा है। इससे सिद्ध है कि व्यवसाय के कारण वेद किसी को निन्द्य नहीं मानता। पुनः यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र १९ में स्थपति, मन्त्री, वणिक् आदिकों

को भी नमस्कार कहा है। पुनः इसी अध्याय में नमः सूताय (१८) सारथि को भी आदर कहा है। यदि कहो कि यह सब तो रुद्र का वर्णन है मनुष्य का नहीं, तो इसका उत्तर यह है कि इस अवस्था में शूद्रों का और भी अधिक सम्मान होना चाहिए, क्योंकि जब ये निषाद, पुञ्जिष्ठ, तक्षा, कुम्भकार, लोहकार, सूत, स्थपति आदि जातिएँ श्री रुद्र भगवान् के स्वरूप हैं, तो महादेव के समान ही ये भी पूज्य, प्रणम्य, स्तुत्य आदरार्ह होनी चाहियें, किसी प्रकार से आप लोग मानें, वेद इनको नीच नहीं मानते हैं।

शूद्रों का यज्ञों में अधिकार:—वेदों का यह सिद्धान्त है कि शूद्र कोई आर्य्य जाति से भिन्न नहीं। आर्य्यों की ही संज्ञा कार्य्यवश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है, जैसे चार भाई चार काम काज उठा लेवें तो वे चारों बराबर ही माने जाँयगे। इन चारों का साथ ही खान-पान होगा। और अपने-अपने कार्य्य में सब हो एक दूसरे से अधिक समझे जाँयगे। इसी प्रकार ये चारों वर्ण चार भाइयों के समान हैं। इस अवस्था में आप समझ सकते हैं कि निखिल वैदिक कर्म्मों में सबों का अधिकार बराबर होगा। यदि आप कहें कि शूद्र मूर्ख अनपढ़ होते हैं वे कर्म कैसे करेंगे? उत्तर—सुनो भाई! वेदों में ऐसी आज्ञा कोई नहीं। वेदों में अनपढ़ को शूद्र नहीं कहा गया है। हाँ! स्मृतिशास्त्रों में तो अनपढ़ को शूद्र कहा है। परन्तु वेदों में "तपसे शूद्रम्" यजुः। कठिन-कठिन कार्य्य साधन करनेवाले को शूद्र कहा है। अभी आगे इसका वर्णन करेंगे। मैंने अनेक मन्त्र यहाँ उद्धृत किए हैं। क्या कोई मन्त्र कहता है कि मूर्ख को शूद्र कहना चाहिए। यदि वेद ऐसा नहीं कहता है तो हम कैसे शूद्र को मूर्ख बतलावें। अब आप विचार सकते हैं कि जन्मते ही कोई पुरुष कठिन-कठिन कार्य्य नहीं करता।

जब युवावस्था प्राप्त होती है तब कार्य्य करना आरम्भ करता है। उतनी अवस्था में वह अवश्य कुछ पढ़ले सकता है। कार्य्य करता हुआ भी नित्य स्वाध्याय सन्ध्योपासन अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर सकता है। हाँ! जो जन्म से निपट मूर्ख ही बना रहा, बेशक वह कर्म्म नहीं कर सकता। परन्तु इस अज्ञानी को वेद शूद्र नहीं कहता है। अज्ञानी को अज्ञानी ही कहता है। परन्तु वह अज्ञानी भी यज्ञ स्थलों में बैठकर कर्म देख सकता है, वेद पाठ सुन सकता है। यदि धनिक हो तो पुरोहित के साथ पढ़ता हुआ कर्म्म कर सकता है। देखिए वेद कहते हैं:—

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजरता उत ये यज्ञियासः। पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्॥ ऋ०

यजमान की तरफ से कहा जाता है कि (पञ्च+जनाः) पाँचों प्रकार के मनुष्य (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषन्ताम्) प्रीति पूर्वक सेवें (गोजाताः) पृथिवी पर के जितने मनुष्य हैं वे सब ही यज्ञ करें (उत) और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञार्ह हैं ये भी बराबर यज्ञ किया करें। (नः) हमको (पृथिवी) पृथिवीस्थ मनुष्य (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) पापों से (पातु) पालें और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षचारी (दिव्याम्) अन्तरिक्षस्थ अपराध से (अस्मान्+पातु) हमको पालें। यहाँ "गोजाताः" शब्द का अर्थ "भूम्यामुत्पन्नाः" सायण कहते हैं॥ इस 'गोजात' शब्द से ही सिद्ध है कि पृथिवी पर के निखिल मनुष्य यज्ञ को करें। पुनः "पञ्चजन" शब्द के ऊपर यास्काचार्य्य कहते हैं। "पञ्चजना मम होत्रं जुषन्ताम्। गन्धर्वाः पितरः देवाः असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इति औपमन्यवः" निरुक्त॥ ३। ८॥ गन्धर्व, पितर, देव, असुर

और राक्षस ये पञ्चजन हैं। औपमन्यवाचार्य्य कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पाँचों मिलकर "पञ्चजन" कहाते हैं। इससे भी सिद्ध हुआ कि शूद्र और अति शूद्र जो निषाद इनको भी यज्ञ में अधिकार है पुनः—

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीलुं चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥

इस मन्त्र का पीछे अर्थ कर आए हैं। इसमें विस्पष्ट पद है कि "जना यदग्निमयजन्त पञ्च" पाँचों प्रकार के मनुष्य अग्नि का यजन करते हैं। अर्थात् ब्राह्मण से लेकर निषाद पर्यन्त सब मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार है। इस प्रकार वेदों के देखने विचारने से प्रतीत होता है कि संसार के व्यवहार के लिये जैसे अध्यापक मास्टर, वकील, मुख़तार, जज्ज, कमिश्नर, सेनानायक और सिपाही आदि आजकल होते हैं, वैसे ही वेद की आज्ञानुसार ये चारों वर्ण हैं। इनमें जाति करके न तो कोई भेद और न नीचता उच्चता है। वेदों में शूद्र किसको कहते हैं, इसका क्या लक्षण है सो ध्यान से सुनिये।

तपसे शूद्रम्। यजुः। ३०। ५॥

बहुत परिश्रमी कठिन कार्य करनेवाला साहसी और परमोद्योगी आदि पुरुष का नाम शूद्र है। जैसे दुर्ग हिमालय पर्वतादिक से भी नाना प्रकार की औषधियों को यज्ञ के हेतु ले आना, समुद्र के पार जाकर भी लोगों की रक्षा करनी, सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर, चोर, डाकू, लुच्चे, बदमाश और लम्पटों से ग्राम नगर निवासियों को बचाना, दुर्गम पर्वत पर वा अगम्य टापू आदि में भी छिपे हुए दुष्टों का विनाश करना इत्यादि जो बड़े-बड़े साहस के काज हैं, उन्हें जो करे करवावे

उस पुरुष का नाम वेदों में शूद्र है। इसी हेतु वेद कहते हैं कि "तपसे शूद्रम्" तप अर्थात् कठिन से कठिन कार्य्य का साधन, उसको जो करे वह शूद्र है। यहाँ पर साक्षात् 'तप' शब्द का प्रयोग है अर्थात् तपश्चरण के लिये 'शूद्र' है जो सत् कार्य्य किसी से न हो उसका करना निःसन्देह तपस्या का कार्य्य है। अथवाः—

"पद्भ्यां शूद्रो अजायत"

जैसे सबसे नीचे रह करके भी पैर ही इस सम्पूर्ण शरीर का भार उठा रहा है। पैर के बिना शिर बाहु, पेट आदि किसी अङ्ग की गति एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं हो सकती, पैर को ही प्रथम कंटक चुभने आदि का क्लेश उठाना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्यों में से जो कोई सब मनुष्यों का भार अपने ऊपर ले रहा है, नाना क्लेश सहकर भी सबका हित ही चाह रहा है। उसी का नाम वेदों में शूद्र है और इसी भाव को शब्दार्थ भी बतलाता है यथाः —

"शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः"

जो कोई मनुष्यों के विविध क्लेशों को देख के शोक से द्रवीभूत होवे अर्थात् क्लेशों को देख जिसके मन में यह उपजे कि हाय! इन क्लेशों का नाश कैसे होगा? मनुष्य इन दुःखों से कैसे छूटेंगे। इनकी क्या दवाई है इस प्रकार के विचारों से जिसका हृदय आर्द्र हो जाय और इनकी निवृत्ति के लिये सोच विचार कर शीघ्र प्रवृत्त हो जाय उसका नाम शूद्र है। इसी भाव को ऋषियों ने *भी* स्वीकार किया है।

"जानश्रुति पौत्रायण"

छान्दोग्योपनिषद् में पौत्रायण जानश्रुति की आख्यायिका इस भाव को विस्पष्ट रूप से सूचित करती है। किसी एक राजा का नाम जानश्रुति था। वह बड़ा दानी था। श्रद्धा भक्ति से इसने अपने राज्य भर में धर्म्मशालाएँ स्थापित की थीं। कि सब कोई मेरे यहाँ ही खाया करें। परन्तु यह राजा वैसा ज्ञानी नहीं था। एक रात को इसके मन में अनेक विचार उपस्थित हुए। पश्चात् उसे बड़ी ग्लानि हुई कि मैं ज्ञानी विज्ञानी नहीं हूँ। वह उस समय के महान् ज्ञानी रैक ऋषि को खोज करवा के उनके निकट विद्याध्ययन के लिये गया। वह ऋषि विवाह करना चाहते थे। राजा जानश्रुति ने ऋषि की यह इच्छा देख अपनी दुहिता दे उनसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश लिया। यही कथा का सार है। अब इसमें विचारने की बात यह है कि जब यह राजा बहुत-सा धन-धान्य लेकर ऋषि के निकट पहुँचा है, तब ऋषि ने इसको "शूद्र" कहकर पुकारा है। यथा "तमुह परः प्रत्युवाच हीरेत्वा शूद्र" क्षत्रिय होने पर भी इसको ऋषि ने शूद्र क्यों कहा यह शङ्का होती है। इस शङ्का की निवृत्ति के हेतु वेदान्त सूत्र इस प्रकार निर्णय करता है कि:—

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् ॥ ३५ ॥

क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३६ । १ । ३ ॥

यद्यपि यह क्षत्रिय था परन्तु (अस्य+शुक्) इसको शोक उपस्थित हुआ और उस शोक से (तदा+द्रवणात्) तब द्रवीभूत हुआ, इस हेतु इसको ऋषि ने शूद्र कहा। भाव इसका यह है कि उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये शोक प्राप्त हुआ कि

मुझको किस प्रकार ब्रह्मज्ञान मिलेगा। अपनी दुहिता (कन्या) देकर भी इसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। आप यहाँ देखते हैं कि इसने कैसा तप का कार्य किया। कैसा प्रशंसनीय इसका साहस है? अतः इसको ऋषि ने शूद्र कहा। इससे यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार के कार्य्यानुष्ठान करने वाले को शूद्र कहना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण है।

अब आप यह भी विचारें कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस वेद का आशय यह है कि प्रत्येक मनुष्य का शरीर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से बना हुआ है। इस शरीर में शिर ब्राह्मण, हाथ क्षत्रिय, मध्यभाग अर्थात् गर्दन से नीचे और कटि से ऊपर का भाग वैश्य और पैर शूद्र हैं। इस हेतु हरएक आदमी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों है। इससे सिद्ध हुआ कि कोई पुरुष अकेला ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्र हो ही नहीं सकता। जब होगा तब चारों ही होगा ईश्वर की ऐसी ही सृष्टि है। इसका कौन निवारण कर सकता। प्रत्यक्षतया लोक में देखते भी हैं कि प्रत्येक मनुष्य चारों कार्य्य करता है। ज्ञानी से ज्ञानी पुरुष को उदाहरण के लिये ले लीजिये। कभी वह ईश्वरीय ज्ञान में निमग्न रहेगा। लोगों को पढ़ाता-लिखाता वा उपदेश करता रहेगा इत्यादि इसका कार्य्य ब्राह्मण सम्बन्धी है। जब कभी चोर वा डाकू घर लूटने को आता है अथवा देश पर शत्रु आक्रमण करता है तो यथाशक्ति लड़ता भी है अथवा अपने शरीर की ही रक्षा के लिये उसे बहुत उद्योग करना पड़ता है। कभी देह पर से मक्षिकादि निवारण करना, कभी व्यायाम करना, बाल्यावस्था में दौड़ना खेलना

इत्यादि कार्य्य उसका क्षत्रिय सम्बन्धी है। पुनः वह अपने लिये वा दूसरों के लिये विद्या वा धन संग्रह करता है, दूसरों से लेता देता है इत्यादि कार्य्य वैश्य सम्बन्धी है। बड़े परिश्रम से विद्योपार्जन करना अपूर्व अपूर्व विद्या के आविष्कार के लिये मनोवशीकरणादिरूप तपश्चरण गुरु आचार्य्य अतिथि आदि की शुश्रूषा इत्यादि कार्य्य शूद्र सम्बन्धी है। पुनः हम देखते हैं कि बड़े-बड़े मनस्वी स्वतन्त्रताप्रिय विज्ञानी जन साथ-साथ चारों वर्णों के कार्य्य करते हैं। प्रातः सन्ध्योपासन कर विद्यार्थियों को पढ़ाते वा मनुष्यों को उपदेश देते वा लिखते लिखाते। साथ ही कुछ खेती और व्यापार कर लेते अपने हाथ से लकड़ी वगैरह फार चीर कर संग्रह करते लोगों की रक्षा में सदा तत्पर रहते, इस प्रकार आप यदि विचार से देखेंगे तो मालूम हो जायगा कि प्रत्येक आदमी एक ही काल में चारों वर्णों से युक्त है। अब जो एक-एक व्यक्ति में एक-एक ब्राह्मणत्वादि का व्यवहार होता है सो इसलिये होता है कि एक-एक गुण की उस-उस में प्रधानता और अन्यान्य गुणों की अप्रधानता रहती है। जैसे प्रत्येक में यत् किञ्चित् कामक्रोधादि रहने पर भी जिसमें बहुत शान्ति है उसे शान्त साधु कहते हैं। तद्वत्। अब समझ सकते हैं कि वेदानुसार केवल न कोई ब्राह्मण और न कोई शूद्र है अथवा मान भी लिया जाय कि ये चारों भिन्न-भिन्न हैं तथापि यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि इस शरीर में पैर शूद्र है। इस हेतु जो शूद्र से घृणा करता है उसे प्रथम उचित है कि अपने शरीर से पैर को काटकर अलग कर दे। पैर न छूवे पैर के भार पर न चले। एवं उसे पृथिवी पर भी नहीं रहना चाहिये। क्योंकि पूर्व में याज्ञवल्क्य ऋषि के वाक्य से सिद्ध कर चुके हैं कि शूद्र और पृथिवी बराबर हैं। एवंच पौराणिकों को गङ्गा में स्नानादिक

भी नहीं करना चाहिये क्योंकि गङ्गा की उत्पत्ति भी पैर से है। परन्तु वैसा करता हुआ कोई भी पुरुष देखा नहीं जाता। अतः शूद्रों से भी घृणा रखनी सर्वथा अज्ञानता है। प्रत्युत पृथिवी और गङ्गा के समान शूद्रों को पूर्ण सत्कार करते हुए और इनको उच्च बनाते हुए इनसे बड़े-बड़े कार्य्य करवाने चाहिये।

"प्रत्येक मनुष्य को चारों वर्ण होना चाहिये"

जब वेद शास्त्रों से सिद्ध है कि हरएक आदमी का शरीर चारों वर्णों के योग से बना हुआ है तब इस अवस्था में सबको यह भी उचित है कि चारों वर्णों के गुणों को अपने में पूर्णतया धारण करने के हेतु पूर्ण प्रयत्न किया करे। यथार्थ में तब ही मनुष्य मनुष्य हो सकता है। केवल एक-एक गुण के धारण से मनुष्य तीन अंशों से रहित रहता है। सचमुच उसमें एक ही अंश रह जाता है। यदि प्राचीन उदाहरणों को इस विषय में विचारेंगे तो बड़े-बड़े महात्मा ऋषियों में चारों गुण प्रायः पावेंगे। वेद के ऋषि वसिष्ठ, विश्वामित्र, अंगिरा, गोतम, वामदेव, कण्व, जमदग्नि आदि महापुरुषों को हम न तो केवल ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र ही कह सकते। एक ओर तो ये सब वेद के गूढ़-गूढ़ तत्त्वों के अन्त तक पहुँचे हुए थे। दूसरी ओर जगत् के मङ्गलार्थ दुष्ट अव्रती दस्युओं को न्यून करने में भी वैसे ही तत्पर थे। एक ओर धन धान्य को तुच्छ समझते हुए भी खाद्य भोज्यादि पदार्थों से मनुष्यों को सुखी रखने हेतु सहस्रों प्रकार के वैभवों से युक्त थे। एक ओर प्रजाओं के स्वामी होते हुए भी अपने हाथों से खेत करते थे, नौका रथादि बनाते थे। बड़े-बड़े पर्वतों पर जा नवीन-नवीन पदार्थों को अन्वेषण

करते थे। बड़े-बड़े जहाज तैय्यार कर अपने हाथों खेव पार जाया करते थे। परोपकार, दुर्बलों की शुश्रूषादि कर्म्म के लिये सदा तत्पर रहते थे। इस हेतु वैदिक ऋषियों का कोई एक वर्ण स्थिर नहीं कर सकते। क्या महर्षि याज्ञवल्क्य के मान्य शिष्य जनक महाराज को हम केवल क्षत्रिय ही कह सकते। नहीं-नहीं इन्हें उच्च से उच्च ब्राह्मण की पदवी दे सकते हैं। इसी प्रकार महाराज पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि, केकयदेशाधिपति महाराज अश्वपति, काशिराज अजातशत्रु आदिक महात्माओं को केवल राजा वा क्षत्रिय ही नहीं कह सकते। आप विचार कर देखेंगे तो मालूम होगा कि महात्मा लोग चारों गुण धारण करने के लिये सदा प्रयत्न किया करते हैं। क्या वह महात्मा वा महापुरुष हो सकता है जो मनुष्य-समाज की शरीर मन वचनादि से शुश्रूषा नहीं करता है। रामचन्द्र कृष्णचन्द्र युधिष्ठिर हरिश्चन्द्र आदि इस कारण महापुरुष गिने जाते हैं कि सब प्रकार से इन्होंने मनुष्य सेवा की। इस हेतु प्रत्येक आदमी को साथ ही चारों वर्ण बनने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। तब ही यथार्थ में मनुष्य पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। अन्त में महाभारत के दो श्लोक कहकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं:—

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्म्मसु।
दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत्॥
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः।

म० व० २१५।१३॥

क्षत्रिय और वेद

न्यायपूर्वक क्षात्रधर्म्म से प्रजाओं में जितना ही अधिक लाभ है अन्याय पूर्वक क्षात्रधर्म्म को कार्य्य में लाने से उतनी ही बड़ी हानि है। एक एक स्वतन्त्र राजकुमार ने क्या-क्या अत्याचार-घोर अकथनीय अवर्णनीय किया है उसके साक्षी इतिहास हैं। जिसके श्रवण मात्र से साधु पुरुष का हृदय कम्पायमान हो जाता है। परन्तु इसके साथ-साथ बल ही जगत् का रक्षक भी होता आया है। इसमें भी सन्देह नहीं। वेदों में 'क्षत्र' शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं। इसीसे 'क्षत्रिय' पद भी बनता है "क्षतं त्रायते इति क्षत्रम्" जो बल अर्थात् शक्ति दुर्बल पुरुष की रक्षा करती है उस बलका नाम वेदों में 'क्षत्र' है (१) उस क्षत्र (बल) से युक्त पुरुष का भी नाम 'क्षत्र' होता है। जैसे 'ब्रह्म' यह नाम वेद और ईश्वर का है। परन्तु उस वेद से और वेदप्रतिपाद्य ईश्वर से जो पुरुष युक्त है उस पुरुष का भी नाम ब्रह्म होता है। तद्वत्। क्षत्र और क्षत्रिय एकार्थक हैं। यह वैदिक पद हमें सूचित करता है कि असमर्थ पुरुषों की रक्षा के लिये क्षत्रिय वर्ण की सृष्टि हुई, न कि असमर्थों के सताने के लिये। अति प्राचीन काल में क्षत्र पद का अर्थ चरितार्थ था। जो अपने बल से और पुरुषार्थ से दूसरों की और अपनी रक्षा किया करते थे वे 'क्षत्र' वा "क्षत्रिय" कहलाते थे। और प्रजाएँ चुनकर जिस क्षत्रिय को अपनी रक्षा के लिये अधिपति बनाती थीं। उस को 'राजा' वा 'सम्राट्' कहा करते थे। "राजते राज्यते वा

---

(१) अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्नि वाजस्य परमस्य रायः ॥ ४। १२। ३॥ इत्यादि ऋचाओं में 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ सायण 'बल' ही करते हैं।

राजा, सम्यग् राजते सम्राट्" जो प्रजाओं के बीच बल वीर्य्य से सूर्य्यवत् देदीप्यमान हो और प्रजाओं के कार्य्यों में रक्त अर्थात् तत्पर हो उसे राजा वा सम्राट् कहते हैं। पूर्व समय में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के समान राजा भी कोई खान्दानी नहीं होता था। अपने गरोह में से ही प्रजाएँ किसी वीर्य्यवान्, तेजस्वी, वीर, विद्वान्, लौकिकज्ञानसम्पन्न पुरुष को राजा चुनकर बना लेती थीं। जबसे यह राजपद भी वंशानुगत होने लगा अर्थात् एक ही वंश का कुमार राज्याधिकारी होने लगा तब से भारत की बहुत अवनति होने लगी। 'एक वंश के ही पुरुष को राजा बनाते जाना" इससे बढ़कर देश में न कोई पाप न अन्याय और न अधर्म्म है। जिस देश में ऐसी प्रणाली है उस देश के निवासियों को मनुष्य पदवी नहीं मिल सकती। वेदों की सम्मति इस पर सुनिये:—

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च-देवीः। वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि ॥ अथर्ववेद ३ । ४२ ॥

हे राजन्! (विशः) सब प्रजाएँ (त्वाम्) आपको (राज्याय) राज्य के लिये (वृणताम्) चुनें। केवल पुरुष ही नहीं किन्तु (इमाः) ये (प्रदिशः) प्रत्येक पूर्व, पश्चिमादि दिशाओं में रहनेवाली (पञ्चदेवीः) धर्म्म व्यवस्था जाननेवाली देविएँ= स्त्रिएँ भी (त्वाम्) आपको चुनें। इसके पश्चात् आप (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन्) शरीरवत् (ककुदि) अत्युच्च और प्रशस्त सिंहासन पर (श्रयस्व) बैठिये। तब बैठ (उग्रः) उग्ररूप धारण कर (नः) हम प्रजाओं को (वसूनि) विविध सुख (विभज) पहुँचाइये ॥

क्षत्रिय और वेद

न्यायपूर्वक क्षात्रधर्म्म से प्रजाओं में जितना ही अधिक लाभ है अन्याय पूर्वक क्षात्रधर्म्म को कार्य्य में लाने से उतनी ही बड़ी हानि है। एक एक स्वतन्त्र राजकुमार ने क्या-क्या अत्याचार-घोर अकथनीय अवर्णनीय किया है उसके साक्षी इतिहास हैं। जिसके श्रवण मात्र से साधु पुरुष का हृदय कम्पायमान हो जाता है। परन्तु इसके साथ-साथ बल ही जगत् का रक्षक भी होता आया है। इसमें भी सन्देह नहीं। वेदों में 'क्षत्र' शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं। इसीसे 'क्षत्रिय' पद भी बनता है "क्षतं त्रायते इति क्षत्रम्" जो बल अर्थात् शक्ति दुर्बल पुरुष की रक्षा करती है उस बलका नाम वेदों में 'क्षत्र' है (१) उस क्षत्र (बल) से युक्त पुरुष का भी नाम 'क्षत्र' होता है। जैसे 'ब्रह्म' यह नाम वेद और ईश्वर का है। परन्तु उस वेद से और वेदप्रतिपाद्य ईश्वर से जो पुरुष युक्त है उस पुरुष का भी नाम ब्रह्म होता है। तद्वत्। क्षत्र और क्षत्रिय एकार्थक हैं। यह वैदिक पद हमें सूचित करता है कि असमर्थ पुरुषों की रक्षा के लिये क्षत्रिय वर्ण की सृष्टि हुई, न कि असमर्थों के सताने के लिये। अति प्राचीन काल में क्षत्र पद का अर्थ चरितार्थ था। जो अपने बल से और पुरुषार्थ से दूसरों की और अपनी रक्षा किया करते थे वे 'क्षत्र' वा "क्षत्रिय" कहलाते थे। और प्रजाएँ चुनकर जिस क्षत्रिय को अपनी रक्षा के लिये अधिपति बनाती थीं। उस को 'राजा' वा 'सम्राट्' कहा करते थे। "राजते राज्यते वा

(१) अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्नि वाजस्य परमस्य रायः ॥ ४। १२। ३॥ इत्यादि ऋचाओं में 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ सायण 'बल' ही करते हैं।

राजा, सम्यग् राजते सम्राट्" जो प्रजाओं के बीच बल वीर्य्य से सूर्य्यवत् देदीप्यमान हो और प्रजाओं के कार्य्यों में रक्त अर्थात् तत्पर हो उसे राजा वा सम्राट् कहते हैं। पूर्व समय में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के समान राजा भी कोई खान्दानी नहीं होता था। अपने गरोह में से ही प्रजाएँ किसो वीर्य्यवान्, तेजस्वी, वीर, विद्वान्, लौकिकज्ञानसम्पन्न पुरुष को राजा चुनकर बना लेती थीं। जबसे यह राजपद भी वंशानुगत होने लगा अर्थात् एक ही वंश का कुमार राज्याधिकारी होने लगा तब से भारत की बहुत अवनति होने लगी। 'एक वंश के ही पुरुष को राजा बनाते जाना" इससे बढ़कर देश में न कोई पाप न अन्याय और न अधर्म्म है। जिस देश में ऐसी प्रणाली है उस देश के निवासियों को मनुष्य पदवी नहीं मिल सकती। वेदों की सम्मति इस पर सुनिये :—

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च-देवीः। वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि॥ अथर्ववेद ३। ४२॥

हे राजन्! (विशः) सब प्रजाएँ (त्वाम्) आपको (राज्याय) राज्य के लिये (वृणताम्) चुनें। केवल पुरुष ही नहीं किन्तु (इमाः) ये (प्रदिशः) प्रत्येक पूर्व, पश्चिमादि दिशाओं में रहनेवाली (पञ्चदेवीः) धर्म्म व्यवस्था जाननेवाली देविएँ=स्त्रिएँ भी (त्वाम्) आपको चुनें। इसके पश्चात् आप (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन्) शरीरवत् (ककुदि) अत्युच्च और प्रशस्त सिंहासन पर (श्रयस्व) बैठिये। तब बैठ (उग्रः) उग्ररूप धारण कर (नः) हम प्रजाओं को (वसूनि) विविध सुख (विभज) पहुँचाइये॥

यह मन्त्र सूचित करता है कि पुरुष और स्त्रिएँ सब मिलकर जिस पुरुष को अपना 'राजा' बनाना चाहें वही राजा बन सकता है। किसी विशेष वंश के पुत्र ही राजा हों अन्य वंश के नहीं ऐसी व्यवस्था वा आज्ञा वेदों की नहीं, पुनः अभिषेक काल में भी यह घोषणा की जाती है किः—

विशस्त्वा सर्वावाञ्छन्तु ॥ अथर्ववेद ४ । ६ । ४ ॥

हे राजन् ! सब प्रजाएँ तुमको चाहें।

पुनः=यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा वियोऽर्य्यो मानस्य स क्षयः ॥८।६३।७॥

(यद्) जब (पाञ्चजन्यया+विशा) राज्यों के समस्त प्रपञ्च और व्यवस्थाओं के जाननेवाली पाँचों प्रकार की प्रजाएँ (इन्द्रे) राजा के निमित्त (घोषाः+असृक्षत) घोषणा करती हैं तब ही राजा बन सकता है। अन्यथा नहीं।

पुनः=सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ अथर्व० १।५।८१॥

जो प्रजाओं में अनुरक्त होता है वही राजा हो सकता है। इन मन्त्रों से सिद्ध है कि समस्त प्रजाओं में से योग्य पुरुष को चुनकर राजा बनाना चाहिये।

'राजा की योग्यता'

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १ । २५ । १० ॥

(साम्राज्याय) साम्राज्य के लिये वह पुरुष योग्य है जिसने (धृतव्रतः) प्रजा के पालन के लिये व्रत धारण किया है और (सुक्रतुः) जिसके समस्त कर्म्म प्रशंसनीय हैं और जो (वरुणः) सब प्रजाओं की ओर से चुना गया हो वह पुरुष (पस्त्यासु+

आनिषसाद) प्रजाओं में राजा हो सिंहासन पर बैठ सकता है। पुनः—

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥ वेद मासोधृतव्रतो द्वादश प्रजायते। वेदा य उपजायते ॥८॥ वेद वातस्य वर्तनिमुरुंऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥९॥

जो पुरुष (अन्तरिक्षेण+पतताम्) आकाश मार्ग से चलने वाले (वीनाम+पदम्+वेद) विमान आदिक यन्त्रों के तत्त्वों को जानता है और (वेद+नावः समुद्रियः) जो सामुद्रिक जहाजों की गति को जानता है। वह राज्याधिकारी है इससे यह उपदेश देते हैं कि समुद्र के द्वारा और आकाश मार्ग के द्वारा आक्रमण करने के जो जो साधन हैं उन्हें जो जाने वह राजा हो सकता है। इसी प्रकार १३ तेरहों महीनों और वायु की गति के जानने वाला राजा हो सकता है। भाव यह है कि पृथिवी पर किस मास में किस देश के जल वायु शीतता उष्णता आदि सब अच्छे रहते हैं इत्यादि विज्ञानवित् पुरुष राजा हो सकता है। इत्यादि अनेक मन्त्र राजा की योग्यता सूचक हैं उन्हें वेदों में देखिये। पुनः—

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः। अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥ १० । ६६ । ८ ॥

(धृतव्रताः) क्षात्रव्रतधारी (क्षत्रियाः) बलधारी (यज्ञनिष्कृतः) याग सम्पादक (बृहद्दिवाः) महातेजस्वी (अध्वराणाम्+अभिश्रियः) यागों के सेवक (अग्निहोतारः) प्रतिदिन

स्वयं अग्नि में हवन करने वाले (ऋतसापः) सत्य सेवक 'षप समवाये' (अद्रुहः) निष्कारणद्रोह रहित ऐसे वीर पुरुष (वृत्रतूर्य्ये) शत्रु संहारक संग्राम में (अपः) युद्ध कर्म्मों को (असृजन्) सृजन करते हैं।

यहाँ "क्षत्रिय" शब्द विशेषण में आया है। सायण भी "क्षत्रं बलं तदर्हा" बलिष्ठ अर्थ करते हैं। इन गुणों से युक्त पुरुष, निश्चय, क्षत्रिय है।

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे। सुमृडीकाँ अभिष्टये ॥ ८। ६७। १ ॥

(आदित्यान्) सूर्य्यवत् देदीप्यमान (सुमृडीकान्) सुख पहुँचाने वाले (तान्+नु+क्षत्रियान्) उन क्षात्रधर्म्म संयुक्त पुरुषों से (अभिष्टये+अवः) कल्याण के लिये रक्षा की (याचिषामहे) याचना हम करते हैं।

अवस्=रक्षण। इससे सिद्ध है कि जो सूर्य्य समान विघ्न रूप अन्धकार को नाश करे और प्रकाश स्वरूप रक्षा को फैलावे वह क्षत्रिय है॥

ऋतावाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८। २५। ८ ॥

(ऋतावाना) जो सत्यवान् (सुक्रतू) अच्छे कर्म्म करने वाले वा सुप्रज्ञ सुबुद्धिमान् राजा और मन्त्री हों (साम्राज्याय+निषेदतुः) वे राज्य के भार उठाने के लिये बैठें (धृतव्रता+क्षत्रिया) व्रतधारी, और बल सम्पन्न वे दोनों (क्षत्रम्+आशतुः) बल को प्राप्त करें। ऋतावाना=ऋतावानौ। धृतव्रता=धृतव्रतौ। क्षत्रिया-क्षत्रियौ। ये तीनों पद द्विवचन हैं॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्म्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ७ । ७५ १ ॥

जीमूत = मेघ। प्रतीक = शरीर, रूप। वर्मी = कवचधारी। समद् = संग्राम। पिपर्तु = पालन करे।

(समदाम् + उपस्थे) संग्रामों की उपस्थिति होने पर (यद् + वर्म्मी + याति) जब कवचधारी क्षत्रिय युद्धार्थ यात्रा करता है तब (जीमूतस्य + इव + प्रतीकम् + भवति) मेघ के समान उसका रूप होता है। हे राजन्! (अनाविद्धया + तन्वा) अनाविद्ध शरीर से (स त्वम् + जय) वह तुम जय प्राप्त करो (वर्म्मणः + महिमा + त्वा + पिपर्तु) वर्म्म की महिमा तेरी रक्षा करे।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२॥

(धन्वना + गाः + जयेम) शत्रुओं की पृथिवी को हम धनुष से जीतें। (धन्वना + आजिम्) धनुष से संग्राम जीतें (धन्वना) धनुष से (तीव्राः + समदः + जयेम) अत्यन्त उद्धत शत्रुसेनाओं को जीतें (धनुः + शत्रोः + अपकामम् + कृणोति) धनुष शत्रु की कामना का नाश करता है। (धन्वना) धनुष से (सर्वाः + प्रदिशः) सब दिशाएँ (जयेम) जीतें*।

यहाँ ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से अधिक वर्णन नहीं करते। आप लोग इस वैदिक सिद्धान्त पर अवश्य ध्यान देवेंगे

---

* धनुष यहाँ उपलक्षण है। तपिष्ठ, हृथ, अस्त, तपुषि, वकुर आदि अनेक आयुध अस्त्र-शस्त्र के बदले में नाम आए हैं।

कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्था कदापि न चलने पावे। इससे बड़ा-बड़ा अनर्थ उत्पन्न होता है ॥ इति ॥

"वेद और वैश्य वर्ण"

विश् (विट्) शब्द के प्रयोग वेदों में बहुत आए हैं। इसी से "वैश्य" बनता है। विश् और वैश्य एकार्थक हैं "वैश्वा भूमिस्पृशो विशः" अमरकोष ॥ विश् यह नाम प्रजामात्र का अर्थात् सब मनुष्य का है। इसी कारण राजा को "विशांपति" अर्थात् प्रजाओं का पति कहा है। "विश एषवोऽमीराजा" यजु० ९। ४० ॥ परन्तु इसके प्रयोग व्यापारी अर्थात् वाणिज्य-कर्ता में विशेष कर होने लगे। वेदों में इस अर्थ में भी बहुत प्रयोग हैं। यहाँ अधिक वर्णन न करके संक्षेप से यह कहना चाहते हैं कि बड़े-बड़े वाणिज्य के कार्य्य "गण" (Company) के साथ होने चाहिये। प्रायः लोग कहेंगे कि यह तो अँगरेजों की बात कहते हैं क्योंकि इन ही में कम्पनियाँ हुआ करती हैं। सुनिए ऋषि कहते हैं "स नैव व्यभवत् स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुतः" इति ॥ १२ ॥ बृ० उ० अ० १ ॥ जब ब्राह्मणों और क्षत्रियों से भी जगत् के व्यवहार नहीं चल सके तब वैश्यों को बनाया। जैसे देवों में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत एक-एक गण प्रसिद्ध हैं और ये गण होने से वैश्य हैं वैसे ही मनुष्यों में वैश्यों का एक-एक गण होना चाहिये। इसका भाव यह है कि जैसे वसु ८, रुद्र ११, आदित्य १२, विश्वेदेव ३३ और मरुत् ४९ हैं। वैसे ही वैश्य लोग भी ८। ८ वा ११। ११ वा १२। १२ वा ३३। ३३ वा ४९। ४९ मनुष्य मिलकर व्यापार वा वाणिज्य किया करें। यहाँ वसु, रुद्र,

आदित्य, विश्वेदेव और मरुत् की उपमा देने से और 'गणशः' के प्रयोग से विस्पष्ट है कि वैश्यों का गण (Company) होना चाहिए। ऋषियों के समय में बड़े-बड़े व्यापार गणों से होते थे इसी कारण 'गण' में जिस-जिसका भाग रहता था वह 'सार्थ' अर्थात् समान प्रयोजन वाला कहलाता था और इन सबों का जो प्रधान होता था उसे "सार्थवाह" कहते थे। यहाँ ८, ११, १२ आदि संख्या का भाव यह नहीं है कि ८ ही वा ११ ही वा ४९ ही मनुष्य मिल के वाणिज्य करें इससे न्यून अथवा अधिक न हों। यहाँ संख्या उपलक्षण मात्र है, केवल 'गण' से अभिप्राय है अर्थात् वैश्यों को व्यापार के लिए गण की आवश्यकता है यह सूचित करता है। यहाँ अन्त में मरुत् ४९ पद आया है यही संख्या सबसे अधिक है। वेदों में वैश्यों को अनेक स्थल में 'मारुती मरुत्वती' अर्थात् मरुत् सम्बन्धी कहा है। यथाः—

यदाते मारुतीर्विशस्तुभ्यामिन्द्र नि येमिरे ॥८।१२।२९॥

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।
उतोमरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ ८ । १३ ।२८ ॥

यहाँ विश के विशेषण में 'मारुती' और 'मरुत्वती' प्रयोग हैं। इससे सिद्ध है कि गण में जितनी ही मनुष्यों की अधिक संख्या होगी उतना ही अच्छा है 'मारुती' पद से अन्यान्य अभिप्राय ये भी हैं कि सामुद्रिक यात्रा के लिए वैश्यों का वायु ही बड़ा भारी सहायक है पानी होने का भी कारण वायु होता है। वायु के द्वारा ही पर्जन्य=मेघ इधर-उधर जा वैश्यों की कृषि को सींचते हैं। पुराणों में इसी हेतु वायु की जाति वैश्य कही गई है ॥ इति ॥

"विवाह"

मैं अनेक स्थलों में आप लोगों से कह चुका हूँ कि वैदिक समय में प्रत्येक गृह चारों वर्णों से युक्त था। किसी का पिता गुणाधिक्य से यदि ब्राह्मण प्रसिद्ध है तो इसके पुत्रों में से कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और शूद्र है। किसी का पिता यदि शूद्र है तो उसके पुत्र ब्राह्मण हैं। (सब को सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि वेदानुसार साहसी, तपस्वी, उत्कट-वीर, सब-के-सब प्रकार से भार उठाने वाले और तन मन धन से समाज की सेवा करने वाले का नाम शूद्र है) बहुधा तो बड़े-बड़े ऋषि या महात्मा स्वयं चारों वर्ण थे उनमें ब्राह्मणत्व की प्रधानता से वे ब्राह्मण कहलाते थे। इस हेतु वैदिक समय में कोई ऐसी चर्चा ही नहीं थी कि किसका कहाँ विवाह हो, हाँ! गोत्र छोड़ कन्या जहाँ जिसको पसन्द कर लेती थी वहाँ उसका विवाह हो जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि दस्यु-दास अर्थात् अव्रती नास्तिक पुरुषों के साथ सब व्यवहार वर्जित था। परन्तु इस अवस्था में भी प्रायः ऋषि लोग उन्हीं दस्यु वा दासों की कन्याओं से उनके कल्याणार्थ विवाह कर लेते थे और उन कन्याओं को योग्यऋषिका बना छोड़ते थे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा। शारङ्गी मन्दपालेन जगामाऽभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्ट प्रसूतयः। उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृ-गुणैः सह ॥ २ ॥ मनु० अध्याय ९ ॥ अर्थः—अधमयोनिजा अर्थात् निकृष्ट दस्यु वा दास की कन्या अक्षमाला और शारङ्गी नामकी कन्या ये दोनों क्रमशः ऋषि बसिष्ठ से और ऋषि मन्दपाल से संयुक्ता अर्थात् विवाहिता होने पर परमपूज्या बन

गई ॥ २३ ॥ इसके अतिरिक्त अन्याय बहुतसी निकृष्ट पुरुषों की कन्याएँ अपने-अपने स्वामी के गुणों से उत्कृष्टता को प्राप्त हुई ॥ २४ ॥ इससे सिद्ध है कि ऋषि लोग प्रायः दस्युओं की कन्या से उसके सुधार के लिए विवाह कर लिया करते थे। ऐतरेय और कवष बड़े ऋषि गिने जाते हैं परन्तु वे दोनों ही दासी पुत्र हैं। कलियुग के आदि में अर्थात् युधिष्ठिर के समय में भी ऐसा विवाव निन्दनीय नहीं माना जाता था क्योंकि महा जङ्गली राक्षस अर्थात् महापतित जो सर्वथा वर्जित मनुष्य माँस को भी खाया करता था ऐसे पतित घृणित पुरुष की कन्या से भी महाराज भीमसेन जी ने विवाह कर लिया, यथा—"सा दृष्ट्वा पाण्डवांस्तत्र सुप्तान् मात्रा सह क्षितौ। हृच्छयेनाभिभूतात्मा भीमसेनमकामयत् ॥ ६४ ॥ हत्वा हिडिम्बंभीमोऽथ प्रस्थितो भ्रातृभिः सह। हिडिम्बामग्रतः कृत्वा तस्यां जातो घटोत्कचः ॥ १०९ ॥ महाभारत वनपर्व अ० १२ ॥ वह हिडिम्बा माता के साथ पृथिवी पर सोए हुए पाण्डवों को देख अत्यन्त अनुरक्ता हो भीमसेन की कामना वश हो गई। वह भीमसेन भी हिडिम्ब को मार और हिडिम्बा स्त्री को आगे कर अपने भाइयों के साथ आगे चले। उस हिडिम्बा में घटोत्कच उत्पन्न हुआ। (हिडिम्बा का भाई हिडिम्ब था) इसी कारण एक स्थल में मनु जी कहते हैं "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" मनु० अ० २ श्लोक २३८ ॥ पतित कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करे। हां! इसमें सन्देह नहीं कि कन्या उच्च कुल में देवे। इसका भी यह भाव होगा कि सर्वदा नीच कुल की ही कन्या लेनी पड़ेगी क्योंकि सब कोई अपनी-अपनी कन्या को उच्च कुल में देना चाहेगा (व्यवसाय से कोई उच्च वा नीच नहीं सर्वथा यह स्मरण रखना चाहिये) यद्यपि किसी-किसी देवी के आने से पति और गृह दोनों सुधर गए हैं। कभी-कभी

देखा गया है कि अति नीच पुरुष भी अपनी धर्मपत्नी के गुणों और उपदेशों से भूषित हो शुद्धाचारी आचरणवान् हो गया है। बड़े सुशिक्षित घर की कन्याएं किसी कारणवश जब-जब मूर्ख वा अनाचारी के गृह में विवाहिता होके गईं तो प्रायः देखा गया है कि उस गृह का सुधार अच्छे प्रकार से होने लगा है ऐसे अनेक उदाहरण अब भी विद्यमान हैं इससे यह सिद्ध होता है कि उपकार के लिये नीच गृह में भी यदि सुशिक्षिता कन्या जाय तो उस गृह का कल्याण ही होगा क्षति नहीं। तथापि मर्यादा और धर्म रक्षा के लिये भारतवर्षीय वनिताएं सहस्रों दुःख सहती हुईं भी प्रायः अपने पति की इच्छा को कदापि भी नहीं दबातीं अर्थात् पति की आज्ञा में सदा पार्वतीवत् स्थिर रहती हैं और पति की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालती। इस का परिणाम यह होता है कि स्त्री के सदाचार का उतना प्रभाव पुरुष पर नहीं पड़ता, इस हेतु यह उचित है कि कन्या को उच्च कुल में देने के लिए सदा यत्न करे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "यादृग् गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथा विधि। तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा" जैसे गुण वाले पुरुष के साथ स्त्री संयुक्ता होती है, वैसे ही गुणवाली हो जाती है जैसे समुद्र से मिल कर नदी।

"अनुलोम विवाह"❀

जिस समय में वंशानुगत वर्ण व्यवस्था चल पड़ी है उस

❀ उच्च वर्ण के कुमार के अपने से नीच-नीच वर्ण की कुमारी से विवाह होने का नाम अनुलोम है जैसा विप्र कुमार का विवाह क्षत्रियादि कुमारी से और नीच-नीच वर्ण के कुमार के अपने से उच्च-उच्च वर्ण की

समय में भी अनुलोम विवाह बराबर जारी था इसके दो एक उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

अधिगम्य गुरोर्विद्यां गच्छन् स्वनिलयं प्रति ॥१४१॥ कक्षीवानध्वनि श्रान्तः सुष्वापारण्यगोचरः। तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन् ॥१४२॥ क्रीडार्थं सानुगोऽपश्यत् सभार्यः स पुरोहितः। अथैनं रूपसम्पन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम् ॥१४३॥ कन्या दाने मतिं चक्रे वर्णगोत्राविरोधतः इत्यादि ॥ बृहद्देवता अ० ३ ॥

दीर्घतमा और राजा स्वनय की कन्याः—दीर्घतमा ऋषि के पुत्र कक्षीवान् गुरु से विद्याध्ययन कर अपने गृह को लौटते हुए मार्ग में श्रान्त हो किसी वन के किनारे सो गए। दैवयोग वश भावयव्य राजा के पुत्र स्वनय नाम के एक राजा अपनी धर्मपत्नी पुरोहित और सेनाओं के साथ जङ्गल में शिकार के लिये जाते हुए इस देवकुमारसमान कक्षीवान् को रूप सम्पन्न देख कन्या दान के लिये विचार करने लगे पश्चात् उस कुमार को उठा उसके वर्ण गोत्रादिक सब पूछे तब उसने कहा कि मैं औतथ्य दीर्घतमा का पुत्र हूँ और मेरा नाम कक्षीवान् है। यह सुन राजा ने इसको अनेकाभरण भूषिता कन्या को और इसके साथ बहुत से हय गज सोने भूषण आदि पदार्थ दे विदा किया।

राजर्षिरभवद्दाल्भ्यो रथवीतिरितिश्रुतः। स यक्ष्यमाणो राजात्रिमभिगम्य प्रसाद्य च ॥ अवृणीतार्षिमात्रेय मार्त्विज्यायार्चनानसम्। बृहद्देवता ५। ४९ ॥

कन्या से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है जैसा क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मणी कुमारी से।

श्यावाश्व और रथवीति की कन्या:—रथवीति नाम के एक राजर्षि ने यज्ञ करने की इच्छा से अत्रिगोत्रोत्पन्न अर्चनाना नाम के ऋषि से ऋत्विक्कर्म्मार्थ याचना की, वह अर्चनाना अपने पुत्र श्यावाश्व के साथ राजा के गृह यज्ञ करवाने को गए, राजा की एक कन्या परम सुन्दरी थी। उसे देख श्यावाश्व प्रेम विवश हो गया। इसके पिता ने यह चरित्र देख राजा से कहा कि आप अपनी कन्या मुझे स्नुषा (पुत्रबधू पुतोहू) के हेतु देवें। यह सुन राजा ने अपनी महिषी से सब हाल कह सुनाया। उनकी पत्नी ने यह कहा कि "नानृषिर्नो हि जामाता नैष मन्त्रान् हि दृष्टवान्" हम दोनों का जामाता अनृषि नहीं हो सक्ता। यद्यपि इसने वेदों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ा है तथापि इसने अभी मन्त्रों को नहीं देखा है अर्थात् इसने मन्त्रों के तत्त्व को अभी तक नहीं समझा है। अपनी धर्म्मपत्नी की सुयोग्य सम्मति को अनुमोदन कर अर्चनाना ऋषि को पुत्रबधू के लिये कन्या नहीं दी। पश्चात् वह श्यावाश्व बड़े परिश्रम से मन्त्रद्रष्टा बना और उस राजकन्या से विवाह किया। बृहद्देवता के पञ्चमाध्याय में इसकी कथा विस्तार पूर्वक कथित है।

कर्दम और देवहूति:—यह कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा मनु की कन्या से कर्दम ऋषि का विवाह हुआ। भागवत कहता है कि कर्दम ब्राह्मण से इसी देवहूति से कपिलाचार्य्य उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण चारों वर्णों की, क्षत्रिय तीन वर्णों की, वैश्य दो वर्णों की, शूद्र केवल एक ही वर्ण की कन्या से विवाह करते थे। इन सबों के भी बहुत उदाहरण हैं इस प्रकार यदि आप प्राचीन इतिहास ढूंढेंगे तो अनुलोम विवाह के बहुत से उदाहरण मिलेंगे। मनु जी भी कहते हैं कि:—

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य साच स्वाच विशःस्मृते।

ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥३।१३॥

शूद्र की भार्या केवल एक शूद्रा ही हो सकती है। वैश्य की भार्या शूद्रा और अपने वर्ण की कन्या। क्षत्रिय की भार्या, शूद्रा, वैश्या और अपने वर्ण की कन्या और ब्राह्मण की भार्य्या शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया और अपने वर्ण की कन्या हो सकती है। इस प्रकार देखते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्थित होने पर भी अनुलोम विवाह में बाधा नहीं थी। परन्तु धीरे-धीरे यह अनुलोम विवाह की रीति भी सर्वथा बन्द हो गई और करने वाले निन्दित समझे जाने लगे। इतना ही नहीं किन्तु आज कल एक देश के ब्राह्मण का विवाहादि सम्बन्ध दूसरे देश के ब्राह्मण के साथ नहीं होता। बल्कि एक देशीय ब्राह्मणों में भी शतशः भेद इस प्रकार हो गए हैं कि एक दूसरे के हाथ का खा पी भी नहीं सकता। इसी प्रकार क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों के भी अनेक भेद भाव हो गए हैं। इस विषय पर पुनः मैं कभी विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा।

'प्रतिलोम विवाह' ❀

परन्तु प्रतिलोम विवाव भी बहुधा हुआ करता था। लोग विचार के स्वतन्त्र थे। इस कारण प्रारम्भ में इन नियमों की परवाह नहीं करते थे। महाराज ययाति का विवाह ब्राह्मण कुमारी से हुआ। यह कथा महाभारत में बहुत प्रसिद्ध है। भागवतादि सब पुराण भी इसको वर्णन करते हैं। यद्यपि जब

❀ क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मण कुमारी से, वैश्य कुमार का क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से, शूद्र कुमार का वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है।

धीरे-धीरे वर्ण प्रणाली वंशानुगत हो बहुत दृढ़ होती गई उस समय तो प्रतिलोम विवाह को निन्दा होने लगी, तथापि आज कल के समान उस समय में निन्दा नहीं थी वल्कि प्रतिलोम विवाह का समाजों में बड़ा आदर था किसी-किसी प्रतिलोम सन्तान की देश में बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में जो सन्तान होता था उसकी प्रतिष्ठा देश में कहीं बढ़ कर होती थी, प्रमाण के लिये यहाँ उदाहरण देखिये :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥मनु० १०।११॥

क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में जो बालक होता है वह 'सूत' और वैश्य से क्षत्रिय की कन्या में जो बालक उत्पन्न होता है वह "मागध" और वैश्य से ही ब्राह्मण की कन्या में जो सन्तान होता है वह "वैदेह" कहाता है।

सूतजाति का वर्णन :—अब आप विचार के देखेंगे कि यद्यपि सूतवर्ण प्रतिलोम से होता है तथापि इसकी कितनी प्रतिष्ठा प्राचीन काल में थी। आप लोग जानते होंगे कि दशरथ महाराज के सारथि का नाम 'सुमन्त्र' था। यह केवल सारथि ही नहीं थे किन्तु ये महाराज के मन्त्री भी थे। परन्तु यह वर्णव्यवस्था के अनुसार 'सूतवर्ण' थे आप इन प्रयोगों से देखें। "सुमन्त्र! राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।........तद्गच्छ त्वरितं सूत! राजपुत्रं यशस्विनम्। राममानय भद्रं ते नात्र कार्य्या विचारणा। अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि। तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्। सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्........इति सूतो मतिं कृत्वा हर्षेण महता पुनः॥ अयोध्याकाण्ड अ० १४ श्लोक ६०—६५॥ प्रत्याश्वस्तो

यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः। तदा जुहाव तं सूतं राम-वृत्तान्त कारणात्। तदासूतो महाराजम्। राजातु रजसा सुतम्। सूत! मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः"। इत्यादि अनेकशः प्रयोग रामायण में विद्यमान हैं जिनसे विदित होता है कि 'सुमन्त्र' वर्ण के सूत थे। परन्तु 'सूत' होने पर भी यह राज-मन्त्री और 'सारथि' थे। मनुजी ने भी कहा है कि "सूताना-मश्वसारथ्यम्" सूतों की जीविका अश्वसारथ्य है। प्राचीन-काल में महाराजों का सारथि बड़ा विश्वासी पुरुष बनाया जाता था और इसकी प्रतिष्ठा मन्त्री आदिक पुरुषों से न्यून नहीं होती थी। श्रीकृष्ण महाराज स्वयं अर्जुन के सारथि हुए थे। जिस कारण ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से यह सूत नामक बालक होता था। इस हेतु इस पर पूर्ण विश्वास सबका रहता था। क्योंकि इसमें अपनी माता से सत्यादि उच्च गुण और पिता से वीरतादि गुण प्राप्त होते थे इस कारण यह सूत सर्वदा विश्वासपात्र और महावीर माना जाता था इस हेतु इसको सर्वदा सारथि का कार्य्य सौंपा जाता था इससे बढ़कर कोई विश्वास का कार्य्य नहीं। क्योंकि प्रति क्षण क्या संग्राम में क्या गृह में सूत सारथि के हाथ में राजा का प्राण रहता है।

महाभारत और सूत पुत्रः—रामायण से बढ़ के महाभारत में "सूतजाति" की प्रतिष्ठा, गौरव, सम्मान देखते हैं। महाभारत में कहा गया है कि केवल चारों वर्णों के लोग ही नहीं किन्तु बड़े-बड़े ऋषि और मुनि राजा और महाराज ब्राह्मण और मूर्ख सब कोई सूत पुत्र से महाभारत के समान उपदेश शिक्षा ग्रहण करते थे और बड़े प्रेम से सूतनन्दन को अपने से उच्च आसन पर बैठा महाभारत की सारी कथा सुनते थे। जगत् में इससे बढ़कर अन्य कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। प्रथम

आप लोग यह देखें कि जिसने सम्पूर्ण महाभारत को ऋषि लोगों से कहा है वे सूत पुत्र थे या नहीं "विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः । महाभा० आदि० १।२॥ सूतपुत्र यथातस्य भार्गवस्य महात्मनः॥ आदि० ५। ५५ लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये। आ० प० १।१॥ निखिलेन यथा तत्त्वं सौते सर्वमशेषतः।" आ० १३।२॥ इत्यादि महाभारत के वचन से सिद्ध है कि जिसने महाभारत सुनाया है वह सूत वर्ण के अवश्य ही थे। यथार्थ में इनका नाम तो 'उग्रश्रवा' था परन्तु 'सूत' जाति के होने से इनको ऋषि लोग प्यार से सूत कहा करते थे। इनके पिता का नाम लोमहर्षण था यह साक्षात् सूत अर्थात् ब्राह्मण कन्या से क्षत्रिय कुमार थे। और जिस हेतु इसके पुत्र उग्रश्रवा थे इस कारण पिता के नाम से लौमिहर्षणि और सौति भी कहलाते थे। इसी हेतु कहीं 'सूतनन्दन' कहीं 'सूतपुत्र' कहीं 'सौति' कहीं 'सूत' कहीं 'लौमहर्षणि' इत्यादि पद आते हैं। इसी सूतपुत्र से शौनक आदि के समान बड़े-बड़े ब्रह्मर्षि राजर्षि राजा महाराज सब कोई महाभारत कथा सुना करते थे। अब आप लोग विचार करें कि प्रतिलोम विवाह का कितना सत्कार था। यहाँ यह भी एक बात स्मरण रखनी चाहिये। इसी सूतजाति के ऊपर सम्पूर्ण इतिहास और पुराण लिखने का भार छोड़ा जाता था। इस हेतु इतिहास और पुराण सब ही सूत के लिखे हुए हैं।

पुराण और सूत—सकल अष्टादश पुराण इसी सूत ने सुनाये हैं। सर्व पुराण शिरोमणि श्रीमद्भागवत की सम्मति सुनिये "त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्। ऋषयऊचुः। त्वयाखलु पुराणानि सेतिहासानि

चानघ। आख्यातान्यप्यधीतानि धर्म्मशास्त्राणि यान्युत" इत्यादि प्रथमस्कंध प्रथमाध्याय। एक समय सब ऋषि प्रातःकाल के हवनादिक कृत्यों को समाप्त कर पूजित और सुखपूर्वक उपविष्ट सूत जी से यह आदरपूर्वक पूछने लगे। ऋषि लोग बोले हे अनघ सूत जी! आपने इतिहास पुराण आख्यान और धर्म्म-शास्त्र पढ़े हैं! वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ बादरायण वेदव्यास और अन्यान्य मुनि लोग जो-जो शास्त्र जानते हैं उन सबों को आप भी जानते हैं इस हेतु आप कृपा कर हम लोगों से पवित्र पुराणों की वार्त्ता सुनावें इत्यादि। इससे सिद्ध है कि समस्त पुराणों के वक्ता सूत जी थे। परन्तु आज कल की गति देख मुझे अति शोक होता है क्योंकि यद्यपि आजकल के ब्राह्मण इनही पुराणों को पढ़ते इनको ही वेदवत् मानते इनके उपदेश पर चलते रात दिन इनको पढ़ के अपने को परम पवित्र समझते हैं तथापि प्रतिलोम विवाह के निषेधी हैं यह लीला देख मुझे शोक होता है। जिस हेतु आज कल अज्ञानी लोग इस विवाह के हक में नहीं हैं इस कारण उन अज्ञानी मनुष्यों की प्रसन्नता के लिये ये पण्डितमन्यमान भी वैसे कहते कहाते। एवमस्तु। आपलोगों ने देख लिया कि प्रतिलोम विवाह की भी प्राचीन काल में बड़ी प्रशंसा थी।

भिन्न वर्णों में सम्बन्ध—इतिहास की समालोचना से यह निश्चय किया गया है कि एक वर्ण के दूसरे वर्ण में अर्थात् एक व्यवसायी के दूसरे व्यवसायी में विवाह सम्बन्ध होने से जो सन्तान होते हैं वे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों बलों में अच्छे निकलते हैं। भारतवर्षीय इतिहास सूचित करते हैं कि जितने बड़े-बड़े ऋषि वा मुनि वा विद्वान् वा शूरवीर हुए हैं उनमें से बहुत से वे हुए हैं जिनकी उत्पत्ति दो भिन्न-भिन्न वर्णों

के योग से हुई है। सबसे प्रथम वसिष्ठ और विश्वामित्र का ही उदाहरण लीजिए क्योंकि ये दोनों अत्यन्त प्राचीन ऋषि वेदों के हैं। इन दोनों की उत्पत्ति में बड़ी शङ्का है। वसिष्ठ को कोई वेश्या-पुत्र कोई कुछ कोई कुछ कहते हैं। विश्वामित्र को भी ब्राह्मण-बीज अथवा ब्राह्मणानुगृहीत कहते हैं। यही दशा परशुराम के विषय में भी है। ये तीनों बड़े महात्मा और बड़े योगीश्वर हुए हैं। साङ्ख्यशास्त्र के कर्त्ता कपिल जी भी ब्राह्मण पुत्र होने पर भी क्षत्रिय मनु जी के दौहित्र हैं। सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि श्री वेदव्यास जी कैवर्तकन्या से उत्पन्न हुए हैं। वेदतत्त्ववित् ऐतरेय महर्षि ब्राह्मण बीज से दासीपुत्र हैं। ऐलूष कवष की यही दशा है। धृतराष्ट्र पाण्डु, बिदुर ये तीनों नियोग से हैं। इसी प्रकार युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डवों की कथा मानी जाती है। ऐसे-ऐसे शतशः महात्मा इतिहास में मिलेंगे। अन्त में राजा चन्द्रगुप्त के इतिहास का स्मरण दिला समाप्त करते हैं। इसको सब कोई स्वीकार करते हैं कि राजा महानन्द की एक दासी थी उसका नाम 'मुरा' था और वह जाति की नाइन थी इसी से महाराज चन्द्रगुप्त हुए हैं पर अब इस कथा का सप्रमाण खण्डन हो गया है। यह ऐसे प्रतापी राजा हुए हैं कि महाभाष्यकार पतञ्जलि भी इनकी चर्चा करते हैं। इससे सिद्ध है कि भिन्न-भिन्न व्यवसायी का अपने से भिन्न-भिन्न व्यवसायियों में विवाह सम्बन्ध होना अच्छा है। सत्य बात तो यह है कि सन्तानों को पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखवा के शारीरिक नियम के अनुसार उनसे सदा व्यायाम करवावे और परीक्षा करवा के पश्चात् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जिसको जो पसन्द करे उस-उस जोड़े में विवाह होना चाहिये जैसा कि हमारे आचार्य्य श्रीमद्दयानन्द जी लिख गए हैं। ब्रह्मचर्य्य की जितनी ही रक्षा

होगी उतने ही बलिष्ठ सुयोग्य सन्तान होते हैं इसमें सर्व शास्त्र-कार सहमत हैं।

"स्पर्श दोष=परस्पर भोजन व्यवहार"

वेदों का यह सिद्धान्त है कि जो अव्रती, अब्रह्मचारी, लम्पट, धूर्त, कितव, व्यसनी, मद्यादिसेवी, असत्यवादी, असद्-व्यवहारी, पिशुन, चोर, डाकू, क्रव्याद, छली, कपटी हैं और इस प्रकार के जो-जो मनुष्य हैं वे निःस्सन्देह अपवित्र अशुद्ध हैं इनके साथ भोजनादि सम्बन्ध नहीं रक्खे। परन्तु चारों वर्णों में किसी वर्ण को अथवा आज कल की लोक-दृष्टि में जो नीच व्यवसायी माने जाते हैं उन सबों में से किसी भी नीच व्यवसायी को वेद अपवित्र वा अशुद्ध नहीं मानता न इनके साथ भोजनादि सम्बन्ध निषेध ही करता है। वेद कहता है *"मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः"* यास्काचार्य्य "शिश्नदेव" पद का अर्थ "शिश्नदेवाः अब्रह्मचर्य्याः" अब्रह्मचारी करते हैं। ऋचा का अर्थ यह है कि (शिश्नदेवाः) अब्रह्मचारी (नः+ऋतम्) हमारे यज्ञ में (मा) नहीं आवें। इससे सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य्यव्रत रहित पुरुष अपवित्र है। पुनः—

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासा मेका मिदभ्यंहुरोगात् ।"

इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य कहते हैं—"सप्तैव मर्य्यादाः कवयश्चक्रुः। तासामेकामप्यभि गच्छन्नहंस्वान् भवति। स्तेयमतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापाणं दुष्कृतस्य कर्म्मणः पुनः पुनः सेवां पातके नृतोद्यम् ।"

भाव यह है कि (कवयः) ब्रह्मवादी जन (सप्त+मर्य्यादाः) सात ही मर्य्यादाएँ (ततक्षुः) स्थिर करते हैं। (तासाम्+एकाम्+इद्+अभि) उनमें से एक भी मर्य्यादा को जो ग्रहण

करता है वह अवश्य ही (अंहुरः + अगात्) महा पापी हो जाता है वे सात मर्य्यादाएँ कौन हैं ? इस पर यास्काचार्य्य कहते हैं (स्तेयम्) चोरी (अतल्पारोहणम्) परस्त्री गमन (ब्रह्महत्याम्) ब्रह्मविद् पुरुष की हत्या (भ्रूणहत्याम्) बालक गर्भादि हत्या (सुरापाणम्) मद्यपान (दुष्कृतस्य कर्म्मणः पुनः पुनः सेवाम्) दुष्कर्म्मों का पुनः पुनः सेवन करना (पातके+अनृतोद्यम्) पातक करने पर भी मिथ्याभाषण करना। ये ही सात महापातक हैं। इसी के अन्तर्गत अन्याय पाप हो जाते हैं।

उपनिषदों में ऋषि यही कहते हैं। 'स्तेनो हिरण्यस्यसुरां पिबंश्च गुरोस्तल्प मावसन्। ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति' ॥ छा० उ० ५।१०।९॥ हिरण्य का चोर (हिरण्य यहाँ उपलक्षणमात्र) महापापी। गुरुतल्पगामी। ब्रह्मघाती। ये चार और इन चारों के साथ व्यवहार करने वाला ये पाँचों पातकी हैं। मनु जी भी यही कहते हैं। "ब्रह्महत्या सुरापनं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकन्याहुः संसर्गश्चापि तैःसह" मनु० ११।५४। इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है कि वेदादिशास्त्र चोर डाकू मद्यपायी आदिक जनों को अशुद्ध मानते हैं। अतः इनके साथ भोजन करना भी महापातक है। परन्तु आजकल इसके विपरीत ही लोग आचरण करते हैं। इन महापातकों को कोई नहीं पूछता। बड़े-बड़े मद्यपायी वेश्यागामी मिथ्यावादी पुरुषों के साथ भले प्रकार से व्यवहार करते हैं उनको अपवित्र नहीं समझते। अपवित्र समझते हैं किसी-किसी वर्ण को अर्थात् किसी-किसी व्यवसायजीवी को। परन्तु वेद कहीं भी किसी व्यवसायी को अपवित्र अस्पृश्य अभोज्यान्न अपेयपानीय नहीं कहता। किन्तु वेद यह कहता है :—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः।

समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । अथर्व ३। ३० । ६

ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम सबों का (प्रपा) पानी पीने का स्थान (समानी) एक ही हो (वः+अन्नभागः+सह) तुम्हारा अन्न भाग अर्थात् भोजनादि व्यवहार साथ ही हो। ऐ मनुष्यो ! (समाने+योक्त्रे) समान ही रस्सी में (वः+सह युनज्मि) तुम सबों को युक्त करते हैं। इससे सिद्ध है कि खान पान बैठना उठना आदि व्यवहार चारों वर्णों का एक ही होना चाहिए। पुनः—

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयञ्च सूरयः ।

अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् । ऋ० ६।१८।१२

(सखायः) हे सखाओ ! मित्रो ! (यूयम्+वयञ्च) आप और हम और (सूरयः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष सब कोई मिलकर साथ-साथ (पुरोरुचम्) सामने में स्थापित जो रुचिप्रद भात रोटी आदि अन्न है (तम्) उसे (अश्यामः) खावें। "अश भोजने" वह अन्न कैसा है (वाजगन्ध्यम्) बलप्रद पुनः (वाजपस्त्यम्) बलदायक अनेक प्रकार के व्यञ्जनादि युक्त। यह मन्त्र विस्पष्ट-तया सहभोजिता का प्रतिपादक है। पुनः

ओदनमन्वाहार्य्यपचने पचेयुस्तं ब्राह्मणा अश्नीयुः ॥

शतपथ ब्रा० २ । ४ । ३ । १४ ॥

यज्ञ में पाक और भोजन का विधान आता है। यजमान के गृह पर प्रत्येक ऋत्विक् भोजन करते हैं। बड़े-बड़े यज्ञों में राजाओं के तरफ़ से पाक के लिये सूद=पाचक नियुक्त किए जाते हैं वे दास होते हैं। ये विविध पाक बना के सबको खिलाते हैं। इस कारण शतपथ ब्रा० कहता है कि अन्वाहार्यपचन= जहाँ पर खाने के पदार्थ बनाए जाते हैं उस गृह और कुण्ड का

नाम अन्वाहार्यपचन है। वहाँ पाक करें और उसको ब्राह्मण खाँय। पुनः मधुपर्क प्रायः सब यज्ञ में होता है। इसमें भी विविध अन्न बनाए जाते हैं। श्रौतसूत्र कहता है कि इसमें भोजन के पश्चात् जो अनुच्छिष्ट ओदन (भात) रोटी आदि पदार्थ बच जाँय वे किसी ब्राह्मण को देदेना चाहिये यथा :—शेषं ब्राह्मणाय दद्यात्। लाट्यायनश्रौतसूत्र १।२।१०॥ शेष खाद्य पदार्थ ब्राह्मण को देदेवे। इससे विस्पष्ट है कि पूर्व समय में कच्ची पक्की रसोई का विचार नहीं था। प्रत्युत देखा जाता है कि ब्राह्मणों को पवित्र पका हुआ अन्न जहाँ कहीं से मिलता था ग्रहण कर लेते थे। पुनः भिक्षा में ब्राह्मणों को ओदन दिया करते थे यथा :—"ब्राह्मणाय बुभुक्षिताय ओदनं देहि स्नाताय अनुलेपनं पिपासते पानीयम्। निरुक्त दैवत काण्ड १।१४॥ भूखे ब्राह्मण को ओदन दो, नहाने को अनुलेपन और प्यासे को पानी। अभी तक पञ्जाब देश में ब्राह्मण सब यजमान के गृह की पकी हुई रोटी दाल शाक भात सब कुछ खाते हैं॥

निषाद जाति का अन्न=हम आप लोगों से कह चुके हैं कि आजकल निषाद जाति बहुत निकृष्ट मानी जाती है। परन्तु पूर्व समय में इसके हाथ के भी रोटी पानी सब कोई खाते पीते थे। जब श्री रामचन्द्र जी वन को जाते हुए निषाद से मिले हैं तब वह निषाद सबके लिये विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ ले आया है यथा:—"ततो गुणवदन्नाद्य मुपादाय पृथक् विधम्। अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह। स्वागतंते महाबाहो तवेयमखिला मही। वयं प्रेष्याः भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः। भक्ष्यं भोज्यंच पेयंच लेह्यं चैतदुपस्थितम्। शयनानिच मुख्यानि वाजिनां खादनं तथा॥ बालकाण्ड ५१। ३९-४०। यहाँ चारों प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य भोजन का वर्णन है।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिये इस समय सुमन्त्र आदि अनेक पुरुष रामचन्द्र के साथ थे। व्रत के कारण रामचन्द्र जी ने इस रात्रि को भोजन नहीं किया है परन्तु अन्यान्य सबों ने खाया पीया है। पुनः जब श्री रामचन्द्र जी शबरी के आश्रम में गए हैं तब इसने पाद्य और आचमनीय आदि सब प्रकार का भोजन दिया है यथाः—"पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद् यथा विधि। अरण्यकाण्ड अध्याय ७४। श्लोक ७। पीने के लिये जो पानी दिया जाता है उसे आचमनीय कहते हैं। शबर आजकल मशहूर कोल भील निकृष्ट जाति का नाम है। शबर जाति की स्त्री होने के कारण 'शबरी' इसका नाम था। अब आप लोग स्वयं विचार करें कि पूर्व समय में छुआ छूत कहाँ तक था। व्याधा का अन्न और ब्राह्मणः—एक तपस्वी वेदविद् शास्त्री ब्राह्मण मिथिला देश के एक व्याध (कसाई = Butcher पशु, पक्षी मारकर बेचने वाला) के गृह पर गए वहाँ वह उस व्याध के अन्न पानी को बराबर खाया पीया यथाः—"प्रविश्य च गृहं रम्यम आसनेनाभि पूजितः। पाद्यमाचमनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥ वनपर्व अध्याय २०६। श्लोक १८॥ यहाँ हमने दो निकृष्ट जातियों के उदाहरण दिये। कहाँ निकृष्ट व्याध और कहाँ वेद विद् ब्राह्मण॥

सूद, सूपकार पाचक आदिः—क्या आप इस बात को नहीं जानते हैं कि जब बड़े-बड़े अश्वमेधादि यज्ञ देश में हुआ करते थे जब देश-देश के चारों वर्ण एकत्रित होते थे तब रसोई करने वाले कौन नियुक्त होते थे? क्या आज कल के समान ही ब्राह्मण ही उस समय में भी नियुक्त होते थे? क्या आज के समान ही सब कोई भिन्न-भिन्न अपना पाक करते थे? क्या आपने कहीं भी ऐसा वर्णन पढ़ा या सुना कि ब्राह्मण लोग उन महान् यज्ञों

में आकर अलग-अलग पाक किया करते थे। नहीं, महाशयो! ऐसा कहीं नहीं। तब प्राचीन काल में पाक करने वाला कौन था? सुनिये "आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा। उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथापुरा ॥ १९ ॥ महाभारत आश्रम-वासि पर्व प्रथमाध्याय का १९ वां यह श्लोक है। इससे सिद्ध है कि राजा के पाक करने को आरालिक, सूपकार, राग खण्डविक आदि पुरुष नियुक्त होते थे ये सब पाककर्ताओं के भेद हैं। पुनः "सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवन शालिनः" उत्तर काण्ड रामायण अध्याय ९१। श्लोक २२। अश्वमेध के समय में श्री रामचन्द्र कहते हैं कि भरतजी अपने साथ सूद और सूद स्त्रियों को पाक के लिये ले जाँय पुनः "स चिन्तयन्नघंराज्ञः सूदरूपधरो गृहे। भागवत ९। ९। २१ ॥ इत्यादि प्रमाणों से विदित होता है कि पाक करने वाले 'सूद' "आरालिक" इत्यादि नाम से पुकारे जाते थे। ये दास होते थे। ये ही बराबर रसोई बनाया करते थे। आगत ब्राह्मणादि वर्ण कदापि भी अपने-अपने हाथ से पाक नहीं किया करते थे। देखिये दशरथ महाराज के यज्ञ का वर्णन है कि "ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते। तापसा भुञ्जते-चापि श्रमणाश्चव भुञ्जते ॥ १२ ॥ अन्नंहि विधिवत् स्वादु प्रशं-सन्ति द्विजर्षभाः ॥ १७ ॥ स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान् पर्यवेषयन् ॥ १८ ॥ इत्यादि बालकाण्ड अ० १४ में वर्णन है इस यज्ञ में ब्राह्मण तापस श्रमण आदि नाथ अनाथ सब ही खाया करते थे। ब्राह्मणादि स्वादु अन्न की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। अलंकृत हो सूद लोग ब्राह्मणों को परोसा करते। पुनः 'ब्राह्मणान् भोज-यामास पौरजानपदानपि" रामायण १। १८। २३ ॥ दशरथ ने ब्राह्मणों और पुरवासियों को भोजन खिलाया। महाभारत में भी अनेक स्थलों में इसकी चर्चा आती है। यथा "चोष्यैश्च

विविधैराजन् पेयैश्चबहुविस्तरैः ॥ ४ ॥ तर्पयामास विप्रेन्द्रान्" ॥ ५ ॥ सभापर्व अध्याय ४। चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य, खाद्य आदि अनेक प्रकार की पकी हुई रसोई (जिसको आज कल कच्ची रसोई कहते हैं) से युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को तृप्त किया पुनः "पर्यवेषन् द्विजातींस्तान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४१ ॥ विविधा-न्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ॥ ४२ ॥ अश्वमेध पर्व अध्याय ८५। महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन है। वे दासगण विविध खाद्य अन्न पानी ब्राह्मणों को परोसा करते थे। यहाँ 'अनुयायी' अर्थात् दास शब्द का साक्षात् प्रयोग है। हम कहाँ तक उदाहरण बतलावें आप स्वयं महाभारत पढ़ के देखें। अनेक स्थलों में देखा जाता है कि ब्राह्मणगण सब वर्णों की रसोई खा लिया करते थे। परन्तु आजकल केवल खाने पीने में ही लोगों ने धर्म्म मान रक्खा है। यहाँ तक कि कोई-कोई पुरुष ऐसे अज्ञानी हैं कि छिपाकर पाक करते हैं यदि उसे कोई भिन्न वर्ण देख ले तो उसे अपवित्र मान छोड़ देते हैं। कोई चौके में एक लकीर दे देते हैं यदि उस लकीर के अभ्यन्तर कोई हाथ भी रख दे तो वह चौका अशुद्ध माना जायगा। कोई-कोई अपनी स्त्री के हाथ का भी नहीं खाते। कैसी-कैसी अज्ञानता की बात देश में फैली हुई है। उलटी बुद्धि लोगों की हो रही है जो वास्तविक शुद्धि चाहिये वह तो विनष्ट हो गई। पाखण्ड जितना करता जाय उतना ही अज्ञानी जन उसे अच्छा मानते हैं।

संन्यासियों का खानदान :—विवेकी पुरुषो! आप यह तो विचारो यदि खाने पीने में कोई पाप लगता तो संन्यासियों को भी लगना चाहिये। आपको मालूम है कि पका हुआ शुद्ध अन्न जिस गृह से संन्यासियों को मिलजाता है वे उसे विना जाति पाति के विचार से खा लेते हैं। यही एक प्राचीन व्यवहार

देश में रह गया है। जैसे आजकल संन्यासीगण छुआ छूत नहीं मानते हैं केवल भक्ष्याभक्ष्य अन्न का विचार रखते हैं। किसी वर्ण के गृह का शुद्ध अन्न क्यों न हो वह ग्रहण कर लेते हैं प्राचीन काल में सब आश्रमों सब वर्णों में ऐसा ही विचार था। अभी तक वैष्णव सम्प्रदाय में देखा जाता है कि जो कोई वैष्णव हो जाते हैं वे परस्पर एक दूसरे के हाथ का खा पी लेते हैं चाहे वह कितनी ही नीच जाति का क्यों न हो।

द्विजाति :—आजकल के धर्म्मशास्त्रों में भी शूद्रों के पक्व अन्न ग्रहण करने का केवल निषेध पाया जाता है परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों द्विजातियों के परस्पर अन्न ग्रहण करने में कोई दोष नहीं बतलाता। परन्तु यहाँ तो यह अज्ञानता फैली हुई है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी सब कोई मिल कर एक दूसरे के हाथ की रोटी नहीं खायँगे इसी प्रकार मैथिल आदि सब ब्राह्मणों में व्यवहार है। पुनरपि देखिये! बहुत द्विज कहते हैं कि शूद्र की बनाई हुई रोटी भात खाने से हम शूद्र हो जाँयगे। मैं कहता हूँ कि तब ब्राह्मण की रोटी खाने से शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं बन जाता। यदि शूद्र ब्राह्मण नहीं बनता तब ब्राह्मण शूद्र कैसे होगा। क्या ब्राह्मण की रोटी में शूद्र को ब्राह्मण बनाने की शक्ति नहीं? क्या शद्र की ही रोटी प्रबल है?। इस पर कोई कहते हैं कि पर्वत पर से गिरने में देर नहीं लगती परन्तु चढ़ने में बहुत देर लगती है। मैं कहता हूँ कि इसको आपने गिरना कैसे मान लिया। क्या शूद्र की रोटी में कोई पाप लगा हुआ है कि आपको वह पकड़ लेगी। यदि कहो कि शूद्र अशुद्ध अपवित्र रहते हैं अतः इनसे बनी हुई रोटी भी वैसी ही होगी। मैं कहता हूँ कि तब शूद्र के हाथ से पानी भी मत पीजिये। पानी में तो और भी अशुद्धता आने की अधिक शङ्का है। और शूद्रों से

कुटवाना पिसवाना आदि कर्म्म भी छुड़वा लीजिये। और मैं कहता हूँ कि शूद्र को आपने अपवित्र कैसे मान लिया। पवित्र अपवित्र बनाना भी तो आपही के हाथ में है। उससे नित स्नान ध्यान पूजा पाठ करवाइये शुद्ध वस्त्र दीजिये। यदि व्यसनी विषयी है तो उससे व्यसन छुड़वा दीजिये। वह शुद्ध हो जायगा तब उसको पाचक बना लीजिये। क्या द्विजों में वैसे नहीं हैं ?। हाँ पवित्र पाक बनना चाहिये यह मैं भी स्वीकार करता हूँ। पवित्रता वा अपवित्रता भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ के नियम से होती है। मनुष्यों को तो पवित्र अपवित्र बनना अपने हाथ में है। भाइयो! यह विचारने की बात है। जब स्वयं वेद शूद्र के हाथ से बनी हुई रोटी खाने का निषेध नहीं करते हैं तब आप क्यों पाप के भागी बनते हैं। आपके देश में जितने महा पुरुष वसिष्ठ विश्वामित्र याज्ञवल्क्य जनक राम कृष्ण रामानुज रामानन्द कबीर नानक गुरुगोविन्द राजाराममोहन केशवसेन और अन्त में वेदपारदृश्वा तत्त्वज्ञानी महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती हुए हैं वे इस प्रकार की छुआ छूत नहीं मानते। इस कारण वेद की ओर देखो मनुष्यों से मत डरो। ईश्वर की आज्ञा वेद वाणी को स्वीकार करो।

समानो प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।

बहुत आदमी कहते हैं कि यदि यहाँ के लोगों में स्पर्शास्पर्श विचार और इतना जाति पाँति का बखेड़ा नहीं होता तो मुसलमान के समय में सब कोई भ्रष्ट होगए रहते इत्यादि। परन्तु मैं कहता हूँ कि आपस में इस प्रकार यदि जाति पाँति का झगड़ा ही नहीं रहता तो कदापि भी इस देश में यवनादि राजा नहीं आते। जिस समय में यह बखेड़ा नहीं था उस समय में यहाँ के

लोग सम्पूर्ण पृथिवी के राजे बने रहे। जब से यह परस्पर की फूट घृणा अन्यायय-बर्ताव जात्यभिमान अविद्या आदि दुर्गुण चले तब से ही यह देश विनाश को प्राप्त हुआ। कोई अज्ञानी कहते हैं कि यह तो कलियुग का प्रभाव ही है कि सब कोई एकमय हो जायँगे तब ही तो कलंकी अवतार धर भगवान् सर्वनाश करेंगे। मैं कहता हूँ कि यह कलियुग का प्रभाव नहीं किन्तु सत्ययुग का प्रभाव है क्योंकि सत्ययुग में ऐसी ही व्यवस्था थी पीछे अनेक उदाहरण दिए गए हैं। देखो सब शास्त्र कहता है कि अभिमान त्यागो। परन्तु आप सब दुष्कर्म करते हुए केवल खाने पीने में मिथ्या अभिमान करते हो। शूद्रों के हाथ का पानी पीते हो पूरी खाते हो तब भात रोटी में कौनसी बात रह गई। आप यद्यपि रामकृष्णादिकों को अवतार मानते हो तथापि इनका क्षत्रिय शरीर भी साथ ही मानते हो क्योंकि स्वयं राम कृष्णादि महापुरुषों ने ब्राह्मण और ऋषि आदिकों को बड़ी नम्रता से प्रणाम किया है जैसे आज क्षत्रिय करते हैं फिर भोग लगाकर उच्छिष्ट (जूठा) क्यों खाते हो। देखो! किसी जाति में जो महात्मा होते हैं उनके समीप सबको शिर झुकाना ही पड़ता है। कबीर, नानक, गणिका आदि इसके उदाहरण हैं। कोई कहते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तन से बड़ा ही गड़बड़ होगा। ब्राह्मणवंश शूद्र और शूद्रवंश ब्राह्मण बन जायगा? मैं कहता हूँ ऐसा कदापि नहीं होगा। जो ब्राह्मण हैं वे ब्राह्मण ही जो शूद्र हैं वे शूद्र ही रहेंगे। क्योंकि गुण ही मनुष्य को ब्राह्मण शूद्र बनाता है। परन्तु मैं एक बात और भी कहता हूँ कि शूद्र को निकृष्ट नीच क्यों मानते हो। वेद के अनुसार शूद्र अच्छे महावीर पुरुष को कहते हैं। यही भाव रक्खो। हाँ नीच को दस्यु वा दास कहते हैं। ऐ विवेकि पुरुषो! मनुष्यों को

मनुष्य बनाने के लिये प्रयत्न करो अन्तिम अनुशासन है। अब इस प्रसंग को समाप्त करो बड़ा शास्त्र विचार हुआ धारणा भी नहीं रहेगी और आप लोग अब निःसन्देह भी हो गए। ईश्वर के नाम पर इसी की ओर देख सब कार्य्य सम्पादन करो।

"सप्तम प्रश्न का समाधान"

(क) निश्चय कर्म्मानुसार सृष्टि हम भी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि प्रथम सृष्टि में सब ही समान ही नहीं हुए। परन्तु जैसे चार भ्राताओं में यत् किञ्चित् भेद बना रहता है तद्वत् भेद उनमें भी था। इस प्रकार हरेक गृह में चारों वर्णों के लोग हो सकते हैं। एक-एक वंश को जो आप ब्राह्मण वा शूद्र कहते हैं यह नहीं हो सकता क्योंकि नीच-से-नीच गृह में कोई-कोई बालक बड़ा तीक्ष्ण निकलता है। शिक्षा होने पर वह उत्तम से उत्तम ब्राह्मण हो सकता है। बात यह है कि स्वाभाविक गुण रहने पर मनुष्यों में वर्ण व्यवस्था शिक्षा के ऊपर निर्भर है इस कारण वंश-का-वंश सर्वदा एक ही दशा में नहीं रह सकता पीछे बहुत कुछ कह चुके हैं विचारिये। ख+ग+घ इन तीनों का समाधान पृष्ठ ४ से ८९ तक देखें। (ङ) जिसको आज कल आप ब्राह्मण वा क्षत्रिय वंश कहते हैं क्या उनमें एक सी ही प्रवृत्ति आप देखते हैं क्या इनमें कोई चोर धूर्त्त मूर्ख नहीं होते। आप जो पशु का उदाहरण देते सो मनुष्य में नहीं घट सकता। क्योंकि लाखों यत्न से हाथी बैल नहीं होगा, परन्तु शिक्षा के अभाव से वा कुसङ्ग से ब्राह्मण केवल साधारण शूद्र ही नहीं किन्तु अस्पृश्य अव्यवहार्य व्रात्य बन जाता है। और यह भी आप ध्यान रक्खें कि पशु में खाने पीने आदि के स्वाभाविक उदाहरण देते हैं परन्तु मनुष्य में कृत्रिम। पशु आदिक में जो जिसका

खान पान वा क्रिया है वैसी प्रायः बाल्यावस्था से ही रहती है। जन्म से ही मछली तैरने लगती है। शूकर की जन्म से ही विष्ठा में प्रवृत्ति होजाती है। परन्तु मनुष्य में सब कुछ शिक्षा के अधीन है। आप स्वयं विचारें। (च) इसका समाधान पृष्ठ १७९ से २९६ तक देखें। इस प्रकार आपके सब प्रश्नों के समाधान विस्तार से कहे गये हैं परिशिष्ट में भी कुछ कहे जाँयगे। हठ दुराग्रह पक्षपात छोड़ वेद शास्त्रों को यथाशक्ति अपने से ही देख भाल बारम्बार एकान्त स्थल में विचार अच्छे-अच्छे आप्त धार्म्मिक निष्कपट पुरुषों के सङ्ग शङ्का समाधान कर जो स्थिर हो उसे करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य जन्म को सफलीभूत करने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। इति चतुर्थ प्रकरणं समाप्तम्।

परिशिष्ट प्रकरण

अब मैंने बहुत कुछ आप लोगों से कह सुनाया। आप लोगों को भी अब कोई शङ्का बाकी नहीं रही। अब केवल दो चार बातें कह इसको समाप्त कर देना चाहता हूँ। पृष्ठ ६१ से ७२ तक मैंने प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध कर बतलाया है कि मनुष्य एक जाति है पशु पक्षी के समान इसमें भिन्न-भिन्न जातियाँ नहीं। पुनः मनुष्यों में अनेक वर्ण कैसे बने इस विषय में भी पृष्ठ १२६ से १४५ तक वर्णन किया है। बहुत आदमी कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए हैं इस महती अविद्या की निवृत्ति के लिए १४६ से २४६ तक अर्थात् १०० से कुछ अधिक पृष्ठों में वर्णन किया है। पुनः स्मार्त शूद्र वा व्रात्य आदि विषय भी चतुर्थ प्रकरण में विस्तार से कथित हैं॥ आप लोगों से मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था स्थापित कीजिए। आप लोग देखते हैं कि इस आर्य्यावर्त देश में कितनी जातिएं बनी हुई हैं। पुनः एक-एक जाति में भी सैकड़ों भेद विद्यमान हैं। इसके परिणाम पर आप यदि ध्यान से विचार करेंगे तो नेत्रों से अश्रुप्रवाह चलने लगेगा। प्रथम तो जो कोल, भील, सन्थाल, खांद, गोंद ओरों आदि अनेक जातियाँ हैं जो संख्या में लाखों हैं। इसी जाति पांति के बखेड़े में पड़ के आप

इनको आर्य्य बनाने के प्रयत्न ही छोड़ बैठे। आपके आलस्य और अज्ञानता के कारण अभी तक वे बेचारे ईश्वरविमुख बने रहे। मनुष्य जन्म धारण का इन्हें कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ। उनके श्रवण तक आप पवित्र वेद वाणी नहीं पहुँचा सके। कहिए! आप श्रेष्ठ होके इनका आपने क्या उपकार किया। इनको शिक्षा देने के लिए आपने कभी प्रयत्न नहीं किया। ये बिना कपड़े के बिना अच्छे अन्न के जङ्गलों में टकराते रहे। आपकी दया ने इनका क्या उपकार किया। जाने दीजिए इन जङ्गली जातियों को। जो आपकी सेवा में सदा तत्पर रहे उनके लिए आपने क्या किया। मुशहर, दुसाध, चूड़े, चमार, नाई, धोबी, तेली, बारी, धानुक कुम्हार, जुलाहा आदिकों को और दासवर्गों को भी आपने उसी अवस्था में रख छोड़ा। इस आलस्य अथवा अज्ञानता का फ़ल यह हुआ कि ये लोग प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी पूजने लगे मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र मिथ्या वस्तुओं में इनका अधिक विश्वास बढ़ता गया। इनके देवता इनके भजन भाव इनके पर्व तीर्थ आदि भी भिन्न-भिन्न हो गये। धोबी कुछ और ही राग अहीर कुछ और ही राग अलापते, अति जड़ बुद्धि होके व्याघ्र, सिंह सर्प वृक्ष इत्यादिकों को ही महान् देव मान बलि देने लगे। इनमें से अब शुद्धता शौच सत्यता आदि गुण निकल गये। परन्तु ये लोग आपके सहवासी थे। इस कारण इनके आचरण का प्रभाव आपके उत्तम वर्णों के ऊपर भी पड़ गया। उन्हीं चूड़े चमार नाई धोबी के समान आप भी परमात्मा को छोड़ कभी सांपों की कभी बैलों की, कभी पीपल आदि वृक्षों की, कभी श्मशानों की कभी, भूत प्रेतों की उपासना करने लगे। उनके ऊपर बकरे भैंसे मार-मार के चढ़ाने लगे। ब्राह्मण जन भी अपने शरीर पर भूत खेलने लगे। कहिए

कैसा अधःपात हुआ; परन्तु आपमें ऐसी अविद्या की बीमारी फैली कि आपका ज्ञान रूप शरीर इतना शून्य हो गया है कि इस गिरने से आप को चोट का भी ज्ञान नहीं हुआ। और न अभी तक आपको गिरने का कुछ पता ही लगा। पुनः आपने घृणा से म्लेच्छ समझ दस्यु बतला अपवित्र कह अन्य देशों में वा द्वीपों में जाना आना छोड़ दिया। इसका फल यह हुआ कि वे ही लोग आपके शिर पर सवार हो गए उनके दास बनने पर भी आपको त्राण नहीं। कहिए भगवान् ने आपको कैसा दण्ड दिया। क्यों! आपने बड़ा अन्याय किया? अहङ्कार अभिमान ने आपको खा लिया। आप अपने भाई की छाया पड़ने पर भी अपने को अपवित्र मानने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जिनको आप परम मलेच्छ कहते थे उनकी ही जूती शिरों पर आप को ढोना पड़ा। इतना ही नहीं बल्कि आपके देश की परम पवित्र लखों कन्याएं उन यवनों के हाथ बिकीं और उनका धर्म नष्ट हुआ। और आप लखों करोड़ों पशुवत् शिकार किए गए। मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, मैं इतिहास लिखने के लिए तय्यार नहीं, मैं केवल आपको चेताता हूँ कि आप की इस घृणा ने इस जाति विभाग ने आपको यह ठोकर दी है। अब आपको होश होना भी कठिन है। परन्तु आशा है। एक स्वामी दयानन्द ने वेदों से ढूंढ के एक महौषध दी है यदि वह आपके कण्ठ तक पहुँच गई और आपने भी उसे निगलने के लिए थोड़ी भी कोशिश की तो आप बच सकते हैं। अन्यथा अब कोई उपाय नहीं। भाइयो! "उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान् निबोधत"। मैं पुनः कई एक प्रमाण देता हूँ जिससे विदित होगा कि धीरे-धीरे जाति पाँति बनती गई है और गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही लोग जाति मानते आये जन्म से नहीं।

ब्रह्म वा इदमग्र आसीद्। एकमेव तदेकं सन्नव्यभवत् तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत क्षत्रम्। यान्येतानि देवत्राक्षत्राणीन्द्रो वरुणःसोमोरुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति तस्मात् क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ति राजसूये। क्षत्र एव तद्यशो दधाति। सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म। तस्माद् यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनि-

---

पूर्व समय में, निश्चय, सब यह ब्राह्मण ही था। एक ही था (अर्थात् एक ही ब्राह्मण वर्ण था) एकाकी होने के कारण उसकी उन्नति नहीं हुई। तब उसने अपने से भी बढ़कर एक श्रेष्ठ रूप को बनाया जो क्षत्रिय है। देवों में ये सब क्षत्र क्षत्रिय हैं। इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान इति। इस हेतु क्षत्रिय से परे कोई (वर्ण) नहीं। इसी कारण राजसूय (यज्ञ) में क्षत्रिय के नीचे ब्राह्मण बैठते हैं (१) क्षत्र में ही उस यश को स्थापित करते हैं। सो जो यह ब्राह्मण है वह क्षत्रिय का योनि (कारण) है। इस हेतु यद्यपि राजा परम श्रेष्ठता को पाता है तथापि अन्त में अपनी योनि (ब्राह्मण) के

---

(१) जब राजसूय यज्ञ होता है तब राजा को कहा जाता है कि तूही ब्राह्मण है। तैतिरीय संहिता काण्ड १ प्रपाठक ८ अनुवाक १६ में इस प्रकार सम्वाद है। (राजा) ब्रह्मा३न्। (अध्वर्युः) त्वं राजन् ब्रह्मासि सवितासि सत्यसवः। (राजा) ब्रह्मा३न् (ब्रह्मा) त्वं राजन् ब्रह्मासि इन्द्रोसि सत्या (राजा) ब्रह्मा३न्। (होता) त्वं राजन् ब्रह्मासि मित्रोसि सुशेवः। (राजा) ब्रह्मा३न् (उद्गाता) त्वं राजन् ब्रह्मासि वरुणो सि सत्यधर्म्मा॥ भाव इसका यह है कि राजसूय यज्ञ में जब ऋत्विक् चारों तरफ बैठ जाते हैं। तब राजा प्रत्येक ऋत्विक् से इस प्रकार निवेदन करता है। प्रथम अध्वर्यु से राजा कहता यथा हे ब्रह्मा३न्

श्रयति स्वां योनिम्। य उ एनं हिनस्ति स्वां स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयांसं हिंसित्वा ॥ २३ ॥ स नैव व्यभवत्। स विशमसृजत। यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते—वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुतइति ॥ २४ ॥ स नैव व्यभवत्। स शौद्रं वर्णमसृजत् पूषण मियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च ॥२५॥ स नैव व्यभवत्। तच्छ्रेयो रूप मत्यसृजत धर्म्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मः। तस्माद्धर्म्मात्परं नास्ति यथा अवलीयान् वलीयांसमाशंसते धर्म्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत् तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति। एतद्ध्येवैतदुभयं भवति ॥ २५ ॥ तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रः। बृह० उप० ४ ॥

ही सम्यक् प्रकार से आश्रित होता है। सो जो कोई (क्षत्रिय) ब्राह्मण का हिंसा करता है वह अपनी योनि की हिंसा करता है वह पापिष्ठ होता है जैसे श्रेष्ठ पुरुष की हिंसा करके मनुष्य पापी होता है ॥ २३ ॥ पुनः उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने वैश्य को उत्पन्न किया। देवों में ये गणसे वैश्य कहे जाते हैं। वसु, रुद्र, आदित्य विश्वेदेव और मरुत्। इति ॥ २४ ॥ पुनः उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने शूद्र वर्ण को उत्पन्न किया जो सबका पोषण करने वाला है। यह पृथिवी ही पूषा है। क्योंकि यही सबको पुष्ट करती है ॥ २५ ॥ उसकी वृद्धि नहीं हुई उसने सबसे बढ़

(तीन का चिन्ह प्लुत सूचक है) हे ब्राह्मण अध्यार्यु ॥ इतने कहने-पर अध्वर्यु प्रत्युत्तर देता है कि हे राजन्! तू ही ब्राह्मण है। तू सविता अर्थात् अपनी आज्ञा से सबका प्रेरणा करने वाला है। और सत्यसव = अमोघ शासन तू है। इसी प्रकार अन्यान्य ब्रह्मा होता और उद्गाता ऋत्विकों से राजा कहता है कि आप ब्राह्मण हैं इसके प्रत्युत्तर में ऋत्विक् लोग कहते हैं कि हे राजन् आप ही ब्राह्मण हैं।

ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारोवर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं कर्म्म किं धार्म्मिक

कर श्रेयोरूप धर्म्म का निर्माण किया सो यह धर्म्म क्षत्रिय का भी क्षत्रिय है। इस हेतु धर्म्म से परे कुछ नहीं है क्योंकि इस धर्म्म से दुर्बल (पुरुष) बलवान का मुकाविला करता है। जैसे राजा की सहायता से वैसे। निश्चय, धर्म्म सत्य है। इस हेतु ज्ञानी जन 'सत्यवक्ता को' धर्म्मवक्ता कहते हैं और 'धर्म्म वक्ता' को 'सत्य वक्ता' कहते हैं, यह दोनों प्रकार से होता है इस प्रकार ब्रह्म, क्षत्र विट् और शूद्र हुए। यहाँ पर कैसा विस्पष्ट वर्णन है कि पूर्व में एक ही ब्राह्मण वर्ण था क्योंकि सृष्टि की आदि से धीरे-धीरे व्यवसाय (Profession) की उन्नति होती आई है। ज्यों-ज्यों मनुष्य और मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं त्यों-त्यों ऋषियों ने वेदों को देख-देख वर्ण बनाते गये।

वज्रसूचिकोपनिषद्—अब आगे वज्रसूची उपनिजद् का प्रमाण देते हैं यद्यपि इस को उपनिषद् नहीं कहनी चाहिये और यह बहुत आधुनिक है तथापि यह भी कुछ-कुछ वैदिक सिद्धान्त के निकट पहुँचती है अतः इसकी साक्षी देते हैं। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि उस गिरे समय में भी जन्म से वर्णव्यवस्था को अच्छे-अच्छे विद्वान् नहीं मानते थे। इसका यह एक उदाहरण है।

अर्थ:—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इनमें ब्राह्मण ही प्रधान है इस को वेदानुकूल स्मृतिएँ भी कहती हैं। वहाँ यह वक्तव्य है कि "ब्राह्मण" किसको कहते हैं। क्या जीव, क्या देह, क्या जाति, क्या ज्ञान, क्या कर्म्म, क्या धार्म्मिक

इति। तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वात् एकस्यापि कर्म्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति। तर्हि देहो ब्राह्मण इति-चेत्तन्न आचण्डालादिपर्य्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैक-रूपत्वात् जरामरणधर्म्माधर्म्मादिसाम्यदर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्णः इतिनियमाभावात्। पित्रादि-शरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादोषसंभवाच्च। तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति तर्हि जाति ब्राह्मण इति चेत्तन्न। तत्र जात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति ऋष्यशृङ्गोमृग्यः। कौशिकःकुशात्। जाम्बूको-

---

(ब्राह्मण) है। यदि प्रथम यह कहो कि 'जीव' ब्राह्मण है तो यह नहीं। क्योंकि अतीत (व्यतीत) और अनागत भविष्यत् (आने वाले) अनेक शरीरों में जीव का स्वरूप एक ही रहता है। एक ही जीव कर्म्मवश अनेक देहों में जाता है परन्तु सर्व शरीर में जीव का एक ही स्वरूप रहता है इस हेतु जीव ब्राह्मण नहीं। तब यदि यह कहो कि देह ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि चाण्डाल पर्य्यन्त सब मनुष्यों का देह पाँच भौतिक होने के कारण एकरूप है क्योंकि वृद्धावस्था, मरण और धर्म्मा धर्म्म सब शरीर में बराबर है। यदि कहो कि ब्राह्मण श्वेत वर्ण, क्षत्रिय रक्त वर्ण, वैश्य पीत वर्ण और शूद्र कृष्ण है तो यह नियम सर्वत्र नहीं दीखता (काश्मीर के सब शूद्र श्वेत ही हैं, और यदि देह को ही जीव मानोगे तो मृत पिता माता आदिकों के शरीर जलाने पर पुत्र को ब्रह्म हत्या लगनी चाहिये। इस कारण देह ब्राह्मण नहीं। तब यदि यह कहो कि जाति ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि विजातीय जन्तुओं में अनेक जात्युत्पन्न बहुत ऋषि विद्यमान हैं जैसे हरिनी से ऋष्यशृंग,

जम्बूकात् । वाल्मीकिर्वल्मीकात् । व्यासः कैवर्तकन्यकायाम् । शशपृष्ठात् गौतमः । बसिष्ठ उर्वश्याम् अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विना प्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयः बहवः सन्ति तस्मान्न जाति-र्ब्राह्मण इति । तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इतिचेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ-दर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति । तर्हि कर्म्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचिताऽऽगामिकर्म्म-साधर्म्य-दर्शनात् कर्म्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न कर्म्म ब्राह्मण इति । तर्हि धार्म्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न क्षत्रियादयो हिरण्य-दातारो बहवः सन्ति । तस्मान्न धार्म्मिक ब्राह्मण इति ।

तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मान मद्वितीयं जातिगुण-

---

कुश से कौशिक, शृंगाल से जम्बूक, बल्मीक (चीटियां की बनाई हुई मिट्टी का ढेर) से वाल्मीकि, मल्लाह की कन्या से व्यास, शशक (खरगोश) से गौतम । उर्वशी से वशिष्ठ । कलश (घड़े) से अगस्त उत्पन्न हुए । इत्यादि ऋषियों की कोई जाति नहीं परन्तु वे लोग वेदों के द्रष्टा हुए इस हेतु जाति ब्राह्मण नहीं । तब यदि कहो कि ज्ञान ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि क्षत्रिय आदि परमार्थदर्शी विद्वान् अनेक विद्यमान हैं । इस कारण ज्ञान ब्राह्मण नहीं । यदि कहा कर्म्म ब्राह्मण तो यह भी नहीं । क्योंकि सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी ये तीनों कर्म्म समान ही हैं और कर्म्मों से ही प्रेरित हो सब जन्तु कर्म्म करते हैं इस हेतु कर्म्म ब्राह्मण नहीं । यदि कहो कि धार्म्मिक ब्राह्मण है तो यह भी नहीं क्योंकि क्षत्रियादि हिरण्य दाता अनेक हैं । इस हेतु धार्मिक ब्राह्मण नहीं ।

तब ब्राह्मण कौन हैं ? जो कोई अद्वितीय, जाति-गुण-क्रिया हीन, षडूर्मिषड्भाव इत्यादि जो निखिल दोष हैं उनसे रहित,

क्रियाहीनं षड्डूर्मिषड्भावेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानाऽऽनन्दानन्तस्वरूपं स्वयंनिर्विकल्पमशेषकल्पाधारशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमान मन्तर्बहिश्चा-काशवदनुस्यूत मखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्य मपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादि-दोषरहितः शमदमादिसम्पन्नो भाव, मात्सर्य्य, तृष्णा,ऽऽशा, मोहादिर-हितो दंभाहंकारादिभिरभिसंस्पृष्टचेता वर्तते। एवमुक्तलक्षणो यः स एवब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथा हि ब्राह्मण-त्वसिद्धि र्नास्त्येव॥ इति वज्रसूचिकोपनिषत्समाप्ता॥

सत्यज्ञानाऽऽनन्द स्वरूप, स्वयं निर्विकल्प, अशेष कल्पाधार, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर्यामी होकर वर्तमान, आकाशवत्, अन्तर बाहर अनुस्यूत (प्रविष्ट) अखण्डानन्द-स्वभाव, अप्रेमय अनुभवैकवेद्य, और साक्षात् सर्वत्र भासमान परमात्मा को कर-तलगत आमलक के सामान साक्षात् कर के कृतार्थ है। काम-रागादि-दोष रहित, शमदमादि-सम्पन्न, भाव-मात्सर्य-तृष्णा आशा मोहादिकों से रहित, दम्भ अहंकारादि से असंस्पृष्टमन वाला जो है वही ब्राह्मण है यही श्रुति, स्मृति, इतिहास का अभिप्राय है। अन्यथा ब्राह्मणत्व सिद्धि नहीं हो सकती।

महाभारत—हमें कहना पड़ता है कि महाभारत रामायण आदिक प्राचीन ग्रन्थ भी वेदों के तत्त्वों को ठीक वर्णन नहीं करते किसी-किसी विषय में तो वेदों से बहुत दूर चले गए हैं जब मनुस्मृति ही वेद के अर्थ को अच्छे प्रकार नहीं बतलाती तब महाभारतादि ग्रन्थों से क्या आशा हो सकती है। प्रायः महाभारत मनुस्मृति के समान ही अधार्म्मिक शौचाचार-परिभ्रष्ट अव्रती पुरुष को शूद्र कहता है परन्तु यह वेद विरुद्ध बात है पुनः क्षत्रिय वैश्यों को भी गिरे हुए कहता है यह भी वेद विरुद्ध

भृगुरुवाच। असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्। आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभाम् ॥ १ ॥ ततः सत्यञ्च धर्म्मञ्च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्। आचारञ्चैव शौचञ्च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ॥२॥ देव, दानव, गन्धर्वा, दैत्याऽसुर, महोरगा। यक्ष, राक्षस, नागाश्च, पिशाचा मनुजास्तथा ॥ ३ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम। ये चान्ये भूत संघानां वर्णास्तांश्चापि निर्म्ममे। ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणान्तु लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ॥ ५ ॥ भरद्वाज उवाच। चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते। सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसङ्करः ॥ ६ ॥ कामः क्रोधो भयं लोभः

है इत्यादि अनेक दोष रहने पर भी किसी-किसी अंश में वेद के निकट पहुँचता है इस हेतु इनके भी कई एक प्रमाण दिए गए हैं और ये दिए जाते हैं इन पर आप ध्यान देवें।

महाभारत शान्तिपर्व में भृगु और भरद्वाज सम्वाद आया है। भृगुजी कहते हैं कि प्रथम सर्वगुणसम्पन्न, सात्त्विकमूर्त्ति ब्राह्मणों को ही भगवान् ने सृष्ट किया। यह उचित है कि सृष्टि की आदि से छल, कपट, काम, क्रोध, चोरी, डकैती लूट मार ईर्ष्या द्वेष आदि अवगुण न होने से जो उत्पन्न हुए वे बड़े शुद्ध रहे जैसे सनक सनन्दन आदि। क्योंकि उन शुद्ध मूर्तियों में भगवान् ने सत्य, धर्म्म, तप, वेद, आचार, शौच, आदि सब गुण दिये। पश्चात् इन मनुष्यों में गुण के अनुसार देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि होने लगे। पश्चात् धर्म्म-रक्षा के लिये आवश्यकता हुई तब वेदों को देख मनुष्यों को ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार भागों में विभक्त किया। ब्राह्मण का शुक्ल वर्ण, क्षत्रिय का लाल वर्ण,

शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः। सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ७ ॥ स्वेद, मूत्र, पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम्। तनुः क्षरति

वैश्य का पीत वर्ण और शूद्र का कृष्ण वर्ण स्थिर किया (१) इस पर भरद्वाज जी पूछते हैं कि आपका वर्ण से क्या अभिप्राय है? यदि श्वेत पीत रङ्ग को आप कहते हैं तो सर्व ब्राह्मणादिक वर्णों में गड़बड़ होगा। ब्राह्मण होने पर भी कोई रङ्ग में कृष्ण है कोई देखने में पीत है। फिर यह व्यवस्था कैसे? पुनः काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, क्षमा आदि सबमें देखते

---

(१) यहां श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण उन चार शब्दों का रंगों से तात्पर्य्य नहीं है क्योंकि यदि रंग से तात्पर्य्य हो तो काश्मीर और शीत प्रदेश के सब कोई ब्राह्मण ही कहलावें क्योंकि उन सबों का रंग श्वेत (सुफेद) ही होता है। भाव इस का यह है कि 'श्वेत' शब्द सात्विक गुणवाचक है आज कल भी धर्म्म आदि का वर्णन 'श्वेत' आता है। सो जो कोई श्वेत अर्थात् शुद्ध निष्कलङ्क मलिनता रहित ज्ञान विज्ञान रूप श्वेत वस्त्र से आच्छादित हैं वह ब्राह्मण। रक्त (लाल) शब्द वीरता सूचक है। जब शूरवीर संग्राम में जाते हैं तब उन की आंखें लाल हो जाती हैं। शरीर रक्त से भर जाता है सो जो कोई निर्भीक वीरतारूप रक्तवर्णों से पूर्ण है वह क्षत्रिय। पीत शब्द व्यापार वाणिज्य सूचक है क्योंकि सुवर्ण का रंग पीला होता है और सुवर्ण व्यापार का मुख्य अङ्ग है इस हेतु वैश्य के लिये पीत वर्ण कहा है सो जो कोई सुवर्ण आदि पदार्थों का वाणिज्य करता है वैश्य है। 'कृष्ण' (काला) शब्द यहां अधर्म्म सूचक है इसी हेतु अधर्म्म का रूप ही कृष्ण कहा गया है सो जो कोई अशुद्ध अपवित्र मलिन अज्ञान रूप मलिनता से भरे हुए हैं वे शूद्र। यही अभिप्राय भरद्वाज के प्रश्न के समाधान से विस्फुट होता है मूल में देखिये।

सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ८ ॥ जङ्गमानामसंख्येया स्थावराणाञ्च जातयः। तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥ ९ ॥ भृगुरुवाच। न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्। ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥ काम भोग प्रियास्तीक्ष्णः क्रोधनाः प्रियसाहसाः। त्यक्तस्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्तेद्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥ गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः। स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२ ॥ हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्म्मोपजीविनः। कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टा स्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३ ॥ इत्येतैः कर्म्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः। धर्म्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १४ ॥ इत्येते चतुरोवर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।

हैं फिर वर्ण विभाग कैसे? स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा, पित्त, शोणित आदि सबके शरीर से समान ही निकलता है फिर वर्ण विभाग कैसे? जंगम और स्थावर असंख्य हैं इनका वर्ण विभाग कैसा हो सकता है। यह भरद्वाज का प्रश्न बड़ा ही रोचक है। इसका समाधान भी यथोचित है। भृगु जी कहते हैं। इनका अभिप्राय यह है कि पहले ही मैं कह चुका हूँ कि पहले कोई वर्ण विभाग नहीं था सब ही सत्त्व गुण प्रधान ब्राह्मण ही थे। व्यावहारिक आवश्यकताएँ बढ़ने पर वे भिन्न-भिन्न वर्ण होने लगे। उन्हीं ब्राह्मणों से जो कर्मप्रिय, भोगी, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसी, ब्राह्म धर्म्म से कुछ गिरे हुए और युद्ध प्रिय हुए वेही क्षत्रिय कहलाने लगे। जो ब्राह्मण गो-सेवा कृषिकर्म्म वाणिज्य में अपने धर्म्म छोड़ तत्पर हुए वे वैश्य कहलाने लगे। जो ब्राह्मण हिंसक मिथ्यावादी लोभी सर्व कर्मोपजीवी और शौचादि विवर्जित हुए वे शूद्र कहाने लगे। इस प्रकार ब्राह्मण ही व्यस्त होकर चारों वर्ण हुए इन चारों को धर्म्म और यज्ञकर्म्म करने में

विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणा ब्राह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति । ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः । तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ॥ १७ ॥ पिशाचा राक्षसा प्रेता विविधा म्लेच्छ जातयः । प्रनष्टज्ञान विज्ञानाः स्वच्छन्दाचार चेष्टिता ॥ १८ ॥ शान्तिपर्व १८८ ॥

भरद्वाज उवाच । ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम । वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतांवर ॥ १ ॥ भृगुरुवाच । जाति-

---

सम ही अधिकार है । पुनः भृगु जी कहते हैं हे भरद्वाज ! इस प्रकार ये चारों वर्ण सृष्ट हुए जिन चारों ही के लिये ब्राह्मी सरस्वती अर्थात् वेद वाणी भगवान् ने दी है परन्तु ये लोभ मोह ईर्षा से स्वयं अज्ञानी बन रहे हैं । जो ब्राह्मण वेदों को, व्रत और नियमों को धारण किए हुए हैं उनका तप नष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥ हे भरद्वाज ! सब मनुष्यों के लिये वेद ही परम तप और पावन है जो उसको नहीं जानते हैं वे ही अद्विज अर्थात् नीच व्रात्य हैं । इन्हीं अद्विजों के अनेक भेद इधर-उधर देख पड़ते हैं ॥ १७ ॥ इनमें से ही पिशाच राक्षस, प्रेत, म्लेच्छ, आदिक अनेक जातिएं हैं ॥ १८ ॥

इस लेख से भी आपको विदित हो गया होगा कि पूर्व में केवल एक ही वर्ण था धीरे-धीरे कर्म के वश अनेक वर्ण बनते गए । यहाँ बहुत स्पष्ट वर्णन है कि साथ ही चारों वर्ण उत्पन्न नहीं किए गए किन्तु ज्यों-ज्यों आवश्यकताएं बढ़ती गईं त्यों-त्यों बुद्धिमानों ने अनेक वर्ण बनाना आरम्भ किया ।

पुनः भरद्वाज जी कहते हैं कि हे भृगो ! किस कर्म्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र होते हैं ॥१॥ भृगु जी कहते हैं जो जातकर्म्मादि

कर्म्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः। वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्म्मस्ववस्थितः ॥ २ ॥ शौचाचारावस्थितः सम्यग् विघसाशी गुरुप्रियः। नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥ ३ ॥ सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा। तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ४ ॥ क्षत्रजं सेवते कर्म्म वेदाध्ययनसंगतः। दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥ विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः। वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥ ६ ॥ सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्म्मरतोऽशुचिः। त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥ ७ ॥ शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते। न वै शूद्रो भवे च्छूद्रो ब्राह्मणोनच ब्राह्मणः ॥ ८ ॥ शान्तिपर्व १८६ ॥

संस्कारों से संस्कृत, शुचि है वेदाध्ययन में रत, छवों कर्म्मों में तत्पर ॥ २ ॥ शौचाचार में स्थित विघसाशी, गुरुप्रिय, नित्यव्रती, सत्यप्रिय है वही ब्राह्मण कहलाता है ॥ ३ ॥ सत्यदान, अद्रोह आनृशंस्य त्रपा, घृणा, तप आदि सद्गुण जिसमें हैं वही ब्राह्मण है ॥ ४ ॥ जो पुरुष क्षात्र कर्म्म का सेवता है। वेदाध्ययन में भी तत्पर है। दान आदान (ग्रहण) में जिसकी रुचि है वही क्षत्रिय है ॥ ५ ॥ जो वाणिज्यार्थ नाना देश में जाता आता है जो पशुओं को पालते कृषि कर्म्म करते हुए वेदाध्ययन में भी आसक्त है वही वैश्य है ॥ ६ ॥ जो सर्वभक्षी सर्वकर्म्म-परायण अशुचि वेदरहित अनाचारी है वही शूद्र है ॥ ७ ॥ अब आगे विस्पष्ट रूप से उपसंहार करते हैं कि जो लक्षण ब्राह्मण के कहे गए हैं वे यदि शूद्र में पाए जाँय और जो लक्षण शूद्र के कहे गये हैं वे यदि ब्राह्मण में पाए जायँ तो वह शूद्र-शूद्र नहीं, वह ब्राह्मण-ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है ॥ ८ ॥ इससे भी कर्म्मानुसार ही वर्ण की सिद्धि होती है।

द्वन्द्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः ॥ परेषा मननुध्यायंस्ते देवा ब्राह्मणं विदुः ३२ येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या। गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३३ ॥ अभयं सर्व भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः । सर्व भूतात्मभूतो यस्तेदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥ शान्ति २६८ ॥

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम । यः क्रोधमोहौत्यजाति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३२ ॥ यो वदेदिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च । हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३३॥ जितेन्द्रियो धर्मरतः स्वाध्याय निरतः शुचिः । कामक्रोधौ वशे यस्य तंदेवा ब्राह्मण ॥ ३४ ॥ यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः सर्वधर्मेषु च रतस्तं देवा ब्राह्मण ॥ ३५ ॥ योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयेत वा । दद्याद्वापि

देव लोग उसको ब्राह्मण जानते हैं जो सुख-दुःख शीत ऊष्ण आदि सब द्वन्द्व में समान भाव से स्थित रखते हैं दूसरों का अनिष्ट चिन्तन नहीं करते ॥ ३२ ॥ जिसने यह सब जाना जो प्रकृति विकृति है और जो सब भूतों की गति जानता है उसको देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३३ ॥ जो सबको अभय देता है जिससे सबको अभय है। जो सर्व प्राणियों का आत्म समान है उसको देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३४ ॥ इसी भाव को महाभारत अन्यत्र भी वर्णन करता है यथा—

एक पतिव्रता स्त्री ब्राह्मण से कहती है कि मनुष्यों के इस शरीर में क्रोध महान् शत्रु है। हे द्विजोत्तम ! जो क्रोध मोह को त्यागता है उसको देव ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३२ ॥ जो सत्य कहता है गुरु को सन्तुष्ट करता है। हिंसित होने पर भी हिंसा नहीं करता है उसको देव ब्रा० ॥ ३३ ॥ जितेन्द्रिय धर्म्मरत, स्वाध्यायनिरत, शुचि है और काम क्रोध जिसके वश में है उसको देव ब्रा० ॥ ३४ ॥ जो अपने सम सब को देखता है।

यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मण ॥ ३६ ॥ ब्रह्मचारीच वेदान् योऽप्य धीयीत द्विजपुंगवः । स्वाध्यायेचाप्रमतो वै तं देवा ब्राह्मण । इत्यादि । बनपर्व अ० २०५ ॥

धर्म्मज्ञ और मनस्वी है । सर्व धर्म्म में रत है उसको देव ब्रा० ॥ ३५ ॥ जो पढ़ता-पढ़ाता स्वाध्याय में अप्रमत्त रहता उसको देव ब्रा० ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वन पर्व के १८० अध्याय में यह प्रसङ्ग आया है कि नाग-राज युधिष्ठिर से पूछता है कि "ब्राह्मणः को भवेद्राजन्" ॥ २० ॥ हे राजन्! ब्राह्मण कौन है? इसके उत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं। "सत्यं दानं क्षमा शील मानृशंस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ २१ ॥ जिस पुरुष में सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप, घृणा हो वही ब्राह्मण है। पुनः नागेन्द्र पूछता है कि "शूद्रेष्वपि च सत्य च दानमक्रोध एवच। आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ हे युधिष्ठिर! सत्य, दान, अक्रोध, आनृशंस्य, अहिंसा और घृणा आदि सद्गुण शूद्र में भी पाये जाते हैं फिर उन्हें क्या कहना चाहिये। इस पर युधिष्ठिर कहते हैं कि सत्यादि गुण शूद्र में पाये जाते हैं तो निःसन्देह वह शूद्र ब्राह्मण है। यथा—

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेद् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥ २५ ॥

इसका अर्थ पूर्व ही कर आये हैं। भाव यह है कि शूद्र में सत्यादि गुण हों परन्तु ब्राह्मण में न हो तो वह शूद्र शूद्र नहीं वह ब्राह्मण-ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है। पुनः कहते हैं "यत्रैतत् लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः। यत्रैतन्नभवेत् सर्प स शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥

हे नागेन्द्र ! जिसी में वे सत्यादि गुण हों वही ब्राह्मण और जिसमें न हों वही शूद्र है। इससे भी सिद्ध है कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण है। आगे पुनः विस्पष्ट रूप से कहा है कि "तावच्छूद्र समो ह्येष याव द्वेदे न जायते ॥ ३२ ॥ जब तक वेद नहीं जानता तब तक शूद्र ही है। ऐसे ही अनेक स्थलों में गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था को भारत मानता है। इन प्रमाणों में कहीं भी जन्म से वर्ण मानते हुए महाभरत को नहीं देखते हैं।

गीता आदि—गीता, वाल्मीकि रामायण मनुस्मृति आदि जितने सच्छास्त्र हैं वे कर्म्म से वर्ण स्थिर करते हैं। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म्मविभागशः"। श्री कृष्ण कहते हैं कि गुण कर्म्मों के विभाग से ही ईश्वर ने चारों वर्ण बनाए। "अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो। एकवर्णाः समा भाषा एक-रूपाश्च सर्वशः" रामायण उत्तरकाण्ड ॥ इससे भी यही सिद्ध है कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे-धीरे कर्मानुसार अनेक वर्ण होते गए। भागवत कहता है कि "एकविधो नृणाम्" मनुष्य में एक ही भेद है। सांख्यशास्त्र कहता है "मानुष्यश्चैकविधः" मनुष्य एक ही प्रकार का है। इत्यादि सहस्रशः प्रमाणों को निरादर कर वेदों को त्याग आप भले ही कर सकते हैं कि वर्ण जन्म से है।

पशु और वृत्तादिकों में वर्ण—इस विषय पर यदि ध्यान देंवे तो भी मालूम हो जायगा कि कर्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था है। गो, भैंस, हाथी, घोड़े, गदहे, मृग, हरिण, सिंह आदिक पशुओं में भी कुछ-कुछ गुण की समता देख इनमें भी चारों वर्ण कहते हैं देखिये "रासभमारोदयन्नभिमन्त्रयते शूद्रोसि" पारस्करगृह्य-सूत्र। यहाँ पर रासभ अर्थात् गदहे को शूद्र कहते हैं। क्योंकि

बोझ ढोना आदि कर्म्म इसका शूद्र समान है इसी प्रकार गो जाति को ब्राह्मण सिंह को क्षत्रिय कहते हैं। आप देखते हैं कि ये सब न तो पैर से और न मुखादिक से उत्पन्न किये गए हैं हैं फिर ये पशु शूद्र वा क्षत्रिय आदि क्यों कहलाते हैं ? निःस्सन्देह मनुष्य गुण की समानता के कारण ही इनको शूद्रादि कहते हैं। इसी प्रकार वृक्षों में पुराण वर्ण मानता है। पुनः अभी आपने बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रमाण में देखा कि इन जड़ अग्नि, वायु, वज्र विद्युत मेघ आदि में क्षत्रिय शूद्र आदि कहा गया है। क्योंकि वज्र क्षत्रियवत् लोगों को कम्पा देता है और ईश्वर की महतीशक्ति का स्मरण करवा देता है अतः वह क्षत्रिय है इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र सूर्य्य चन्द्र आदि नवों ग्रहों में भी ब्राह्मणादिक मानता है। उसके फलके अनुसार किसी को ब्राह्मण किसी को शूद्र कहा है। पुनः ज्योतिष की एक बात पर ध्यान देवें। ज्योतिष कहता है कि अमुक-अमुक नक्षत्र में जन्म होने से जातक (सन्तान) ब्राह्मण वर्ण होता है। अमुक-अमुक नक्षत्र में जन्म से शूद्र वर्ण होता है इत्यादि। यद्यपि वह बालक ब्राह्मण का ही पुत्र क्यों न हो परन्तु शूद्र नक्षत्र में जन्म लेने से उसका वर्ण शूद्र ही होगा इसी प्रकार शूद्र के गृह में वह बालक क्यों न उत्पन्न हुआ हो परन्तु ब्राह्मण नक्षत्र में जन्म होने से उस बालक का वर्ण ब्राह्मण माना जायगा। क्यों ऐसा माना है ?। निःसन्देह गुणों से ही यहाँ पर वर्ण व्यवस्था बाँधी है। हे विद्वानों ! आप लोग स्वयं विवेकी पुरुष हैं इसे पुनः विचारें।

उपसंहार—मनुष्य बुद्धिमान् होता है। परमात्मा ने बड़ी कृपा कर इसमें बड़े-बड़े गुण स्थापित किए हैं। पृथिवी रूप कुसुम वाटिक का रक्षक इसी को बनाया है अपनी अगम्य विभूति का परिज्ञाता वा द्रष्टा वा परीक्षक भी इसी को बनाया

है इत्यादि बातों में सन्देह नहीं परन्तु मनुष्य अपने ही हाथ से उन अमूल्य ईश्वर प्रदत्त गुण रत्नों को फेंक दरिद्र बन रहा है। विचार की पवित्रता मानसिक गम्भीरता, उदारता प्रभृति गुण मुक्तावली को अपने कण्ठ से निकाल निरादर कर रहा है। यह पक्षपात में वा कुसङ्ग में गिर अपने कर्त्तव्य को भूल बड़े-बड़े अन्याय्य कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो जाता है। जहाँ से यह नियुक्त हुआ है उसकी ओर यह नहीं देखता। अपने पिता की सारी क्रिया पर पानी फेर देता है। कैसा उदार, कैसा महानुभाव, कैसा गम्भीर, कैसा पवित्र, कैसा उपकारी, इसका पिता परमात्मा है। ऐ मनुष्यों! अपने पिता का मुख अवलोकन कर कार्य्य करो। देखो! वह किस से घृणा करता है उसको क्या आज्ञा है, वह किससे प्रसन्न रहता है, वह हम लोगों से क्या चाहता है, वह किस हेतु हम मनुष्यों को यहाँ भेजता है। ऐ मनुष्यो! यह सब बिचारो और उसी की इच्छा को पूर्ण करो, उसी की ओर देखो। वह तुमको बुलाकर क्या कहेगा तुम फिर उस समय क्या उत्तर देओगे। तुम्हें क्या उस समय लज्जित होना नहीं पड़ेगा। क्या तुम्हें यह आशा नहीं कि उस न्यायकर्त्ता परम पवित्र परम दयालु पिता के निकट एक न एक दिन अवश्य तुम्हें जाना होगा। कहो तो फिर तुम क्या जाके कहोगे। इस हेतु पहले ही से चेत जाओ। वहाँ तुम्हें लज्जित न होना पड़े। देखो तुम्हारा पिता जगदीश क्या कहता है।

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ऋग्वेद ॥

हे मनुष्यो! समस्त विरोध, वैरभाव और परस्पर घृणा को छोड़ एकत्र मिलो! मिल के प्रेमालाप करो! तुम ज्ञानी

जनों का मन भी वैमनस्य को छोड़ समान प्रयोजन पर विचार करे। और जैसे तुम्हारे पूर्वज पिता प्रपितामाह आदि महापुरुष मुझे पूज्य और भजनीय जान उपासना करते आए वैसे ही तुम भी सब छोड़ मेरी ही शरण में आओ! पुनः—

सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत जातं वत्स मिवाघ्न्या॥ अथर्ववेद॥

हे मनुष्यो! तुम्हारे मन और हृदय को मैं ईर्षा द्वेषादि अवगुणों से रहित करता हूँ। इस हेतु इस पवित्र हृदयकमल के ऊपर ईर्षा द्वेष का बीज मत बोओ! ऐ मेरे प्यारे पुत्रो! जैसे गौ अपने बछड़े को लाड़ प्यार करती है वैसे तुम सब परस्पर प्रेम करो! देखो तुम्हारा पिता कहता है कि सबसे बराबर प्रेम करो। परन्तु तुम इसके नियम को तोड़ते हो।

वर्णव्यवस्था—विवेकि पुरुषो! लोग कहते हैं कि आजकल वर्णव्यवस्था किस रीति पर होनी चाहिये। मैं कहता हूँ कि वेद जैसा कहते हैं उसी रीति पर वर्णव्यवस्था स्थापित होनी चाहिये। १—प्रथम पृथिवी के सब मनुष्य आर्य्य नाम से पुकारे जायँ। किसी को कोई जन्म से न तो ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र कहे और न कोई पुरुष स्वयं अपने को जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कहे कहावे। जैसे पढ़े-लिखे पुरुषों से विद्या के अनुसार किसी को ज्योतिषी, किसी को वैयाकरण, किसी को नैयायिक, किसी को वैदिक, किसी को B. A. किसी को M. A., इत्यादि कहते हैं और कर्म्म के अनुसार कोई अध्यापक, कोई गुरु, कोई आचार्य्य, कोई मास्टर, कोई वकील, कोई जज्ज, कोई लाट इत्यादि कहलाता है वैसे ही गुण और कर्म्म के अनुसार कोई ब्राह्मण

कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और कोई शूद्र कहलाया करेगा और जैसे जो जिस कार्य में रहता है उसको स्वभाव से ही उसी नाम से पुकारते हैं जैसे पढ़नेवाले को विद्यार्थी, यज्ञ करवाने वाले को ऋत्विक, वकालत करने वालों को वकील, निर्णय करने वाले को जज्ज आदि कहते हैं और यह स्वभाव से ही कहते हैं कार्य देखकर ही कहने लगते हैं इसी प्रकार स्वयं लोग कार्य देख के किसी को ब्राह्मण किसी को क्षत्रिय किसी को वैश्य और किसी को शूद्र कहा करेंगे। इस पर न तो जोर देने की और न व्यवस्था देने की कोई आवश्यकता है। आवश्यकता केवल योग्यता की प्राप्ति करने करवाने की है। जैसे प्रथम व्याकरण पढ़ने-पढ़वाने की आवश्यकता होती है पीछे उसके कार्य देख के उसको स्वयं लोग वैयाकरण कहना आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार कार्य्य देख योग्यतानुसार ब्राह्मण को ब्राह्मण शूद्र को शूद्र स्वयं पुकारा करेंगे। पठन-पाठन जो करे वह ब्राह्मण, क्योंकि मुख का कार्य्य विशेषकर पठन-पाठन है। जो रक्षा करे वह क्षत्रिय, क्योंकि बाहु का कार्य्य रक्षा करना है, जो सर्वत्र से धन सञ्चय कर सर्वत्र आवश्यकतानुसार पहुँचावे वह वैश्य, क्योंकि उदर का यही कार्य्य है और जो सब प्रकार से सबका भार उठावे विविध क्लेशों को सहते हुए भी परोपकार ही में लगा रहे बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कार्य को तपस्या से सिद्ध करे वह शूद्र है क्योंकि पैर का यही कार्य्य है। यह मैंने अति संक्षेप से कहा और प्रथम मैं कह चुका हूँ कि यथार्थ में वही पुरुष पूर्ण है जो चारों है अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों है। प्रथम सबको चारों होने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये और जो अपने परिश्रम से चारों होवे वही पूर्ण सर्व श्रेष्ठ है वही यथार्थ में मनुष्य है। यदि ये ब्राह्मणत्वादि चारों

गुण एक दूसरे से बढ़ कर न होवे तो एक-एक गुण की मुख्यता के और अन्यान्य गुणों के गौणत्व के हेतु अवश्य प्रयत्न करे। लोग उसे मुख्य गुण के अनुसार ही पुकारेंगे इसमें सन्देह नहीं।

२—इस देश के कोल, भील, सन्थाल आदि अरण्य निवासियों और नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि शिल्पकारी वर्गों, अहीर, चमार, धानुक आदि ग्राम निवासियों की दशा सुधारने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाय।

३—पृथिवी पर के एशिया, योरोप, अफ्रिका, अमेरिका, इत्यादि सब देशवासी आर्य्य बनाए जाँय और इन्हें समाज में यथायोग्य सम्मान दिया जाय।

४—स्पर्श दोष सर्वथा उठादिया जाय केवल शुद्धि का विचार रक्खा जाय।

५—वेद के अनुसार 'शूद्र' शब्दार्थ बढ़ाया जाय। नीच निकृष्ट अपवित्र अव्रती मूर्ख अज्ञानी इत्यादि प्रकार के मनुष्य को दस्यु वा दास कहा जाय। शूद्र नहीं। क्योंकि शूद्र समाज का एक बड़ा प्रशंसनीय अंग है।

६—वेदानुसार एशिया योरोप आदि के सब प्रान्त में "गुरुकुल" खोल बालकों का उपनयन कर वेदविद्या प्रदान किया जाय इत्यादि कतिपय नियम यहाँ कहे गए हैं इसी के अनुसार वर्णव्यवस्था होनी चाहिये। इस पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी गई है यदि विशेष देखना हो तो उसमें सब नियमों को देखिये अन्त में वेदों की ऋचा कहके इसे समाप्त करें।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥१॥ ऋग्वेद ॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ २ ॥ अथर्ववेद ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ २ ॥ यजुर्वेद ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

इति वेदतत्त्व प्रकाशे तृतीयः समुल्लासः
समाप्तः ।

इति मिथिलादेशान्तर्गत दरभङ्गानिकटस्थ "चहुटा" ग्राम
निवासि-शिवशङ्करशर्म्म-निर्मितो जाति-निर्णयः
समाप्तिमगात् । इत्योऽम् ॥

उत्तमोत्तम पुस्तकों की सूची

१०) कौटिल्य अर्थशास्त्र
२।) भोज प्रबन्ध
।।।=) संस्कार विधि
१।।) सत्यार्थ प्रकाश
१) कर्त्तव्य दर्पण
२।।) न्याय दर्शन
३।।) वैषेशिक दर्शन
३।।) उपनिषद्
१।।) भक्ति और वेदान्त
६) विश्व गुरु भारत
२।।) दृष्टान्त महासागर
२) हिन्दूत्व की विजय
२।।) दर्शनानन्द ग्रंथ संग्रह
३) नवीन दम्पति
३।।) साहित्य चिन्तक
५) जवाहरलाल की कहानी
३) दुःखी विधवा
२) समाज
२।।) वीर क्षत्राणियाँ
२) भगतसिंह
३) माया विलास
२) विराज बहू
२) सांख्य दर्शन
७) वैदिक संपत्ति
२०) यजुर्वेद
२४) अथर्ववेद
६) स्यामवेद
४२) ऋगवेद
५) मनुस्मृति
१) गीताञ्जली
४) झाँसी की रानी
६) स्वास्थ्य और व्यायाम
३) सेक्सपियर्स की कहानी
३।।) लाला लाजपतराय
४) लड़कियों का जीवन
२) श्री मद्भागवद्गीता
१८) सूरसागर
१।।) ब्रह्मचर्य की महीमा
२।) अन्नपूर्णा का मन्दिर
१।) आग की लपटें
२) दुर्गेश नन्दनी
३।।) मायावी संसार
२) वैरागी
४) पथ के दावेदार